





आदिकाल में कालनेमि नाम का एक बहुत भयंकर दानव हुआ । उसके सौ सिर थे और अनेक हाथ थे । देखने में वह सौ शिखरोंवाले भयंकर काले पर्वत के समान जान पड़ता था । असाधारण शक्तिशाली कालनेमि ने ब्रह्मा को लक्ष्य कर घनघोर तपस्या की और अनेक वर प्राप्त कर लिये । अपने बहुविध बल के कारण अब वह अत्यन्त उद्धत और अहंकारी हो उठा था । उसकी आसुरिक शक्ति में अब तपस्या से प्राप्त वरदानों का बल भी आ मिला था।

उस काल में देव और दानवों के बीच बहुधा युद्ध हुआ करते थे । उन युद्धों में कभी दानवों की विजय होती तो कभी देवता विजयी हो जाते थे । एक बार युद्ध में देवताओं को भारी विजय प्राप्त हुई और उन्होंने दानवों को पराजित कर भागने के लिए विवश कर दिया । जब कालनेमि को दानवों की इस लज्जाजनक पराजय का हाल मालूम हुआ तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा । उसने अनेक दैत्यराजों को एकत्रित कर उन्हें युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया । उसने विशाल दानव-सेना लेकर इंद्र पर आक्रमण कर दिया । इंद्र के सेनापतित्व में देवताओं ने तथा कालनेमि के नेतृत्व में दानवों ने भयंकर युद्ध किया । कालनेमि साक्षात् काल की तरह युद्ध कर रहा था और दानव उसकी शक्ति से शक्तिमान होकर देवताओं पर टूट रहे थे ।

उस युद्ध में कालनेमि ने न केवल इंद्र को, बल्कि सभी दिक्पालों को भी बुरी तरह पराजित किया । इस विजय के कारण तीनों लोक

१. कथा कालनेमि की



कालनेमि के आधिपत्य में आगये । भगवान विष्णु ने देवताओं के इस अपमान को देखा, पर वे मौन बने रहे । उन्हें मालूम था कि अभी तक कालनेमि की मृत्यु का समय निकट नहीं आया है। इसीलिए उन्होंने किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं किया ।

इधर त्रिलोक-विजय के बाद कालनेमि का घमंड और भी अधिक बढ़ गया । उसने अहंकार के वशीभूत होकर विष्णु पर भी विजय प्राप्त करने का निश्चय कर लिया । वह एक दिन विष्णु के पास गया और उन्हें ललकारकर बोला, 'विष्णु, तुमने मधु और कैटभ जैसे हमारे मित्रों का संहार किया है । दैत्यकुल के लिए रत्न-समान हिरण्यकश्यप को तुमने अपने बाघनखों से चीरकर मार डाला । तुमने हमारे राजा बलि को पाताल में भेजकर तीनों लोकों पर अधिकार क[र] लिया । तुमने हमारी दैत्य-ललनाओं के आँसुओ[ं] से देवकुल रूपी खेतों को सींचकर उन्हें प्रवृद्ध किया । तुम्हारे इन सारे दुष्कृत्यों का प्रतिकार लेने के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ ।"

भगवान विष्णु ने कालनेमि को चेतावनी देते हुए कहा, "सुनो, दैत्यराज! दर्प के कारण तुम अनर्गल प्रलाप करने लगे हो। इसका फल तुम्हारे लिए अनुकूल नहीं होगा । शूरवीर व्यक्ति कभी दंभ नहीं करता और न तो तुम्हारी तरह ताल ठोंकता है । तुमने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त क[र] अहंकारवश अनेक दुष्कृत्य किये हैं । क्या तुम पहले हुई दानवों की दुर्गति की बात भूल गये? वही गति अब तुम्हारी भी होनेवाली है । तुम्हार[ा] वध करके मैं देवताओं को उनका खोया प[द] वापस दिलाऊँगा ।"

भगवान विष्णु के इन वचनों को सुनक[र] कालनेमि क्रुद्ध हो उठा । उसने अपनी शक्तिशाल[ी] गदा से गरुड़ को निशाना बनाया और भीषण हुंकार किया । वह गदा इस प्रकार गरुड़ को ज[ा] लगी, जैसे वज्रायुद्ध किसी पर्वत से जा टकराय[ा] हो । कालनेमि का यह दुस्साहस देखक[र] महाविष्णु चकित रह गये । उन्होंने गरुड़ की पीड़[ा] को तत्काल दूर किया और अपने एवं गरुड़ के शरीर का विस्तार किया । इसके बाद महाविष्णु [ने] कालनेमि को लक्ष्य कर अपना सुदर्शन-चक्र छोड़ा । सुदर्शन चक्र ने बड़े वेग से जाक[र] कालनेमि के सिरों एवं हाथों को काट डाला । इ

पर भी उस दानव का शरीर ज्यों का त्यों खड़ा रहा। उसके शरीर को गिराने के लिए गरुड़ ने अपने पंख फड़फड़ाकर ऐसा झंझावात उत्पन्न किया कि कालनेमि का शरीर भी गिर गया। इस दृश्य को देखकर कालनेमि के दैत्य अनुचर भयभीत होगये और वहीं जड़वत् खड़े रह गये। भगवान विष्णु ने उन सबका भी संहार किया।

कालनेमि सहित दैत्यों के संहार के बाद ब्रह्मा, इंद्र सहित समस्त देवताओं ने भगवान विष्णु के दर्शन कर उनका प्रस्तवन किया।

भगवान विष्णु ने प्रसन्न भाव से इंद्रादि देवताओं से कहा, "अब भविष्य में तुम्हें दानवों का भय नहीं रहेगा। तुम अपने लोकों के स्वामी हो! अब निश्चिंत होकर राज्य करो! यज्ञ भी अब निर्विघ्न संपन्न होंगे। पर सदा सतर्क रहकर दैत्यों की गतिविधि का अवलोकन करते रहो!"

इसके पश्चात् भगवान विष्णु क्षीर सागर को प्रयाण कर गये और शेष-शैय्या पर शयन कर योगनिद्रा में लीन होगये।

भगवान विष्णु के योग-निद्रा में मग्न रहते हुए ही कृतयुग समाप्त होगया। इसके पश्चात् त्रेतायुग भी समाप्त होने को आया। तभी भूदेवी आक्रोश प्रकट करने लगी कि उस पर प्रजा का भार बढ़ गया है और वह इस भार को वहन नहीं कर पारही है। उसका रुदन सुनकर देवता ब्रह्मा के पास गये और भूदेवी की व्यथा को उन्हें सुनाया। ब्रह्मा देवताओं के साथ भगवान विष्णु के पास गये और उन्हें योगनिद्रा से जगाया।

भगवान विष्णु ने धीरे से आँखें खोलकर देवताओं को देखा और उनसे कुशल-प्रश्न





किया,."देवगण, आप यहाँ किसलिए आये हैं? आप सब कुशल से तो हैं न? समस्त लोक असुरों के अत्याचारों से मुक्त तो है न?"

तब ब्रह्मा ने अग्रणी होकर करबद्ध हो भगवान विष्णु से निवेदन करते हुए कहा, "महाविष्णु, राजाओं में किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं है। सत्य एवं धर्म स्थित हैं। युगों का क्रम ठीक प्रकार चल रहा है। देवकार्य एवं पितरों के कार्य संतोषपूर्वक संपन्न हो रहे हैं। कोई किसी प्रकार की व्याधि से पीड़ित नहीं है। मानव पूर्णायु प्राप्त कर रहे हैं। प्रत्येक नगर एवं ग्राम अपार जनसंख्या से भरा है। भगवान, बस भूदेवी पीड़ित है क्योंकि वह प्रजा का भार वहन नहीं कर पा रही है और इसलिए रुदन कर रही है। धर्म की हानि न हो और पृथ्वी का भार घट जाये, ऐसे किसी उपाय के लिए प्रार्थी होकर हम आपके पास आये हैं। इसलिए, हम सब आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप मेरुपर्वत पर पधारकर वहाँ हम पर कृपालु हो हमारे कर्त्तव्य का बोध करायें !"

ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर भगवान विष्णु उठे, अपने वस्त्रालंकरण ठीक किये और अपने शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिन्ह धारण कर प्रस्थान के लिए उद्यत होगये। वे गरुड़-वाहन पर बैठकर क्षण भर में ही मेरु पर्वत पर जा पहुँचे। उस पर्वत पर प्राचीन काल में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित एक दिव्य सभाभवन था।

उस सभाभवन में महाविष्णु एक ऊँचे आसन पर विराजमान हुए। देव समुदाय भी यथोचित स्थानों पर आसीन हुआ। उस सभा में यक्ष, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग आदि भी उपस्थित थे।।

तभी उस सभा में भूदेवी अत्यन्त भारग्रस्ता और दुखी हो आ पहुँची। भूदेवी की दशा देख सब आपस में चर्चा करने लगे। वायु देव ने हाथ उठाकर कोलाहल शांत किया और भूदेवी से कहा, "देवि, अपने आगमन का कारण बताने की कृपा करो!"

"समस्त देवगण! आपसे कोई बात गुप्त नहीं है। पृथ्वी पर राजाओं और प्रजाओं के भार के बढ़ जाने के कारण मैं त्रस्त होगयी हूँ। यह भार इस सीमा तक बढ़ गया है कि मैं उसके नीचे दबी जा रही हूँ। यदि यह भार कम न हुआ, तो मैं जीवित नहीं रह सकती। श्री भगवान महाविष्णु



कृपा करें तो यह कार्य सरलतापूर्वक संपन्न हो सकता है। आप सब मेरे सम्माननीय हैं, बड़े हैं, मेरी सहायता करें!" भूदेवी ने व्याकुल भाव से अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी।

भूदेवी के वचनों को सुनकर सभा में उपस्थित देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग आदि सारे समुदायों ने परस्पर विचार-विमर्श किया और ब्रह्मदेव से निवेदन किया, "पितामह! आप ज्येष्ठ हैं, प्रजापति हैं, सृष्टिकर्ता हैं, आप कोई उपाय निकालें। भूदेवी की पीड़ा का हरण करना हम सबका परम कर्त्तव्य है।"

तब ब्रह्मा ने खड़े होकर सभासदों से कहा, "एक दिन संध्या के समय मैं तथा महामुनि कश्यप समुद्र-तट पर बैठे तत्व-चर्चा कर रहे थे। तभी चंद्रोदय हुआ। गंगा-संगम के कारण उफान पाकर समुद्र आकाश तक उठ गया और हम जहाँ बैठे थे, वहाँ पर भी आ पहुँचा और उसने हमें भिगो दिया। महामुनि कश्यप और मुझे हँसी आगयी। मैंने समुद्र से कहा, 'यह कैसा बालपन कर रहे हो? शांत हो जाओ!' मेरे शब्द सुनकर समुद्र तुरन्त शांत होगया। इसके पश्चात् वह मानव रूप धरकर गंगा के साथ हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष हुआ। उन दोनों को देखकर मेरे अन्दर भविष्य का एक रूप साकार हो उठा। मैंने कहा, 'हे सागर! तुमने अपने इस रूप में अपना राजस प्रकट किया है। अतः तुम पृथ्वी पर एक राजा के रूप में जन्म धारण करो। मेरी बात मानकर तुम तत्क्षण शांत होगये, इसलिए तुम शांतनु नाम से जाने जाओगे। देवी गंगा मानव रूप में तुम्हारी पत्नी होगी।'

"मेरी बात सुनकर सागर ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया, 'पितामह! पर्व के दिनों में वायु के प्रताड़न के समय, चंद्रोदय की बेला में उफान से भर उठना मेरा स्वाभाविक लक्षण है। यह कार्य मैंने किसी अहंकार या दुर्बुद्धि के कारण नहीं किया। ऐसी स्थिति में मुझे मानव होने का शाप देना कहाँ तक न्याय-संगत है?'

'वत्स, लोक-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर मैंने ये बातें कही हैं। यह शाप नहीं है। तुम पवित्र भरतवंश में जन्म धारण करो! इस गंगा के द्वारा वसुओं को जन्म देकर उन्हें वशिष्ठ के शाप से मुक्त करो! इसके बाद सत्यवती नाम की युवती से दो पुत्रों को जन्म देकर शरीर का त्याग कर दो!



ये दो पुत्र वंश को बढ़ाने वाले होंगे।' मैंने कहा।

"उसी शांतनु के एक पुत्र विचित्रवीर्य से धृतराष्ट्र एवं पांडु नामक दो पुत्रों का जन्म होगा। कालान्तर में धृतराष्ट्र के सौ पुत्र तथा पांडु के पाँच पुत्र होंगे। राज्याकांक्षा के कारण धृतराष्ट्र के उन सौ पुत्रों और पांडु के पाँच पुत्रों के बीच महायुद्ध होगा। उस युद्ध में पृथ्वी के समस्त राजा काम आयेंगे। लक्ष-लक्ष हाथी, घोड़े, सैनिक मृत्यु को प्राप्त होंगे। पृथ्वी का भार घट जाने के कारण भूदेवी सुखी हो जायेगी। कलह उत्पन्न करनेवाले कलि का अंश धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी के गर्भ से और यमराज का अंश पांडु-पत्नी कुंती के गर्भ से उत्पन्न होगा। अन्य अनेक देवताओं के अंश विभिन्न मानवों के रूप में जन्म लेंगे।"

ब्रह्मा के मुँह से भविष्य का सारा विवरण सुनने के बाद सारे सभासदों ने उनकी स्तुति की। उसी समय उस सभा में नारदमुनि का आगमन हुआ।

नारदमुनि ने वीणा-वादन करके भगवान विष्णु का स्तवन किया और समस्त देवताओं को आनन्द प्रदान किया। इसके बाद वे भगवान विष्णु से बोले, "हे भगवान, इन समस्त देवताओं ने पृथ्वी के भार को कम करने के लिए राजाओं और प्रजाओं के नाश का जो संकल्प लिया है, वह आपके सहयोग के बिना कैसे सफल हो सकता है? इसलिए पृथ्वी पर आपका अंशावतार आवश्यक है। आपको अपने दिव्य अंश के साथ पृथ्वी पर जन्म धारण करना होगा, अन्य देव-अंशों को भी प्रेरित करना होगा। तभी देवताओं का यह कार्य संपन्न हो सकेगा। इसके अलावा एक अत्यावश्यक कार्य और भी है, जो अन्य देव-अंशों से उत्पन्न मानवों के लिए असंभव है। उसी के बारे में चेतावनी देने के लिए मैं इतनी शीघ्रता से यहाँ आया हूँ। आप सुनें! देवासुर संग्राम में जिन असुरों का आपके द्वारा हनन हुआ, वे सब मानव रूप में जन्म लेकर पृथ्वी को आकीर्ण किये हुए हैं। त्रेतायुग में श्रीराम के हाथों से रावण का संहार हुआ। इसके बाद श्रीराम के आदेश से शत्रुघ्न ने रावण के भगिनीपुत्र मधु एवं उसके पुत्र लवणासुर का संहार किया। शत्रुघ्न ने असुर मधु की नगरी मधुपुरी का नाश करके मथुरा नाम से एक महानगर का निर्माण किया। उस पर अनेक राजाओं ने अनेक पीढ़ियों



तक शासन करके उसका विकास किया।किन्तु अब उसका राजा कंस है। वह भोजवंशी राजा उग्रसेन का पुत्र है। कंस और कोई नहीं, आदि युग का कालनेमि असुर है। पूर्व जन्म के असुर संस्कार उसके भीतर अब भी विद्यमान हैं। वह अपने पिता को कारागार में डालकर स्वयं राजा बन बैठा है। इसी प्रकार अन्य अनेक असुर भी पृथ्वी पर मानव रूप में जन्म धारण कर चुके हैं। कालनेमि के सभी बन्धु-बान्धव, मित्र, अनुचर कंस के सेवकों के रूप में जन्म लेकर कालिन्दी के तट पर, वृंदावन में, मथुरा नगरी में तथा अन्य स्थानों पर भी फैले हुए हैं। कुछ असुर प्राग्ज्योतिषपुर में जन्म लेकर नरकासुर के सहायक बने हुए हैं। उन सभी असुरों का संहार करने के लिए, हे प्रभु, आपको अवश्य ही मानव-जन्म धारण करना होगा।"

नारदमुनि की बातें सुनने के पश्चात् भगवान विष्णु ने ब्रह्मा की ओर अभिमुख होकर पूछा, "मैं अवश्य ही मानव रूप लेकर पृथ्वी पर उतरूँगा, पर प्रजापति, आप बतायें, मैं कहाँ और किससे जन्म धारण करूँ? पितामह, आप मेरे लिए निर्देश करें!"

ब्रह्मा ने विष्णु से कहा, "भगवान, वरुण और कश्यप की कथा तो आप जानते ही हैं। कश्यप ने वरुण के यज्ञ की धेनुओं का हरण कर लिया था। जब उन धेनुओं को लौटाने का प्रसंग आया तो कश्यप की पत्नियों—अदिति और सुरभि ने उन गायों को पुनः वरुण को लौटाने का निषेध किया। वरुण मेरे पास आये और कश्यप के इस कृत्य के बारे में बताया। मैंने रुष्ट होकर कश्यप एवं उनकी दोनों पत्नियों को मानव जन्म धारण करने का शाप दिया। अब वही कश्यप वसुदेव के नाम से कंस की गायों के अधिपति बने हुए हैं। अदिति और सुरभि इस समय देवकी और रोहिणी के रूप में वसुदेव की पत्नियां हैं। इसलिए आप अपने अंश को दो भागों में विभक्त कर वसुदेव की इन दोनों पत्नियों के भीतर प्रवेश कीजिए!"

भगवान विष्णु ने प्रजापति ब्रह्मा के आवेदन को स्वीकार किया और सभा को विसर्जित कर सबको विदा दी। इसके पश्चात् वे अपने निवास-स्थान क्षीरसागर को लौट गये।





मेरुपर्वत पर ब्रह्मा और महाविष्णु के आधिपत्य में देवताओं की सभा संपन्न हुई। नारद भी इस सभा में सम्मिलित हुए। सभा-विसर्जन के बाद नारद सीधे मथुरा नगरी पहुँचे। वे कंस के प्रासाद के द्वार पर पहुँचे ही थे कि प्रतिहारी उन्हें सादर महल में लिवा ले गयी।

कंस ने आगे बढ़कर नारद का स्वागत किया और अर्घ्य एंव पादोदक देकर उनकी पूजा की। कंस के आदर से नारद अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

तब नारद मुनि ने कंस की ओर अपनी भेदक दृष्टि डालकर कहा, "वत्स, मैं तुम्हें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्देश देने के लिए आया हूँ। तुम सदा से ही मेरे प्रिय रहे हो, तुम्हारे हित की चिन्ता करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी बीच मैं तीर्थाटन करता हुआ मेरुपर्वत पर जा निकला था। वहाँ विशाल देव-सभा देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह सोचकर कि वहाँ कोई गंभीर चर्चा चल रही है, मैं थोड़ी देर के लिए रुका। मैं क्या बताऊँ? तुम्हारे लिए बड़ा अमगंल है। सब देवता मिलकर तुम्हारे संहार की योजना बना रहे हैं। तुम्हारी चचेरी बहन देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाली आठवीं सन्तान के द्वारा तुम्हारे प्राणों के लिए संकट है। देवताओं के रक्षक महाविष्णु स्वयं देवकी-पुत्र के रूप में अवतार लेनेवाले हैं। अनेक देवता भी अलग-अलग स्थानों पर जन्म लेंगे। तुम्हें अपने प्राणों की रक्षा के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर लेना चाहिए। तुम राजा हो। साम, दाम, दंड, भेद की नीति तुम्हें स्वीकार होनी चाहिए। राजा के लिए



कुछ भी बिगड़ नहीं होता। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम धर्मपथ का अनुसरण करते हुए सुखपूर्वक जीवन यापन करो! बस, इसी सन्देश को तुम तक पहुँचाने के लिए मैं यहाँ आया था।" इस तरह समझाकर नारद वहाँ से चले गये।

नारद मुनि के प्रस्थान के बाद कंस ने अपने मित्रों, सेवकों की ओर देखकर अट्टहास किया, फिर बोला, "मैंने नारद के साथ अपना मैत्री सम्बन्ध इसलिए बनाकर रखा था, क्योंकि मैं सोचता था कि वह अत्यन्त बुद्धिमान है। लेकिन आज पता लग गया कि उसके अन्दर ज्ञान की कितनी कमी है। वह मुझे भयभीत करने के लिए यहाँ आया था। क्या मुझ जैसे शक्तिशाली व्यक्ति को ब्रह्मा, विष्णु या अन्य देवता डरा सकते हैं या वे मेरा कुछ बिगाड़ सकते हैं? मैं तो उन्हें कुछ समझता ही नहीं। यदि मेरा क्रोध प्रबल पड़ जाए तो मैं एक मुट्ठी के प्रहार से ही समस्त दिशाओं एवं दिक्पालों को दबा सकता हूँ। चाहे सारे पहाड़ चूर्ण हो जायें, समस्त महासागर सूख जायें, तो भी मैं विचलित होनेवाला नहीं हूँ। यह पृथ्वी और इस पर मानव बनकर जन्म लेने वाले देवता मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? वैसे भी, मैं इस पृथ्वी का स्वामी हूँ। इसके अलावा, न तो इस नारद के पैर थकते हैं, न मुँह बन्द होता है। वह बिना बुलाये हर जगह पहुँच जाता है, जो मुँह में आता है उगल देता है। वह एक को दूसरे के प्रति भड़काकर कलह पैदा करता है और स्वयं तमाशा देखता है। ऐसे व्यक्ति की बात को गंभीरता से लेना भी अपने आपमें एक मूर्खता है। फिर भी इसकी व्यवस्था मैं कर लेता हूँ। उसका कहना है कि यदुकुल की ओर से मेरे प्राणों के लिए खतरा है। इसलिए अरिष्ट, केशिप्रलम्ब, धेनुक, पूतना, कालिय आदि को सतर्क होकर मेरे शत्रुओं का संहार करना होगा। समस्त नवजात शिशुओं की हत्या से लेकर गर्भस्थ शिशुओं तक को नष्ट कर देना चाहिए। मेरे रहते हुए, मेरे सेवकों को किसी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। सबकी रक्षा के लिए मैं हूँ। सब स्वेच्छापूर्वक संचार करें

इसके पश्चात् कंस ने सभा विसर्जित की और अपने महल में विश्वसनीय मित्रों की एक गुप्त सभा बुलायी। इसके बाद उसने आदेश दिये





"आज से देवकी के लिए अनेक परिचारिकाओं का प्रबन्ध हो, जो प्रहरियों का कार्य करें। वसुदेव के प्रति भी पूरी सावधानी बरती जाये। देवकी ने कब गर्भधारण किया ? कितने माह चल रहे हैं? कब उसका प्रसव होगा, इत्यादि सारे विवरण मुझे तत्काल मिलने चाहिएं। पर याद रखो, यह सब कुछ अत्यन्त गुप्त रूप से होना चाहिए। ऐसा क्यों किया जा रहा है, इसका पता किसी को नहीं लगना चाहिए।" इसप्रकार कंस ने सबको अलग कर्त्तव्यों के प्रति सावधान कर दिया।

इस बीच नारद मथुरा नगरी से सीधे विष्णुधाम पहुँचे और उन्हें विस्तारपूर्वक कंस के साथ हुई अपनी वार्ता के बारे में बताया। नारद ने बताया कि उन्होंने कंस के मन में विष के बीज बो दिये हैं और कंस अब शिशु हत्या जैसे अनेक जघन्य कार्यों में प्रवृत्त हो रहा है। उन्होंने यह कहा कि कंस के पापों का घड़ा अब अ काल तक पृथ्वी पर नहीं रह सकता।

नारद के चलेजाने के बाद महाविष्णु विचार करने लगे कि कंस की सारी योजनाओं बचकर वे किसप्रकार अवतार लें। इस संद उन्हें एक पुराना वृत्तान्त स्मरण हो आया। कथा इस प्रकार थीः पाताल लोक में कालनेमि छह पुत्र रहा करते थे। उन्होंने सदा अमर रहने का वरदान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा लक्ष्य कर तपस्या आरंभ की। उस काल में लोकों पर हिरण्यकश्यपु का आधिपत्य था। उसे इन छह दैत्य-पुत्रों की तपस्या का पता ल तो उसने क्रुद्ध होकर शाप दिया, 'कुलश्रेष्ठ रहते हुए तुम लोग देवताओं आदि से वर पाने कामना करते हो? जाओ, तुम्हारे पिता ही तुम घात करेंगे।'

इस बात का स्मरण आते ही भगवान विष्णु योगमाया को पुकार कर आदेश दिया, "योग या, तुम्हारे द्वारा एक महान कार्य संपन्न होना कालनेमि के छह पुत्र हैं। उन छहों पुत्रों क्रमशः तुम्हें देवकी के गर्भ में प्रवेश कराना उनके जन्म लेते ही कंस एक के बाद एक को मार देगा। इस प्रकार हिरण्यकश्यपु का भी सत्य हो जायेगा और मेरे अवतरण का भी खुल जायेगा। देवकी जब सातवीं बार धारण करे, तो तुम गर्भ को रोहिणी के अन्दर देना। लोग यही सोचेंगे कि कंस के भय

ातवीं बार देवकी का गर्भस्राव होगया है। वह
शु मेरे बड़े भाई के रूप में रोहिणी के गर्भ से
न्म धारण करेगा। इसके बाद मैं देवकी की
आठवीं सन्तान के रूप में उसके गर्भ में प्रवेश
रूँगा। उस समय तुम भी कंस के गोपालक
न्द की पत्नी यशोदा कें गर्भ में प्रवेश करना।
म दोनों अर्धरात्रि के समय जन्म धारण करके
थान-परिवर्तन कर लेंगे। इसके बाद जब कंस
न्हें पत्थर पर पटककर मार डालने का प्रयत्न
रेगा, तब तुम आसमान में उड़ जाना। इंद्र
म्हारा स्वागत करने के लिए उपस्थित होंगे और
ादिशक्ति के रूप में तुम्हारा अभिषेक करेंगे।
स समय तुम्हारा मेघनीलवर्ण होगा, पूर्ण चंद्र
सा मुख मंडल होगा, हाथों में शारंग, चक्र,
दा, पद्म खड्ग, मधुकलश, मूसल तथा शूल
वं शरीर पर नील वर्ण की रेशमी साड़ी धारण
कर तुम समस्त देवताओं के द्वारा श्रद्धा एवं
भक्तिपूर्वक पूजित होओगी।"

योगमाया भगवान विष्णु के आदेश को हृदयंगम कर वहाँ से चली गयी। योगमाया की शक्ति से देवकी ने कालनेमि के छह पुत्रों को छह बार गर्भ में धारण किया। जब भी देवकी का प्रसव-काल निकट आता, तब-तब कंस के सेवक यह समाचार तुरन्त कंस को दे देते। कंस देवकी के कक्ष में प्रवेश कर उस शिशु को लेजाता और उसके पैर पकड़कर उसे पत्थर पर पटक देता। इस प्रकार कंस ने देवकी के छह पुत्रों की दारुण हत्याएँ कीं।

देवकी जब सातवीं बार गर्भवती हुई, तब योगमाया उस गर्भ को लेगयी और उसे रोहिणी की कोख में रख दिया। भगवान का दिव्य अंश रोहिणी के गर्भ में बड़ा होने लगा। उधर देवकी





के बारे में यह बात फैल गयी कि देवकी के सातवां गर्भ नष्ट होगया है । रोहिणी ने नियत समय पर पूर्ण चंद्र जैसे सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । गर्भ-संरक्षण द्वारा उत्पन्न होने के कारण यह पुत्र सकर्षण कहलाया । इसी का नाम बलभद्र अथवा बलराम पड़ा ।

बलराम के जन्म के पश्चात् देवकी ने आठवीं बार गर्भ धारण किया । उसी दिन गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा ने भी गर्भ धारण किया । नौ माह पूरे होकर दसवाँ माह चलने लगा । श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में अष्टमी के दिन अर्धरात्रि के समय जब पाँच ग्रह उच्च दशा में थे, उस मुहूर्त में भगवान विष्णु के अंश ने कृष्ण का रूप लेकर देवकी के गर्भ से जन्म लिया । उस क्षण देवकी एवं वसुदेव के अतिरिक्त सब निद्रामग्न थे पहरेदार गाढ़ निद्रा में मग्न शवों की भाँति पड़े हुए थे ।

जब देवकी के गर्भ से कृष्ण ने जन्म लिया, पास न होने पर भी वसुदेव के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि देवकी के पुत्र हुआ है । वह तत्काल देवकी के पास गये । वहाँ उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो चंद्रोदय होगया है । शिशु का सौन्दर्य दिव्य और अलौकिक था । उसके प्रभाव से वातावरण दीप्तिमान हो उठा था । सद्यजात शिशु घने केश एवं मेघवर्ण की द्युति से शोभायमान था । उसकी देह में कहीं छोटा-सा भी धब्बा या मालिन्य न था और वह अपने विशाल नेत्र खोलकर चारों दिशाओं में देख रहा था । उसकी नीलोत्पल छवि से आँखें हटाये न हटती थीं ।

"मैं दुष्ट कंस को इस शिशु की हानि न करने दूँगा । मैं इसे अभी कहीं ले जाकर छिपा दूँगा ।" वसुदेव ने अपने मन में सोचा ।

देवकी ने प्रसव-वेदना का अनुभव किये बिना उस शिशु को जन्म दिया था । पर इसके बाद उसकी समझ में न आया कि आगे उसे क्या करना है । वह किसी भी तरह इस शिशु की प्राण-रक्षा चाहती थी । उसे नारद की भविष्यवाणी का विचार आया । निश्चय ही इस शिशु की रक्षा होगी । कंस इसका स्पर्श भी नहीं कर सकेगा । वसुदेव ने शिशु को कहीं छिपा देने की अपनी योजना को देवकी को बताया और उसकी गोद से उस शिशु को उठा लिया । इसके बाद वसुदेव



बड़ी तीव्र गति से गोपालक नन्द के घर पहुँचे। नन्द-पत्नी यशोदा एक बालिका को जन्म देकर निद्रामग्न थी। वसुदेव ने उसके पार्श्व में अपने पुत्र को लिटा दिया और उसकी कन्या को उठाकर अत्यन्त शीघ्रता से देवकी के कक्ष में लौट आये। उन्होंने उस कन्या को देवकी के पार्श्व में लिटाया और कंस के पास जाकर बताया कि देवकी ने एक शिशु को जन्म दिया है।

यह समाचार सुनते ही कंस घबराकर उठ बैठा और जल्दी से अपनी वेशभूषा संवारकर देवकी के कक्ष के द्वार पर जाकर खड़ा होगया। उसने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, "शिशु को मुझे दो।"

देवकी ने उस अद्‌भुत सुन्दर कन्या को अपने वक्ष से लगा लिया और कहा, "भैया, क्रोध मत करो! इस बार मैंने एक लड़की को जन्म दिया है। यह दुर्बल तुम जैसे जगत-विख्यात वीर का क्या बिगाड़ सकती है? कृपा करके इसे जीवित रहने दो! इसके पहले जो बालक जन्मे, वे सब लड़के थे। तुमने उनका वध किया, पर मैं इसलिए मूक बनी रही कि कहीं उनके द्वारा तुम्हारी कोई हानि न हो जाये। इसलिए इस बार मुझ पर दया करो, इस कन्या को छोड़ दो!"

पर कंस पर देवकी की मिन्नतों का कोई प्रभाव न पड़ा। उसके हृदय में तो अपनी मौत का भय समाया हुआ था—आँखों में हर क्षण मौत ही नाचा करती थी।—काल का रूप क्या होगा, कोई नहीं जानता-वह देवकी की किसी भी संतान को जिवित नहीं छोड़ेगा, फिर यह तो आठवीं अमांगलिक संतान है। वह प्रसूति-गृह में घुसने लगा। यह देख वहाँ की प्रतिहारियाँ हाहाकार कर उठीं। कंस ने देवकी के हाथों से बलपूर्वक शिशु को छीन लिया और अन्य शिशुओं की भाँति उसे पत्थर पर पटकने लगा कि तभी वह बालिका कंस के हाथों से निकलकर ऊपर उठी और आदि शक्ति का रूप धारण कर आकाश में खड़ी होगयी। इसके बाद वह पान कलश से मधु पीकर अट्टहास करती हुई कंस से बोली, "अरे दुष्ट! मुझे पत्थर पर पटककर मार डालना चाहता था, पर मैं स्वयं तेरी कालमृत्यु हूँ। जब तेरा प्रबल शत्रु तेरा घात करने आयेगा, तब मैं मृत्युदेवी बनकर तेरे प्राणों का हरण करूँगी। तू क्या सोचता है कि तू भवितव्यता को टाल सकता है,

अब तू गर्व मत कर! तेरा संहारक जन्म ले चुका है। तेरी मृत्यु निश्चित है।" यह कहकर योगमाया अदृश्य होगयी।

उसी समय कंस देवकी के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला, "बहन, मैंने प्राणों के भय से महान पाप किये हैं। तुम्हारे सभी बच्चों को मारकर तुम्हें अपार दुख पहुँचाया है। फिर भी, मेरा प्रयत्न सफल नहीं हुआ। तुच्छ मानव के प्रयत्न से ब्रह्मा के लेख को मिटाना असंभव है। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं, प्राणियों के रक्षक और संहारक तो स्वयं कालपुरुष है। इसलिए तुम अपने दुख को भूल जाओ। मैं तुम्हारे पैर पकड़कर तुमसे विनती करता हूँ।"

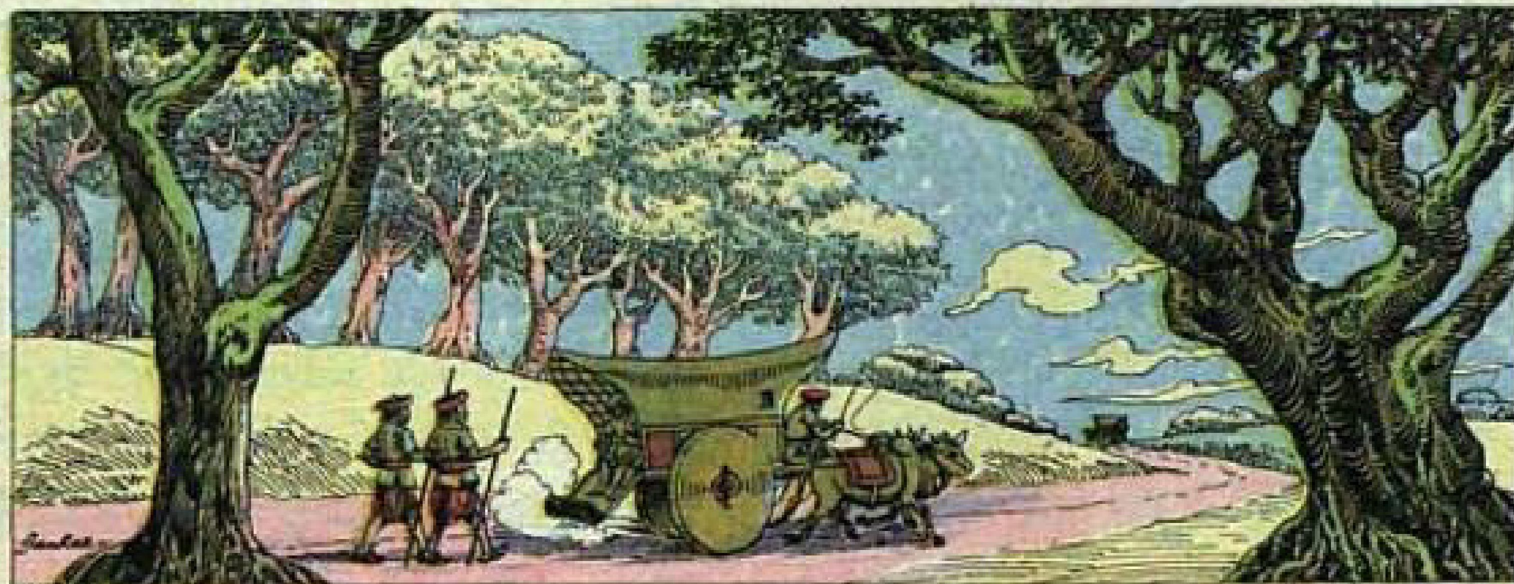
देवकी ने कंस को सांत्वना देकर कहा, "भैया, मेरे ललाट में यह दुख भोगना लिखा था, ऐसी हालत में तुम क्या कर सकते हो? मैं अपने प्यारे भाई के हाथों से ही इस दारुण दुख को झेलने के लिए इस पृथ्वी पर आयी थी, तुम शोक मत करो!" देवकी ने कंस को समझाकर विदा

सुबह होने से पहले ही वसुदेव नन्द गोपालक के घर पहुँचे। नन्द पुत्र-जन्म के उल्लास में मग्न थे। उनहें अत्यन्त प्रसन्न देख वसुदेव ने कहा, "तुमने कैसे सुन्दर पुत्र को पाया है! तुम भाग्यवान हो! तुम अपने पुत्र को लेकर अपने गाँव गोकुल चले जाओ! वहाँ मेरी पत्नी रोहिणी के भी एक पुत्र है। उसे तुम अपना ज्येष्ट पुत्र मानना और इस बालक को अपना कनिष्ठ पुत्र मानना। क्रूर पापी कंस ने देवकी के गर्भ से उत्पन्न सभी शिशुओं को मार डाला है। बस, रोहिणी से जन्म लेनेवाला बालक ही बच गया है।

कंस ने शिशुओं का संहार करने के लिए पूतना को नियुक्त किया है। वह शिशुओं की खोज करती घूम रही है।

तुम इस नगर में शुल्क जमा करने आये हो न? यह काम भी पूरा होगया है। इसलिए तुम अब थोड़ा भी विलम्ब किये बिना यहाँ से चले जाओ।

वसुदेव के मुख से सारी बात सुन-समझकर नंद शिशु और अपनी पत्नी यशोदा के साथ छोटी बैलगाड़ी पर सवार होगये और शीघ ही अपने गोपालकों एवं पशु समुदाय के निकट जा पहुँचे।





कालिंदी के तट पर गोकुल नाम का एक बड़ा गाँव था। गोकुल अत्यन्त हरा-भरा संपन्न गाँव था। वहाँ गाय, बैल, बछड़ों के झुंड घूमा करते थे। वहाँ अधिकतर ग्वाले ही रहते थे स्तरी-पुरुष अनेक कार्यों में निमग्न रहते थे और वह गाँव सदा खुशहाल और समृद्धि से परिपूर्ण था। वसुदेव की प्रेरणा से नन्द सपरिवार उस गोकुल ग्राम में आगये। गोकुल के वृद्ध एवं अन्य सम्माननीय लोगों ने आगे बढ़कर नन्द की अगवानी की और उनका अभिनंदन किया। नन्द ने सबकी कुशल-क्षेम पूछी, प्रत्येक का नाम लेकर उससे बातचीत की। इसके बाद सबके साथ गोकुल में प्रवेश किया। वृद्धा गोपिकाओं ने नन्द के घर आकर यशोदा के लाल का जन्मोत्सव मनाया। रोहिणी भी आयीं। नन्द ने उनका स्वागत-सम्मान किया।इसप्रकार वसुदेव के पुत्र को अपना पुत्र मानकर नन्द उसका पालन करने लगे।

अब बालकृष्ण गोकुल में ग़ोप-गोपिकाओं का प्यार पाकर बड़े होने लगे। कुछ समय बीत गया।

उधर कंस ने भ्रूणहत्या और शिशुहत्याओं के लिए अनेक राक्षसों को नियुक्त किया। इनमें पूतना राक्षसी आयु में सबसे बड़ी और अत्यन्त भयंकर थी। उसकी आकृति भीषण और स्वभाव नृशंस था। इस पूतना राक्षसी के बारे में अनेक कथाएं प्रचलित थीं सभी उसके नाम से थर्राते थे पूतना अपनी क्रूरता के लिए विख्यात थी। एक रात वह शिशुओं की खोज में चल पड़ी और गोपनायक नन्द की गाड़ी के नीचे माँ की बगल में



लेटे कृष्ण को देखा। बालक के मुखमंडल पर तेज दमक रहा था और वह अन्य समस्त शिशुओं से भिन्न था। इस अद्‌भुत बालक को देख पूतना ने सोचा कि शायद कंस का संहार करने के लिए पैदा हुआ बालक यही हो। कंस जैसे महाबली राजा का संहार किसी साधारण मानव से कैसे हो सकता है ?

कंस के संहारक बालक का विचार आते ही पूतना क्रोधोन्मत्त हो उठी। उसके दांत किट किटाने लगे और उसकी आंखों से अंगारे फूट निकले। उसकी भौंहें तन गयीं। माथे से पसीना छूट निकला। सांस तेज़ी से चलने लगी। उसने उस बालक को माँ के पार्श्व से झपटकर उठा लिया और अपने विष पुते स्तनों को उसके मुख में ठूंस दिया। कृष्ण बड़ी जोर से चीखे और पूतना के चुचुक को अपने दांतों से कसकर भींच लिया। इसके बाद उन्होंने अपनी शक्ति से पूतना के दूध के साथ उसकी सप्त धातुओं को भी चूंस डाला। पूतना अत्यन्त विकृत स्वर में आर्तनाद करके वहीं पर गिर पड़ी।

पूतना का भयंकर आर्तनाद सुनकर रेवड़ के सभी गोप चौंककर जाग उठे। कृष्ण का रुदन सुनकर यशोदा पहले ही जाग गयी थी, पर अपनी बगल में शिशु को न पाकर घबरा रही थी। उसने व्याकुल स्वर में नन्द को पुकारा। नन्द जब यशोदा के समीप आये, तब तक पूतना के चीत्कार से अन्य गोप भी आ पहुँचे। उन्होंने राक्षसी पूतना की लाश को देखा। उस भयंकर दानवी की गोद में कृष्ण एक छोटे पक्षी की तरह छिपे हुए दिखाई दिये।

यशोदा और नन्द अपने पुत्र को देखकर नीचे झुके और 'हा बेटा'! कहकर शिशु को तुरन्त गोद में उठा लिया।

"यह सब क्या है? यह दानवी पूतना यहाँ कैसे आयी ? जब इसने कृष्ण को उठाया, तब तुम कहाँ थीं। क्या बालक तुम्हारी बगल में नहीं था ?" नन्द ने रोषभरे स्वर में यशोदा से पूछा।

"मैंने कृष्ण को भरपेट दूध पिलाकर सुला दिया था। मशाल जल रही थी। मैं बड़ी देर तक जागती रही। बस, पल भर को ही मेरी आँख लगी थीं कि यह घटना घट गयी। यह राक्षसी कहाँ से आगयी और कृष्ण को उठा लिया, मैं कुछ नहीं जानती। पता नहीं, यह कैसी माया है?

फिर भी हमारा पुत्र इस राक्षसी के हाथों से बच गया है। हमारे बेटे की आयु अवश्य ही सहस्त्र वर्ष की है। यह तो हमारे लाल का पुनर्जन्म हुआ है।" यशोदा ने कहा।

कृष्ण एक भयंकर ख़तरे के मुख में जाकर सकुशल लौट आया है, यह जानकर सारे गोपालक बहुत ही प्रसन्न हुए। सबका हृदय आश्चर्य और उल्लास से उमग रहा था। उन सबने मिलकर पूतना के शव को खींचकर दूर फेंक दिया। नन्द ने अपने पुत्र को अपनी बाँहों में उठाया, उसकी दीठ उतारी और संपूर्ण हृदय से उसे आशीर्वाद दिया। सब कृष्ण की बलैया लेने लगे।

समय बीतने के साथ कृष्ण भी बढ़ने लगा।

एक दिन वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्ग नाम के ब्राह्मण को गुप्त रूप से गोकुल में भेजा। पुरोहित शुभ मुहूर्त में गोकुल पहुँचा और रोहिणी एवं यशोदा के पुत्रों के जातकर्म संस्कार संपन्न किये। पुरोहित ने उन बालकों का नामकरण संस्कार भी किया। रोहिणी के पुत्र का नाम बलराम और यशोदा के पुत्र का नाम कृष्ण रखा गया। इसप्रकार वसुदेव परोक्ष में रहकर भी बलराम और कृष्ण के लालन के बारे में पूरी तरह सचेत थे।

नन्द ने संस्कारों को बड़ी धूमधाम से मनाया। ब्राह्मणों को बुलवाकर उन्हें षड्रसपूर्ण भोजन कराया गया और उन्हें गायों एवं वस्त्रों का दान दिया। गोकुलवासी अपने सभी मित्र-सम्बन्धियों को नन्द ने वस्त्र भेंट किये। गोपूजन हुआ और गोशाला को अलंकृत किया गया। गोपिकाओं ने





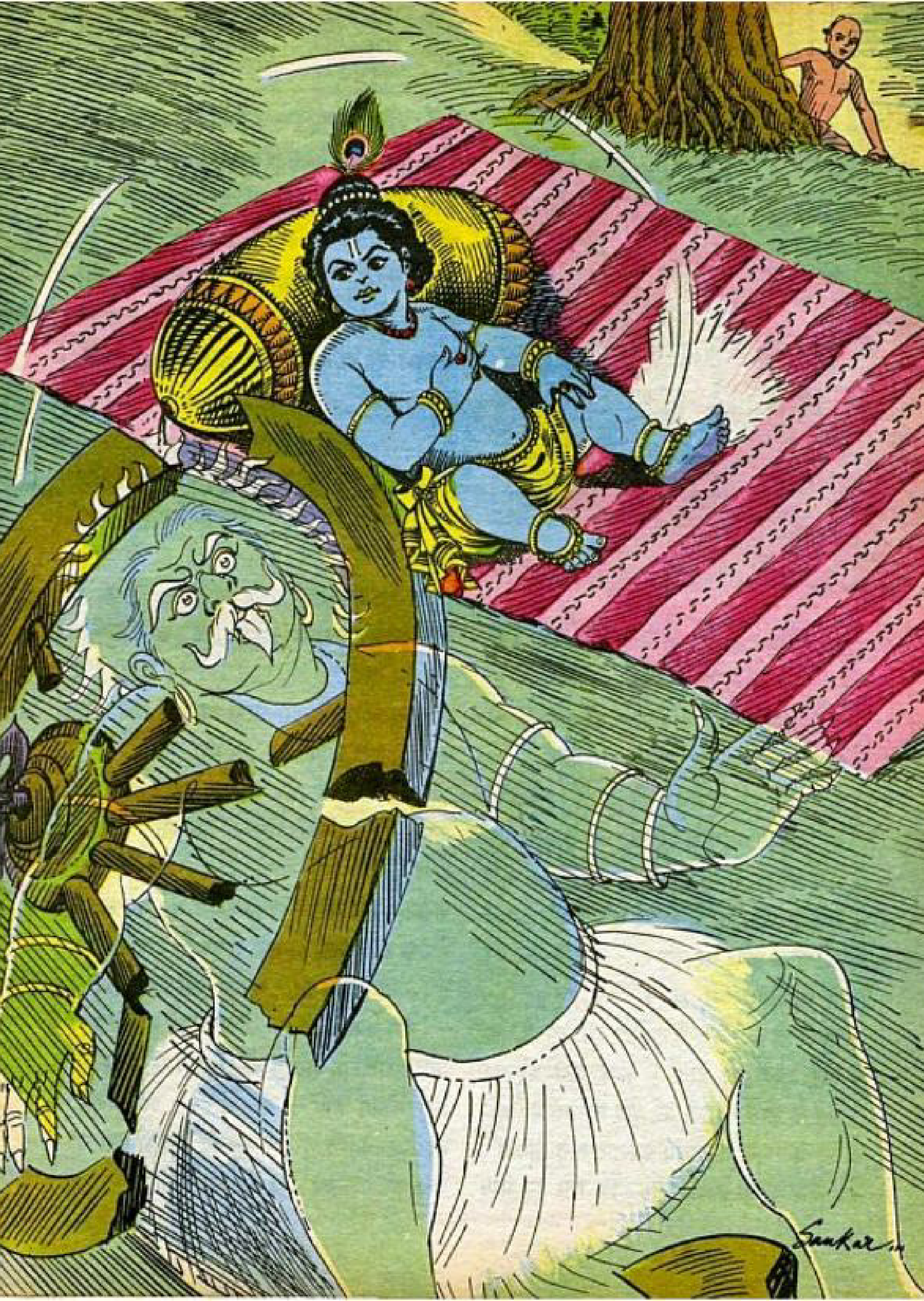
कृष्ण जैसे अद्‌भुत बालक को जन्म देने के उपलक्षय में यशोदा का अभिनंदन किया। गोपालकों ने नन्द का अभिनंदन कर उन्हें अनेक बधाइयां दीं।

उधर मथुरा में कंस को पूतना की मृत्यु का समाचार मिला। पूतना की मृत्यु साधारण घटना नहीं थी। कंस के सेवकों एवं गुप्तचरों ने सारा समाचार उसे सविस्तार सुनाया। अब तो गोपालकों के नायक नन्द के पुत्र पर कंस का संदेह केन्दित होगया। वह उसे किसी भी प्रकार नष्ट करने का विचार करने लगा। साथ ही, उसके भीतर भय भी समा गया। उसने अपने राक्षस सेवकों को सावधान करते हुए उन्हें कड़ी चेतावनी दी। कंस ने सबको आदेश दिया कि किसी भी उपाय से कृष्ण का वध कर दिया जाये।

कंस के सेवक राक्षसों में शकट नाम का एक असुर था। उसने अदृश्य रहते हुए कंस की गाड़ी में प्रवेश किया और ऐसे मौक़े का इन्तज़ार करने लगा, जब वह कृष्ण पर आक्रमण कर सके।

एक दिन जब बालक कृष्ण निद्रामग्न होगये, तो यशोदा माता ने गाड़ी के नीचे बिस्तर लगाकर कृष्ण को सुला दिया। गोप लोग जिन गाड़ियों को चारे आदि के लिए प्रयोग में लाते थे, उन्हें शकट भी कहा जाता था। शकटासुर नंद के शकट में ही छिपा था। कृष्ण सो रहे थे। यशोदा अन्य गोप-नारियों के साथ स्नान करने के लिए जमुना की तरफ़ चली गयी। कुछ ही देर बाद कृष्ण जाग गये। समीप में किसी को न देखकर उन्होंने दोनों हाथ अपने मुँह में ठूंस लिये और रोने लगे। आँखों का काजल मुँह पर फैल गया। वे पैर पटक कर कुछ देर उछलते रहे। पैर पटकने की ही क्रिया में कृष्ण ने खींचकर अपनी लात शकट पर दे मारी। शकट टूट कर टुकड़े-टुकड़े होगया।

इसी बीच यशोदा स्नान करके लौट आयी। देखा, शकट के टुकड़े-टुकड़े होगये हैं और कृष्ण वहीं पर पड़ा है। वह ज़ोर से चीत्कार कर उठी, फिर शिशु को अपनी छाती से लगाकर बोली, "हे राम! मैं तो यह सोचकर स्नान करने के लिए नदी पर चली गयी थी कि मेरा बेटा सो रहा है। पर अब यह सब देखकर पता नहीं, गोप-नायक मुझे क्या कहेंगे ? पता नहीं इस शकट की यह दुर्दशा कैसे हुई? इस बात को कौन बतायेगा ? मैं अपने पति को क्या उत्तर दूँगी ?" यह कहकर


Sankar



यशोदा ने कृष्ण को गोद में लिटा लिया और उन्हें दूध पिलाने लगी।

इसी बीच नन्द अपने साथी गोपालकों के साथ बातचीत करते हुए वहाँ पर आ पहुँचे। हाथ में लाठी थी, वस्त्र धूल से सने हुए थे। गाड़ी से निकले पहियों एवं टूटी हुई धुरी को देखकर नंद के कंपकंपी छूट गयी। कृष्ण इस शकट के नीचे तो हमेशा सोता है। शकट इस प्रकार ध्वस्त होगया है तो कृष्ण का क्या हाल होगा ? नन्द की चिंता का पार नहीं था।

दूसरे ही क्षण नन्द ने यशोदा एवं उसकी गोद में लेटे कृष्ण को देखा। कृष्ण बड़ी प्रफुल्ल आँखों के साथ यशोदा का मुख निहारते हुए दूध पी रहे थे। नन्द का हृदय एकदम शांत होगया। उन्हें ऐसा प्रतित हुआ मानो उनके गये हुए प्राण वापस लौट आये हैं। उन्होंने अपने वक्ष पर हाथ फेरते हुए अपनी पत्नी से कहा, "शकट की यह हालत कैसे होगयी ?" नन्द के मन में यह शंका भी थी कि शायद आंधी के कारण शकट के टुकड़े होगये हैं अथवा बैलों ने बिगड़कर अपने सींगों से इसे तोड़ डाला है। फिर नन्द ने अपने आपको सांत्वना देते हुए प्रसन्नतापूर्वक कहा, "चाहे जो हो, हमारा बेटा सकुशल है ! बस, यही बड़े आनन्द की बात है।"

यशोदा का कंठ रुद्ध होगया। वह गद्गद स्वर में बोली, "सारा दोष मेरा ही है। मैंने सोचा, बच्चा आराम से सो रहा है, नदी भी दूर नहीं, जल्दी से स्नान कर लौट आऊँगी—बस, मैं गोप-स्त्रियों के साथ नदी में नहाने चली गयी। लौटकर देखती हूँ तो गाड़ी टूटी हुई मिली और कृष्ण सुरक्षित। हमारा भाग्य प्रबल है कि हमारा बच्चा इतनी बड़ी मार से बच गया।"

इतने में कुछ गोप बालक वहाँ खेलते हुए आये, बोले, "यशोदा मैया! हम लोग यहाँ पर खेल रहे थे, तब तुम्हारे कृष्ण ने पैर फैलाकर शकट पर दे मारे, जिससे शकट की यह हालत होगयी है। वाह! तुम्हारा कृष्ण तो अद्‌भुत है। हमने तो ऐसा पहले कभी नहीं देखा।"

गोप बालकों के मुँह से यह सब सुनकर नन्द और यशोदा के आश्चर्य की सीमा न रही। दोनों ने मिट्टी लेकर बच्चे की दीठ उतारी। ऐसे अद्‌भुत कार्य करनेवाले इस शिशु को कहीं किसी की नज़र न लग जाये। नंद ने देवताओं से प्रार्थना की



कि वे सदा उनके पुत्र की रक्षा इसीप्रकार करते रहें अनेक गोप वहाँ एकत्रित होगये और सारा वृत्तान्त सुनकर अवाक रह गया। इसके बाद उन्होंने टूटे हुए शकट की मरम्मत की।

दिन बीतते गये। कृष्ण बड़े होने लगे। अब वे औंधे मुँह लेटकर चारपाई तक रेंग सकते थे। कृष्ण कभी किलकारी मारते, कभी अपने माता-पिता की उंगली पकड़ने के लिए लड़खड़ाते हुए चलते। उन्हें लोग तालियाँ बजाकर पास बुलाते। जो भी कृष्ण को देखता, गोद में ले लेता और चुमकारी लेता। कृष्ण कई बार पैंजनियां झनझनाते हुए तिरछी दृष्टि से सबको देखते हुए कहीं भागकर छिप जाते। कभी वे यशोदा की गोद में आने का बहाना कर नन्द की गोद में चले जाते-कभी नन्द के पास जाते-जाते यशोदा की गोद में चढ़ जाते। कृष्ण की इन मधुर लीलाओं को देखकर लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहता

यशोदा कृष्ण को प्रतिदिन मक्खन खिलाती। जब वह अपने गृहकार्यों को पूरा करने के लिए जाती तो कृष्ण भी लड़खड़ाते कदमों से उसके पीछे चल देते। कृष्ण अब गोपिकाओं के घर भी जाने लगे थे। वे पैजनिया बजाते उनके घर पहुँच जाते और खुशामद करके मक्खन मांग लेते। सारा मक्खन खा लेने पर भी वे और मक्खन खाने का हठ करते। अगर कोई गोपिका मक्खन न देती तो वे उसकी मथनी पकड़कर उसे दही न बिलोने देते। वे रुष्ट होकर उसकी वेणी खोल देते, साड़ी का आंचल पकड़कर खींच लेते। कृष्ण अपनी बाल-क्रीड़ाओं के कारण सारे गोकुल के अत्यन्त प्रिय होगये थे। सब उन्हें इतना प्रेम करते, मानो गोकुल में वे एक अकेले बालक हों।

गोपिकाएं यदि कहतीं, "कृष्ण, हम तम्हें मक्खन खिलायेंगी, तुम थोड़ा नाचकर दिखाओ तो वे अपने घुंघरू को झंकार कर ठुमक ठुमक नाच उठते। गोपिकाएं छाछ बनाना छोड़कर कृष्ण की उन लीलाओं को देखकर तन्मय होजातीं। कृष्ण सारे दिन गोकुल के घरों में घूमते फिरते। कभी-कभी वे गोपिकाओं को इतना तंग करते कि वे उन्हें घेर लेतीं और पुकार कर कहतीं, "कृष्ण को पकड़ लो! चोर को पकड़ लो!" अंत में वे कृष्ण को यशोदा के हाथ में

सौंप आतीं। कभी-कभी गोपिकाएं उलाहना देकर यशोदा से कहतीं, "नन्द रानी! तुम अपने इस लाल को बांधकर रखा करो, वरना यह एक दिन हम सबको बांध देगा।"

समय बीतने के साथ कृष्ण की लीलाएं भी बदलती गयीं। सारे गोप बालक बलराम और कृष्ण के चारों ओर एकत्रित हो जाते। वे सब की मटकियों को उतारकर सारा मक्खन चाट जाते। पात्रों के दही और छाछ ग्वाल बालों में बांट देते। जो बच जाता उसे वे फ़र्श पर फेंककर पैरों से लुढ़का देते। कृष्ण की इन शरारतों को रोकना किसी के लिए संभव नहीं हुआ। क्षीरसागर के मंथन के बाद उसमें से निकले अमृत को जिस प्रकार मोहिनी रूपधारी भगवान ने सारे देवताओं में बांट दिया था, वैसे ही गोपों के घरों के दूध, मलाई, मक्खन को कृष्ण अपने सारे साथियों में बांट देते। छीके टूट जाते, मटकियां लुढ़क जातीं, घड़ों के दूध में छाछ मिला दिया जाता। दही में दूध, मक्खन में दही, छाछ में घी इसप्रकार कृष्ण बहुत तरह के काम करते। अंगारों पर घी डालकर उनमें चिनगारियां पैदा करते और घरों के बछड़ों को खोल देते ताकि वे गायों का दूध पी जायें। कृष्ण बहंगियों की रस्सियाँ तोड़ कर उनसे गोप बालकों के साथ खेल खेलते। हर खेल में उन्हें हरा कर उनकी पीठ पर मार लगाने की सज़ा देते। वे बालकों की पीठ पर बारी-बारी से चढ़ते और उन्हें घोड़े की तरह हांकते।

इसप्रकार बालकृष्ण अपनी चंचलताओं से गोकुल के सभी निवासियों को एक ओर तो परेशान करते, दूसरी ओर उनका मन हर लेते। कभी-कभी गोप कृष्ण की चेष्टाओं से इतने असहाय हो जाते कि उनकी कुछ भी समझ में नहीं आता कि वे क्या करें। उन्हें ऐसा लगता था कि बालकृष्ण उनका खिलौना नहीं, बल्कि वे उनका खिलौना हैं। कृष्ण के कार्य एक साधारण बालक के मनमोहक कार्य नहीं थे, बल्कि वे किसी अलौकिकता का आभास भी मिलता था। वास्तव में यह बाल कृष्ण की नहीं, बाल भगवान की लीला थी। हर खेल न केवल खेल था, बल्कि एक उपदेश भी था। (क्रमशः)






कृष्ण की चंचलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जारही थी। उनकी शरारतों से गोकुल के लोग परेशान हो उठे थे। कृष्ण अपने कार्यों से एक ओर तो गोप-गोपिकाओं को चकित कर देते, दूसरी ओर उन्हें कठिनाई में भी डाल देते। कृष्ण के नटखट कारनामों को गोकुल के गोप तो सहते रहे, पर गोपिकाओं से चुप न रहा गया। उन्होंने एक दिन एकत्रित होकर आपस में परामर्श किया और कृष्ण की शिकायत करने के लिए यशोदा के पास गयीं। अब तो एक के बाद एक कृष्ण के क्षतिपूर्ण कार्यों का किस्सा आरंभ होगया।

चम्पा नाम की एक गोपी ने तीखे स्वर में यशोदा से कहा, "नन्दरानी, हमें यह बताओ, क्या तुम्हारा ही बेटा दुनिया में अनोखा है? क्या और माँओं के बेटे उनके लाड़ले नहीं हैं ? यह कृष्ण हमें जीभर कर परेशान करता है और तुम उसे कुछ नहीं कहतीं। ऐसा एक दिन भी नहीं जाता, जब हमारे जी को क्लेश न होता हो। हम बच्चा समझकर इसकी करतूतों को सहन करती रहीं, पर अब हमसे नहीं सहा जायेगा। तुम धनी-मानी हो, हमारे नायक की पत्नी हो, तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारी सन्तान दूसरों का जीना दूभर कर दे। तुमने ही इसे इतना उद्दंड बना दिया है। इतना लाड़ पाकर यह सिर चढ़ गया है और किसी को कुछ समझता ही नहीं। यह बेरोक-टोक हमारे घरों में घुस जाता है और तोड़-फोड़ करके भाग जाता है। तुमने सब कुछ जानते हुए भी अपनी आँखें मूंद रखी हैं। हम पर थोड़ी दया करो!"

अभी चम्पा ने अपनी बात पूरी ही की थी कि मालती नाम की गोपी ने शिकायत शुरू कर दी,



बोली, "तुम्हारा लाड़ला बेटा कन्हाई हमारे घर में घुसा और मटकियों में भरे दूध, दही, मक्खन को कुछ खा गया और बाकी को उलटा कर भाग गया। हमारे हाथ कुछ नहीं बचा। अब तुम्हीं बताओ, हम इतना नुक़सान क्यों सहन करें? हम तुम्हारी तरह धनी मानी नहीं हैं। दूध-दही से ही अपनी रोटी चलाती हैं। तुम्हारे इस सपूत के कारण हमें दूध-दही न खाने को बचता है न बेचने को।"

अब गोपी रमा की बारी आयी। वह हाथ मटका कर बोली, "सुन माई, मेरे साथ क्या हुआ?मैं ने तो अपने मक्खन की मटकियों को ऊपर छीकों पर रख दिया था, ज़मीन पर भी नहीं रखा था। पर तुम्हारा यह छोटा-सा कान्हा नाम का ही छोटा है, है पूरा राक्षस। न जाने कैसे इसका हाथ ऊपर पहुँच गया। मटकियां तो फोड़ ही डालीं, साथ ही छीकों को भी तोड़ डाला। यह तो पूरा अत्याचार है। कितने दिन इसकी दुष्टता को सहन करें हम? प्रतिदिन ही कोई न कोई घटना होती है। अब तो बस एक ही उपाय रह गया है कि हम गोकुल छोड़कर भाग जायें।" कहते-कहते श्यामा की आँखों से आँसू बहने लगे।

अपनी सखि को रोते देख विजया गोपी का क्रोध भड़क उठा। उसने श्यामा से कहा, "बहन, तू रो मत, रोने से काम नहीं चलनेवाला है।" फिर यशोदा की तरफ़ घूमकर बोली, "नन्दरानी! अब तुम इस गाँव में अपने लाड़ले के साथ अकेली बसो। हमसे यहाँ नहीं रहा जायेगा। तुम्हारे बेटे ने हमारा जीवन दुष्कर कर दिया है। मैं अपने घर में ताला लगाकर बाहर गयी थी, पर तुम्हारे इस कृष्ण-कन्हैया ने ताला तोड़ डाला और घर में घुसकर सारा दूध-दही ज़मीन पर लुढ़का दिया। अब हम क्या उन ख़ाली मटकियों को चाटें?"

शिक़ायतों का पुलिन्दा अभी समाप्त नहीं हुआ था। तभी सजला नाम की एक गोपी भीड़ चीरकर आगे आयी और मुँह बनाकर बोली, "मेरे घर में यशोदा के बेटे ने जो किया है, उसके बाद तो कहीं भाग जाने का मन करता है। पूरी दस मटकियों में दूध-मक्खन भरकर रखा था। जी में खुशी थी कि आज हाथ में कुछ अच्छा आ जायेगा। पर इसने पहले तो स्वयं दूध-मक्खन

खाया, फिर अपने साथियों को खिलाया। पेट छकने पर भी इसे चैन न आया तो इसने बचा-खुचा सारा उलटा कर दिया। इतना ही नहीं, यह जाते समय बछड़ों की रस्सियां खोल गया। उन्होंने गायों का सारा दूध पी लिया। अब हमारे बच्चों के लिए कुछ नहीं बचा है।"

रत्ना नाम की एक गोपी अवरुद्ध कंठ से बोली, "मेरे पति और बच्चे मिठाई खाने के लिए कितने दिनों से कह रहे थे। मैंने आटे में दूध, घी मिश्री डालकर मिठाई बनायी और उसे हंडियों में सजाकर रख दिया। इस यशोदा के लाड़ले ने घर में घुसकर हंडियों की सारी मिठाई खा ली। कौन जाने, इसके पेट में भूत है या प्रेत है? अब मेरा पति लौटेगा तो क्या उसे हंडिये खिलाऊँगी? बच्चों को क्या दूँगी? अब यशोदा मुझे बताये, मैं क्या करूँ?"

सब गोपियां नमक लगाकर कृष्ण की चुगली करने लगीं। सबके कहे अनुसार अब उनके घर में कुछ नहीं बचा था। मिठाई, घी, दूध, दही, मक्खन—सब कृष्ण और उनके साथियों के पेट में पहुँच चुका था। कृष्ण के ये सारे करतब अमानवीय थे। इन अमानुष कृत्यों को सहन नहीं किया जा सकता था। सब गोपिकाओं ने अपना फ़ैसला सुना दिया, "हम अब गोकुल में नहीं रहेंगे। यह गाँव छोड़कर कहीं और चले जायेंगे। अब अपने बेटे के साथ गोकुल पर राज्य करो!"

यशोदा मन मारे सब सुनती रही, फिर हर एक गोपी को सांत्वना देकर बोली, "तुम्हारे घर में



जो भी नुकसान हुआ है, वह मैं भर दूँगी। चिंता मत करो! पर यह गाँव छोड़कर मत जाओ! तुम्हारे बिना हमारा काम नहीं चलेगा। मेरे इस कन्हाई की करतूतों को भूल जाओ! इस छोटे से बालक ने ऐसे बड़े दुष्कृत्य किये हैं, विश्वास नहीं होता, पर तुम्हारी बातों पर तो विश्वास करना ही पड़ेगा। तुम्हें कृष्ण से क्या वैर है कि तुम झूठ बोलोगी? अब मैं अपने बेटे पर पूरा नियंत्रण रखूँगी। इसकी निगरानी करूँगी। अब तुम निःशंक मन से अपने-अपने घर चली जाओ!" यशोदा से आश्वासन पाकर सब गोपियां वहाँ से चली गयीं।

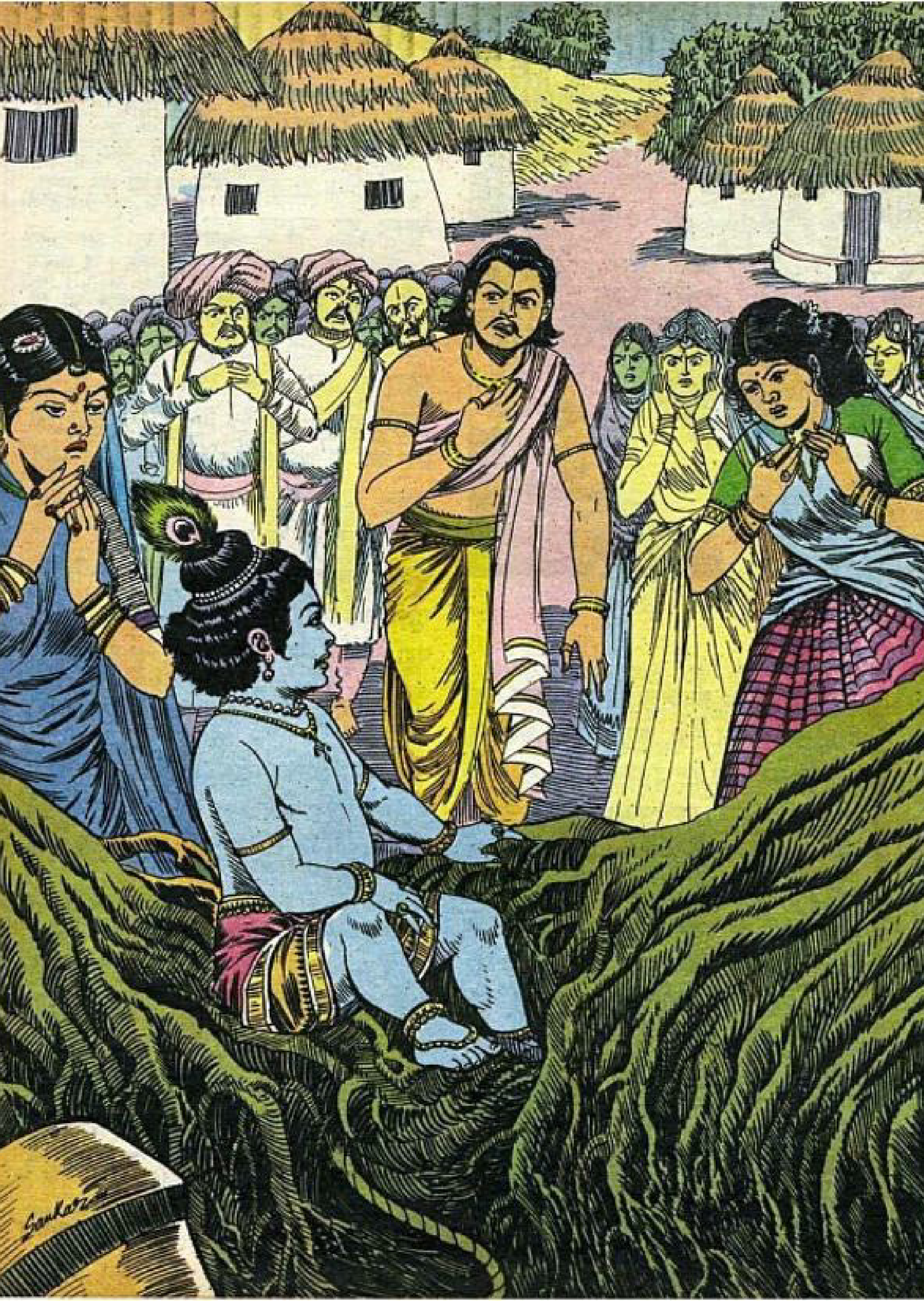
इसके बाद यशोदा ने कृष्ण को गोद में लेकर प्यार किया और बोली, "बेटा, क्या हमारे घर में



दूध, मक्खन की कमी है? तुम दूसरों के घर में जाते ही क्यों हो? लो, पहले मेरा दूध पियो! कहते हैं, मां के दूध का एक घूंट अन्य एक सेर दूध के बराबर होता है। तुम हमारी ग्वालिनों के साथ क्यों झगड़ा मोल लेते हो?" इसके बाद यशोदा ने कृष्ण को दूध पिलाया। फिर बलैया लेकर उनका माथा सूँघा और अधरों को चूमकर बोली, "बेटा, सुबह जबसे आँख खुलती है, सारा दिन तुम्हारी शिकायतें सुनने में ही बीतता है। तुम ऐसी चपलता क्यों दिखाते हो कि सबका जीना कठिन हो जाये? तुम्हारी उद्दंडता बढ़ती ही जारही है। अब तुम्हें खुला रखने का अर्थ है, फिर किसी के साथ एक नया झगड़ा मोल लेना। तुम पर अब अंकुश रखना होगा।" यह कहकर यशोदा ने कृष्ण की बाँह पकड़ी और उन्हें बैलगाड़ी के पास लेगयी और उनकी कमर में रस्सी डालकर उन्हेंओखली से बांध दिया। इसके बाद उन्हें छड़ी से धमका कर बोली, "यहाँ बंधे रहो! अगर हिले तो मार पड़ेगी। अब मैं देखती हूँ कि तुम कैसे शरारत करते हो?" इसप्रकार कृष्ण को बांधकर यशोदा घर के काम काज में लग गयी।

कृष्ण कुछ देर तो बंधे रहे, फिर रस्सी पकड़कर धीरे-धीरे ओखली को अपने पास खींच लिया। इसके बाद वे ओखली को गोशाला के अहाते में खड़े दो साल वृक्षों के निकट घसीट कर लेगये। कृष्ण पास-पास खड़े उन दो साल वृक्षों के बीच घुसकर उस पार चले गये और उन्होंने पूरी शक्ति से उस ओखली को खींचा। फिर क्या था, दोनों वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े। पेड़ों के गिरने की विकराल ध्वनि को सुनकर अनेक गोप-गोपियां दौड़े हुए घटना-स्थल पर आये। उन्होंने उस दृश्य को देखा तो वे दौड़े हुए यशोदा के पास गये और बोले, "माई, तुम्हारा कृष्ण मानव नहीं, कोई भीषण देव है देव! उसने उन विशाल सालवृक्षों को उखाड़कर अपने ऊपर गिरा लिया है। तुम सोचती हो कि तुमने कृष्ण को बांधकर बड़ी बुद्धिमानी का काम किया है? जाओ, देखो, बच्चा जीता भी है या नहीं!"

सारी बात सुनकर यशोदा का कलेजा काँप उठा। वह चीखकर दौड़ पड़ी। उसका अंचल गिरा है या वेणी खुल गयी है, उसे इस बात का ध्यान तक न रहा। सारी गोपियां भी यशोदा के


Sankar



साथ होगयीं ।

इस बीच नन्द भी अन्य गोपों के साथ वहाँ पहुँच गये । उन्होंने देखा, कृष्ण गिरे हुए वृक्षों के बीच मंदहास करते हुए इसप्रकार बैठे थे, मानो मेघों के बीच चंद्रमा शोभायमान हो । नन्द ने झट आगे बढ़कर बच्चे की कमर में बंधे पट्टे को खोल दिया और कृष्ण को गोद में उठा लिया । फिर पूछा, "कृष्ण की कमर में यह पट्टा कैसा? इसे ओखली से किसने बांधा है? इस ओखली को खींचता हुआ यह इतनी दूर कैसे आगया? ये विशाल सालवृक्ष कैसे गिर पड़े? यह सब क्या है?"

यशोदा ने बताया कि कृष्ण की कमर में पट्टा उसी ने डाला था और उसी ने कृष्ण को ओखली से बांधा था । नन्द सारी घटना समझ गये और अपने पुत्र की इस अलौकिक सामर्थ्य पर आश्चर्यचकित हो उठे । उन्हें मन ही मन अपार आनन्द का अनुभव हुआ ।

वृद्ध गोप कुछ भी न समझ सके । वे कहने लगे, "इस समय आंधी, तूफ़ान कुछ भी तो नहीं । बिजली भी नहीं गिरी । कोई हाथी भी इस ओर नहीं आया । कोई सेना भी इधर से नहीं गुज़री । तब ये वृक्ष कैसे गिरे? अगर कृष्ण जैसे एक छोटे से बालक ने इन्हें गिराया है तो इससे बढ़कर उत्पात और क्या हो सकता है? ऐसी घटना पहली बार ही नहीं हुई है । भयंकर राक्षसी पूतना इसके हाथों से हठात् मर गयी । इतनी बड़ी गाड़ी बिना किसी कारण के टुकड़े-टुकड़े होगयी । यहाँ रहना तो अब संकटपूर्ण हो उठा है । पर हम यहीं जन्मे हैं, यहीं पले और बड़े हुए हैं । यहीं हमारा रोज़गार-धंधा, कुटुम्ब-कबीला है । इस गाँव को छोड़कर अब इस बुढ़ापे में कहाँ जायेंगे?" इसप्रकार बात करते हुए सब लोग अपने-अपने घर चले गये । गोपिकाएँ भी चली गयीं ।

दिन बीतते गये । अब बलराम आठ वर्ष के होगये थे । कृष्ण सात वर्ष पूरे कर चुके थे । ये दोनों बालक अपने समवयस्क बालकों के साथ खेलते हुए बड़े होने लगे । इन बालकों के उत्साह का ठिकाना नहीं था । भय तो ये जानते ही नहीं थे कि किस चिड़िया का नाम है । बलराम और कृष्ण के साथ दूसरे गोप बालकों का साहस भी बढ़

गया था। ये लोग अपने हाथों में छीके और कोड़े लिये रहते, पैरों में पादुकाएँ पहन लेते और अपने केशों को झटकते हुए चल पड़ते। ये खेतों में जाकर इतनी ज़ोर से चिल्लाते कि भेड़िये भाग जाते। इनका काम था गीत गाना और पेड़ों पर चढ़ना। अगर कहीं शहद के छत्ते दीख जाते तो ये उन्हें तोड़कर सारा शहद पी जाते। छीकों से भात निकालकर खा लेते। इसप्रकार इन यदुवंशी बालकों के लिए जीवन एक मधुर अवकाश की भाँति था।



एक दिन कृष्ण ने बलराम से कहा, "बलदाऊ, हम इस गोकुल में जन्मे और यहीं पले। क्या रेवड़ और गोपों का इतने समय तक एक ही स्थान पर रहना उचित है? पशुओं ने चरागाहों को ख़ाली कर दिया है। लकड़ी के लिए नित्यप्रति पेड़ काटे जाते हैं, इसलिए हरियाली भी नहीं रही। तालाब और गड्ढे या तो सूख गये हैं या दलदल बन गये हैं। शाक और जल के लिए बहुत ही दूर जाना पड़ता है। इसलिए हम इस प्रदेश को छोड़कर क्यों न वृन्दावन में चलें। सुना है वह अत्यन्त सुन्दर वन है। वहाँ गोवर्द्धन नाम का एक पर्वत है। उस पर भांडीर नाम का एक विशाल वटवृक्ष भी है। वृन्दावन के बीच कालिन्दी नदी की सुन्दर जलधारा है। हम वहाँ जाकर बड़े सुख से जीवन बितायेंगे। हमारे वृद्ध गोप इस स्थान को छोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। उन्हें इस स्थान का भय दिलाने से वे भी मान जायेंगे। देखो, मैं एक उपाय करता हूँ।"

कृष्ण ने अभी अपना वाक्य समाप्त ही किया था कि उनके शरीर से सैकड़ों की संख्या में भेड़िये निकलने लगे और वे झुंडों में चारों तरफ़ दौड़ने लगे। गोप भयभीत हो उठे। गायें घबराकर रंभाने लगीं। इन भेड़ियों की चालढाल साधारण भेड़ियों से अलग जान पड़ती थी। गोप उनका पीछा न कर सके। बाघों को भी पछाड़ देनेवाले सांडों को इन्होंने मार डाला। गोपों की दृष्टि के हटते ही ये भेड़िये बछड़ों को उठा ले गये। उत्पात यहीं समाप्त नहीं हुआ। रात भर बाघ दहाड़ते रहे, सिंह गरजते रहे। बड़े-बड़े सुअरों ने सारे गोकुल में गड्ढे खोद डाले।

इन सारी घटनाओं से गोपों में अंतक छागया। सारे वृद्ध गोप एक स्थान पर एकत्रित हुए। वे

पहले हुई घटनाओं से ही घबराये हुए थे, पर अब तो इन उत्पातों के कारण गोकुल में रहना असंभव जान पड़ने लगा। वे गोकुल के मोह में पड़कर गोकुल को छोड़ नहीं पा रहे थे, पर अब तो और कोई उपाय ही नहीं था। वे सब अपना कर्त्तव्य विचारने लगे।

तब एक वृद्ध गोप ने कहा, "सुनते हैं वृन्दावन अत्यन्त सुन्दर एवं दिव्य स्थान है। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। पर यह भी सुना है कि वृन्दावन एक दुर्गम प्रदेश भी है और उसमें राक्षसों का भी निवास है। पर हमें कुछ तो करना ही होगा। जैसे भी हो, तत्काल किसी दूसरे प्रदेश के लिए प्रस्थान करना होगा। यहाँ अब कुछ देर भी रहना विपदा का कारण बन सकता है। हर क्षण कोई न कोई उत्पात घटित हो रहा है और हमारी संपत्ति नष्ट होती जा रही है।"

सब इसप्रकार चर्चा कर ही रहे थे कि उनके बीच देवर्षि नारद का आगमन हुआ। उन्होंने गोपनायक नन्द को पुकारा और एकान्त में लेजाकर कहा, "नन्द, एक ओर आप लोग वृन्दावन जाने का विचार कर रहे हैं, दूसरी ओर यह सोचकर डर रहे हैं कि वहाँ राक्षस हैं। आपको अपने पुत्र कृष्ण के जीवन का भी ख़तरा है। पर सुनिये, कृष्ण साधारण मानव नहीं हैं। वे दुष्टों का संहार करने के लिए अवतरित हुए आदि नारायण हैं। बलराम और कृष्ण में उन्हीं आदि नारायण का दिव्य अंश है। कृष्ण का संहार करने के लिए राक्षसी पूतना आयी, शकट एवं साल वृक्षों में छुपकर राक्षस आये, पर उनका संहार न कर सके, बल्कि स्वयं ही विनाश को प्राप्त हुए। आपने तो इन घटनाओं को प्रत्यक्ष देखा है। अब आप संशय न करें और अपने रेवड़ के साथ वृन्दावन के लिए प्रस्थान करें। आप सबका हित होगा।"

नन्द से बात करने के पश्चात् नारद ने कृष्ण से भी यही कहा और वे चले गये। तब नन्द ने अन्य गोपों से कहा, "हम सब लोग अब वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। अब वृन्दावन में ही हमारा निवास होगा। आप सब लोग तुरन्त प्रस्थान की तैयारी करें!"





सारा गोकुल एक साथ उमड़ पड़ा। सब लोग यात्रा की तैयारी में व्यस्त हो गये। सामान ढोनेके लिये तरह तरह के बाहनों का प्रबंध किया। गया। पहियों में तेल डाला गया। बैलों को अच्छी तरह खिलाया-पिलाया गया। सारे सामान गाड़ियों पर लादे गये। दूध और घी की हाँड़ियों को सुरक्षित स्थान पर रखा गया। चावल, धान आदि सामग्री बोरों में भरकर बाँध दी गयी। किसम किसम की रस्सियाँ, पगहे, मथानियाँ, हँसियाँ, छुरियाँ, भाले, घंटे आदि औज़ार सुरक्षित रखे गये। इस तरह यात्रा की तैयारियाँ पूरी हो गयीं

जानवरों को हाँकते हुए बलशाली लोग आगे निकल पड़े। जानवरों के झुंड़ों के पीछे गाड़ियाँ चल पडीं। उनके पीछे आदमी चलने लगे। नारियाँ एक गुट बनाकर चलते चलते हँसी-मज़ाक करती हुई मनोरंजन करने लगीं। बीच-बीच में समूह-गीतों के दौर चले। लूले, लंगड़े, बूढ़े और अपाहिज़ों की मदद नौजवान करने लगे।

इस तरह गोकुलवासी वृन्दावन पहुँच गये। गोपालकों में से बज़ुर्ग लोगों ने घर बनाने के लिए सुयोग्य स्थलों को चुना। एक कतार में आकर सारी गाड़ियाँ अर्ध-चंद्र की आकृति में रुक गईं। कुछ लोगों ने अपनी झोंपड़ियाँ बनवा लीं। कुछ लोगों ने थोड़े समय के लिए लता-मंडपों को अपने निवास-स्थान के रूप में उपयोग करना शुरू किया। कुछ लोगों ने वृक्षों के नीचे अपने डेरे डाले। कुछ लोगों ने काँटेदार झाड़ियों से स्नान-गृह बनवा लिये। एक दिन पूरा नहीं हुआ और वृन्दावन गोपकों के लिए स्वस्थान बन गया।

४. विषवृक्ष का निर्मूलन



दिन पर दिन बीतते गये । बन-ठनकर विचरनेवाली गोपियाँ अपने विविध कामों के लिए इधर-उधर दौड़नेवाले गोप तथा पुष्ट गायों के झुंडों से वृन्दावन की भूमि शोभायमान हो गई ।

दिन-ब-दिन गोपालों की संपत्ति बढ़ने लगी । क्रमशः झुंडों में विस्तार होने लगा । गोपालकों ने छोटे-छोटे सुंदर घर बनवा लिये । उनके इर्द-गिर्द पेड़-पौधे लगाये । वृंदावन एक रमणीय स्थल बन गया । लोग आराम से जीवन काटने लगे । अब बालकृष्ण तेरह साल का हो गया था ।

इधर ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ हुई । अनपेक्षित रूप में गायें तरह तरह की बीमारियों के शिकार होने लगीं । वे कांपने लगीं, ठीक खड़ा होना भी उनसे संभव नहीं हुआ । वे मुँह से झाग उगलने लगीं, उनकी गर्दनें लटक गईं । फटने के कारण खुरों में कीड़े निकल आये ।

गायों को बीमारियों से बचाने के लिए गोपालकों ने दवा-दारू की, तरह तरह की जड़ी-बूटियों का उपयोग किया । मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ । वे समझ न सके कि अब क्या किया जाए । यमुना नदी के किनारे पर जंगलों में पाये जानेवाले सभी मृग, जंतु, पक्षी और कीड़े-मकौड़ों में ये बीमारियाँ बुरी तरह फैल गयीं । उनसे गोपकों में भी ये बीमारियाँ फैल गयीं ।

नंद, यशोदा और रोहिणी भी इन बीमारियों के शिकार हो गये । कृष्ण को लगा कि उस स्थान को छोड़ जाने पर ही वे लोग ज़िन्दा रह सकते हैं । कृष्ण ने बलराम से सलाह की और कुछ समूहों के साथ वे एक कोस दूरी पर जाकर वहाँ बस गये । उनका अनुसरण करते हुए कुछ और गोपकों ने भी ऐसा ही किया । इस तरह जिन लोगों ने उस प्रदेश को छोड़ा वे व्याधियों से बच गये ।

नंद ने उस गाँव को छोड़ना स्वीकार न किया । उसने कहा—"हमारा स्थान यहीं है । यहाँ पर जो भी उत्पात मचेंगे, हमें उनका सामना करना होगा । और फिर सभी रिश्तेदारों के साथ जाएँगे तो कहाँ जाएँगे?" नंद, यशोदा और रोहिणी जब बीमारियों से पीडित होकर उस गाँव को न छोड़ने पर तुल गये, तब कृष्ण समझ न पाये कि आख़िर क्या किया जाए?



गोकुल में विदेह से आया एक बूढ़ा गोप था। उसने गोपालों के प्रतिनिधियों को समझाते हुए कहा—"देखो बेटो, हमारी जीविका का प्रमुख आधार है हमारे पशु। शिवजी पशुपति हैं। शिवजी की प्रार्थना करने पर वे हमारे संकट दूर कर सकते हैं। शिवजी परम दयालु हैं। शरणागत की ज़रूर सुनते हैं। जो शिवजी का कृपा-पात्र बन गया, उसके लिये मुश्किल कुछ नहीं। यों निराश होकर बैठने से भला क्या होगा? पुरोहितों को बुलाकर शिवजी की प्रार्थना करना शुरू कीजिए।,

गोपकों ने इस बुज़ुर्ग की सलाह मानी और सुयोग्य पुरोहितों को बुलाकर शिवजी के प्रार्थना-यज्ञ के प्रारंभ का प्रबंध किया। एक सप्ताह तक दिन-रात शिवजी की अर्चना, पूजा अभिषेक तथा नैवेद्य चले। सभी गोपालकों ने बड़े भक्ति-भाव से शिवजी का आवाहन किया। श्रद्धा-भक्ति के शत-शत फूल चढ़ाये। सात दिन तक शिवजी की अर्चना निर्विघ्न संपन्न हुई। सातवें दिन की दोपहर को एक उत्तम पुरोहित में किसी विशेष शक्ति का प्रवेश हुआ। उस आवेश में पुरोहित विकृत हास्य करते हुए भयंकर नृत्य करने लगा। पुरोहित की आकृति-प्रकृति देखकर सब लोग घबडा गये। ऐसा क्यों हो रहा है, किसी की समझ में नहीं आया।

उसने कहा—"परम शिव ने कैलास से मुझे भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है—'अरे शंखकर्ण, कालिन्दी के किनारे फैली बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए लोगों की सहायता करो। जाओ।' तुम लोगों ने शिवजी की जो अर्चना की है, उससे वे बहुत संतुष्ट हैं। जानते हो, तुम लोग उस प्रकार की बीमारियों के क्यों शिकार हो गये हो? द्वापर युग के अन्त में भूलोकवासियों को सताने के हेतु राक्षसों ने अनेक जन्म धारण किये। उस समय विरोचन के पुत्र कालकलि नामक राक्षस ने एक ज़हरीले कैथे के पेड़ के रूप में यमुना के दक्षिण तट पर जन्म लिया। उस राक्षस के सेवक उस वृक्ष के चारों तरफ़ कँटीले पेड़ों के रूप में पैदा हुए। उस विषैले कैथे के पेड़ की हवा लगने से तुम लोगों को तथा तुम्हारे पशुओं को ये सब बीमारियाँ बुरी तरह सता रही हैं। इसी कारण यहाँ का जल भी दूषित हो गया है। नन्दगोप के पुत्र कृष्ण और बलराम इस विष-वृक्ष को समूल



लिये इससे और अच्छा मौक़ा कौन हो सकता है? चलो, हम अभी उस विषवृक्ष को ढूँढकर उसे उखाड कर तहसनहस कर देंगे ।"

कृष्ण-बलराम ने आकर ब्राह्मणों को और शिवजी को साष्टांग प्रणिपात किया, शिवमंदिर की परिक्रमा की और कुल्हाड़ियाँ उठाकर जंगल की ओर चल पड़े। कुछ और बालक और हट्टेकट्टे लोग भी उनकी मदद के लिये उनके साथ निकल पड़े। कृष्ण-बलराम आगे और सब पीछे बड़े हौसले से चल रहे थे। कृष्ण के नेतृत्व में विष-वृक्ष को जड़ से उखाड़नेका सब ने मानो संकल्प किया था।

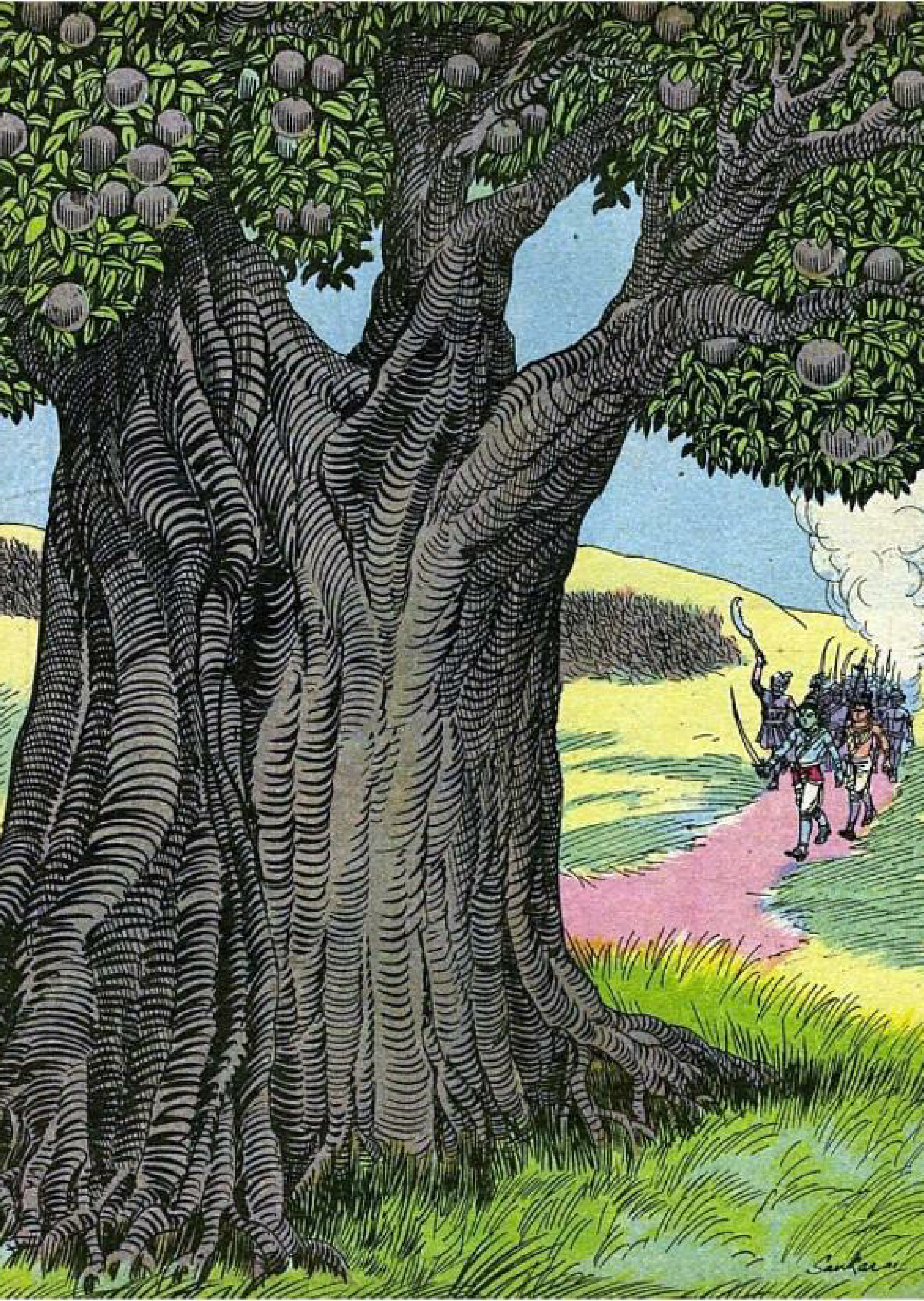
शिवजी की अर्चना के फलस्वरूप अधिकांश लोग स्वस्थ हो चुके थे। कुल्हाड़ियाँ उठाते उठाते उन्होंने सिंहनाद किया!

विषवृक्ष को ढूँढने में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुए। वे जैसे ही जंगल के अंदर पहुँचे, वैसे ही एक विशेष दुर्गन्ध का उन्होंने अनुभव किया। दुर्गन्ध की दिशामें वे जैसे जैसे आगे बढ़ते रहे, वैसे वैसे दुर्गन्ध भी असहनीय होती गयी। शीघ्र ही वे सब उस वृक्ष के पास पहुँचे। राक्षस जैसी भयंकर आकृति लिये वह वृक्ष मानो आसमान को छू रहा था। उसके चारों ओर कँटीले पेड़ पौधे भूत जैसे खड़े थे। कृष्ण-बलराम ने उन कँटीले पेड़ों को काटकर उस विषवृक्ष तक जाने के लायक़ रास्ता बनाया। और सब के सब उस वृक्ष के समीप पहुँचे।

उस विषवृक्ष का तना तीस बाँस ऊँचा था,

उखाड़कर फेंकने की क्षमता रखते हैं। अगर वे इस कार्य को स्वीकृत करें तो तुम लोग जीवित बच सकते हो। परम शिव ने यह संदेश तुम लोगों तक पहुँचाने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। मुझे आश्वस्त कीजिए, मैं चला।"

यह सब सुननेपर ब्राह्मण के भीतर का आवेश भी धीरे धीरे ठंडा पड़ गया। अर्चना के लिये आये सभी पुरोहितों ने शिवजी की पूजा-अर्चना की आखिरी रस्में पूरी कीं। और तुरन्त कुछ गोपालकों को बलराम-कृष्ण को बुला लाने के लिए भेजा गया। बालकों से सब वृत्तान्त सुनने पर दोनों भाई बोले, "ईश्वर का आदेश मिला, यह बड़ी अच्छी बात हुई। अपने माता-पिता और जाति के लोगों को बचाने के





उसके फल हाथी के सिर जितने बड़े थे, और उसकी शाखाएँ चारों तरफ़ दूर तक फैली हुई थीं। उसके फलों से ही दुर्गन्ध फैल रही थी। इसलिये कृष्ण ने पहले उन फलों को नष्ट करने का निर्णय किया।

इसके बाद बलराम व कृष्ण सभी कच्चे व पके फलों को तोड़ने लगे। बाकी लोग भी शाखाओं से लटके फलों को लाठियों और पत्थरों से गिराने लगे। शाखाओं को भी तोड़कर फेंकने लगे। साथ साथ कोलाहल भी करने लगे

एक ओर इस प्रकार कृष्ण-बलराम वृक्ष को ध्वंस करने में लगे, तो उधर दूसरी ओर से वहाँ घूमनेवाले गाय व बछड़े नहीं थे, बल्कि पेड़ों के रूप धारण करनेवाले राक्षसों की पत्नियाँ और बच्चे थे। वे ही गाय-बछड़ों के रूप में वहाँ आसपास विचर रहे थे।

कृष्ण व गोपों के हमले से वृक्षों में बसे राक्षस खून उगलते हुए अपने निज रूपों में गिरकर मरने लगे। गायों के रूप धारण किये राक्षस-नारियाँ यह देखकर क्रोध में आकर कृष्ण को अपने सींगों से मारने की कोशिश करने लगीं बड़ी आसानी से कृष्ण ने उनको भगा दिया। बलराम और अन्य गोप भी राक्षस नर-नारियों का खातमा कर रहे थे। उन सब का आवेश अवर्णनीय था। इसके बाद थोड़ी ही देर में उस वृक्ष को जड़ समेत उखाड़ दिया गया।

गोपकुमारों ने वृक्ष के टुकड़ों, तथा उसके चारों ओर की कँटिली झाड़ियों और वहाँ मरे पड़े राक्षसों के शरीरों का एक बड़ा ढेर बनाया। इस ढेर में उन्होंने आग लगा दी। देखते देखते आग की लपटें आकाश को छूने लगीं। अग्निदेव ने भी बड़े प्यार से पेड़ पौधों व राक्षस-कलेवरों को अपनी बाँहों में समा लिया। अन्त में वहाँ पर केवल चिताभस्म रह गया। विष-वृक्ष को समूल उखाड़ने में सफल हुए गोपालक अब प्रसन्न थे। जिस भूमि पर विष-वृक्ष खड़ा था, उसको समतल देखकर वे ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाकर नाचने-गाने लगे।

इस बीच गोपालकों के शरीर पसीने से तर होकर उनपर राख चिपक गयी थी। खूब थकावट के बावजूद भी वे बहुत खुश थे। शोरगुल करते हुए वे सब यमुना किनारे पहुँचे और पानी में

कूदकर उन्होंने स्नान किया, गोते लगाये, पानी पर थपकियाँ देते हुए उन्होंने गीत गये। इस प्रकार काफ़ी देर तक जलक्रीड़ाएँ करने के बाद वे सब पानी के बाहर निकले। वहीं घरकी औरतों से लाया खाना उन्होंने नदी किनारे बैठकर खाया और खेलते-कूदते, नाचते-गाते सब अपने-अपने घर लौटे।

दिन बीतते गये। सारी बीमारी हटकर मनुष्य एवं पशु भी स्वस्थ हो गये। सब में मानो एक नए जीवन का संचार हुआ। जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो गया। इस बीच ग्रीष्म काल व्यतीत हो गया। वर्षाकाल के आगमन की सूचना देने आसमान में काले बादल छाने लगे। मेघों का गर्जन सुनकर सब लोग आनन्द से झूमने लगे। शीघ्र ही ओलों के साथ वर्षा आरंभ हुई। सारी पृथ्वी हरीभरी हो पुलकित हो उठी। झरने पूरे प्रवाह के साथ बहने लगे। ठंड़ी-ठंडी हवाओं ने सारे वातावरण को आह्लाददायक बना दिया। प्रकृति की उस सुरम्य गोद में खेलने-कूदने का आनन्द सब लूटने लगे।

ऐसे आनन्द के समय विदेह देश में भय एवं उत्पातों से पूर्ण कुछ असाधारण घटनाएँ घटित होने लगीं। यशोदा का भाई कुंभक उस प्रान्त का निवासी था। कुंभक के पुत्र का नाम था श्रीधाम तथा कन्या का नाम था नीला। कुंभक गोधन में वहाँ का सबसे संपन्न व्यक्ति था। दानशीलता और धर्मगुणों के लिये वह विशेष विख्यात था। कोई भी याचक कुंभक तथा उस की पत्नी से कोई दान मिले बिना लौटा नहीं जाता था। दीन-दरिद्रों



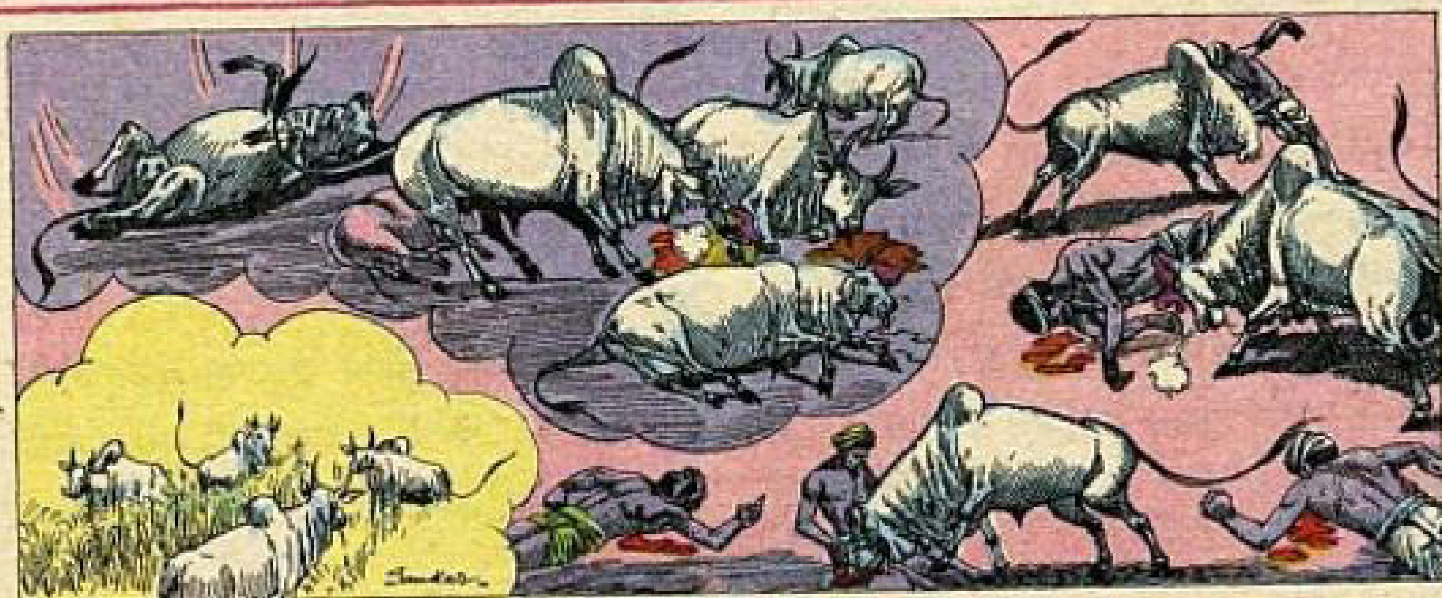
का दुःख दूर करना मानो कुंभक का व्रत था। कुंभक अपनी सपत्ति को सब की संपत्ति मानता था।

प्राचीन काल में विष्णु ने जब तारकासुर के साथ युद्ध किया था, तब कुंभक ने कालनेमी के सात पुत्रों का वध किया था। वे सातों राक्षस कुंभक से प्रतिशोध लेने के विचार से उसके स्थान गोव्रज में सात साँड़ों के रूप में जन्म ले चुके थे। उन के अत्याचारों की कोई सीमा न थी। पशुओं के झुंड़ों में घुसकर जो भी गाय या बैल सामने आयें-उसे वे मार डालते थे। गोपालकों पर सींग चलाने और उनपर अपने खुरों का प्रहार करके उन्हें नीचे गिरा देते थे। गोशाला में बंधे पशुओं पर भी हमला करके वे उन्हें मार डालते थे।

उनके ऐसे उत्पात नित्यप्रति बढ़ते ही जाते थे। कुंभक ने उन साँड़ों को पकड़ो के बहुत से प्रयत्न किये। असंख्य योद्धा और मल्ल उनका संहार करने जाकर खुद आहत होकर लौटे। कुंभक की चिंता की कोई सीमा न रही। वे अपनी असमर्थता पर सदा चिंतित रहने लगे। कुंभक अपने ग्रामवासियों को अपनी संतान के समान मानता था। उनके कष्टों को वह अपने कष्ट मानता था। उसे खाना-पीना नहीं रुचता था और रातों में उसे नींद आती थी। वह इतना परेशास रहने लगा कि लगता था, वह इसी चिंता में घुले-घुले कर मर जाएगा था पालग हो जाएगा।

उधर सांड़ों के हौसले बढ़ते गये। वे सारे ग्रामवासियों को नाकों दम करते थे। सारा गौव कि दम उन सांड़ों कि अत्याचारों से तंग आगया था। उन सी मदद करने वाला कोई न था। अब वे जाए तो किस की शरण में जाए? आखिर कोई उपाय भी तो हो। उनकी नींद हराम हो चुकीं थी। जान की खैर न थी। सब सिदम भयभीत थे।

जब गाँव वाले उन दुष्ट सांड़ों से तंग आ गये और उनसे बचने का कोई उपाय नहीं रहा तो सबने मिलकर निश्चय कर लिया कि अब राजा की शरण में जाने के सिपाय कोई रास्ता नहीं है। अन्त में इन अत्याचारों से पीड़ित होकर सारी प्रजा मिथिला नगर के राजा के पास पहुँची और उनसे प्रार्थना की, "महाराज, कुंभक के गायों के रेवड़ में पैदा हुये सात साँड़ हमारे रेवड़ों तथा हरे-भरे खेतों का सर्वनाश कर रहे हैं। हम लोग आज तक यह सोचकर सारे कष्ट सहते रहें कि शीघ्र ही इन सांड़ों से हमारा पिंड छूट जाएगा और ये दो-चार दिन हमें सताकर अपने रास्ते चले जाएंगे। अब लगता है कि ये हमारा पीछ नहीं छोड़ेंगे। अब आप उनका संहार करके हमारी रक्षा न करेंगे तो हमें इस राज्य को छोड़कर अन्य राज्य की शरण लेने के सिवा कोई चारा नहीं। आपही हमारी रक्षा कीजिए। हम तो आपकी प्रजा हैं, हमारी रक्षा करना आपका कर्तव्य भी तो है।"





कुंभक के रेवड़ में पैदा हुए राक्षसी बैलों के अत्याचारों से तंग आकर जनताने उनके बारे में मिथिला-नरेश से शिकायत की। राजा ने कुंभक को बुलवाकर उसे चेतावनी दी—"जनता हम से शिकायत कर रही है कि तुम्हारे बैल उनके प्राण लेने पर तुले हुए हैं। तुम एक प्रतिष्ठित परिवार के हो, साधारण नागरिक नहीं हो। तुम्हारे पास काफ़ी जनशक्ति है। दस पंद्रह लोगों की मदद से लड़नेवाले उन बैलों को काबू में रखो, वरना उनको बधिया दो। फिर भी अगर वे उच्छृंखल बन जायें तो उनको जंगल में भगा दो। अगर इसके बाद लोगों ने शिकायतें कीं तो उसका बुरा परिणाम होगा। सावधान होकर बैलों के अत्याचारों को रोको।"

कुंभक की समझ में न आया कि क्या किया जाय। उन घमण्डी बैलोंपर नियंत्रण पाना उसके लिये असंभव सा हुआ था। इस प्रयत्न में बहुत से लोग घायल हो रहे थे। कुछ तो मर भी गये थे! इसलिये राजा ने कोई दूसरा उपाय न पाकर ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि, जो भी कोई उन दुष्ट बैलोंपर विजय प्राप्त करेगा, उसके साथ अपनी पुत्री नीला का विवाह किया जायेगा।

ढिंढ़ोरा सुनकर चारों तरफ़ से गोप युवक वहाँ आने लगे। उनका विचार था कि जो लोग गायों के बीच ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें बैलोंपर नियंत्रण करना कौन बड़ी बात है! इसलिये वे लोग इस प्रलोभन में आ गये कि बड़ी आसानी से एक सौंदर्यवती पत्नी के रूप में प्राप्त होगी।

इस प्रकार इकठ्ठा हुए लोग अपने अपने ढंग



लिये ।

कुंभक ने अपनी बहन और बहनोई की अगवानी करके स्वागत किया। कुंभक की पत्नि धर्मदा ने यशोदा का आदर-सत्कार किया। कुंभक-पुत्र श्रीधाम ने बलराम और कृष्ण को गले लगाया। बादमें उन्होंने सबको आसन देकर उन्हें बिठाया। बड़े प्रेम से बातों का सिलसिला चला। कुंभक और धर्मदा बड़े प्रसन्न दिखाई देते थे। कृष्ण और बलराम को अपने बीच पाकर वे फूले न समाये। उनके स्वागत में गीत गाये गये। खीर, घी आदि के साथ मिष्टान्न परोस कर खाना खिलाया। तरह तरह के बने स्वादिष्ट व्यंजन कुंभक ने खूब प्यार से सब की थालियों में विपुल मात्रा में परोसे। आवभगत में किसी बात की ज़रा भी कसर नहीं रखी गयी।

उस रात को उन राक्षसी बैलों ने कृष्ण-बलराम का आगमन भाँप लिया और वे एकदम उच्छृंखल हो उठे। गर्भिणी गायोंपर उन्होंने सींग चलाये। बाद में कुंभक के अहाते में प्रवेश करके रंभाते हुए खुरों से धरती कुरेदने लगे। फिर मिट्टी के बर्तनों और मटकों को तोड़ दिया। दीवारों पर भी उन्होंने सींग और खुर चलाये, अन्न भांडारों को तहसनहस कर दिया, गाड़ियाँ तोड़-मरोड़ दीं, मंडपों को नीचे गिरा दिया, और किवाड़ तोड़ डाले। औरतों और बच्चों को उन्होंने डराया। इस प्रकार सर्वत्र हाहाःकार मच गया। बाहर से आये गोप भी यहाँ-तहाँ छिप गये। बैलों के ये उत्पात उन के

से डींग मारने लगे। एकने कहा कि वह बैलों के सींग पकड़ कर उनको वश में कर लेगा। दूसरा कहने लगा—उन्हें गिराकर उनके नथुनों में वह रस्सी पिरो देगा। इस तरह शेखी बघारते गोपकों ने ताल ठोंके, हो हल्ला मचाया और दौड़ लगाये। सब में अपूर्व उत्साह था। बैलों को काबू में करने के लिए लोग अलग अलग प्रकार की तरकीबें सोचने लगे। उनकी दृष्टि से यह कोई बहुत मुश्किल काम तो था नहीं।

ढिंढ़ोरा सुनकर कुंभक ने अपने दूत नंदगोप के पास भेजे। दूतों ने जब उन सात बैलों के मचाये हाहाःकार के बारे में बताया, तब नंद, यशोदा और उनके साथ कृष्ण-बलराम भी चल पड़े। उनके पीछे कुछ और गोप-कुमार भी हो

लिए एकदम नये थे। उन्होंने सोचा इनको काबू में करना कोई सरल काम नहीं है। ऐसा ही चलता रहा तो अब सर्वनाश समीप है।

सवेरा हुआ। कुंभकने सब गोपकों को बुलवाया। अपनी पुत्री को अलंकृत करवाकर उनके सामने खड़ा किया; और कहा, " बैलों पर काबू पाने के हेतु आये हुए गोपकुमारों, तुम लोग देखही रहे हो ये बैल कैसे दिग्गज जैसे, सिंह जैसे हैं। इन पर अंकुश चलाने के लिये हमने जो भी उपाय किये, सब के सब असफल रहे। हम यदि इनपर नियंत्रण नहीं करेंगे तो राजा हमें दण्ड देंगे। इसलिये आप जैसे पराक्रमी लोगों को मैंने पाचारण किया है। तुम में से जो कोई इन बैलोंपर काबू कर जाएगा, उसके साथ मैं अपनी इस कन्या का विवाह रचाऊँगा।"

कुंभक के इस भाषण से लोग संकोच में पड़ गये। नीला को देखकर एक तरफ़ उनके मन उत्साह से उमड़ रहे थे, तो दूसरी तरफ़ बैलों के विचार से ही उनके कलेजे थर्रा रहे थे। इसलिये कोई भी किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पा रहे थे।

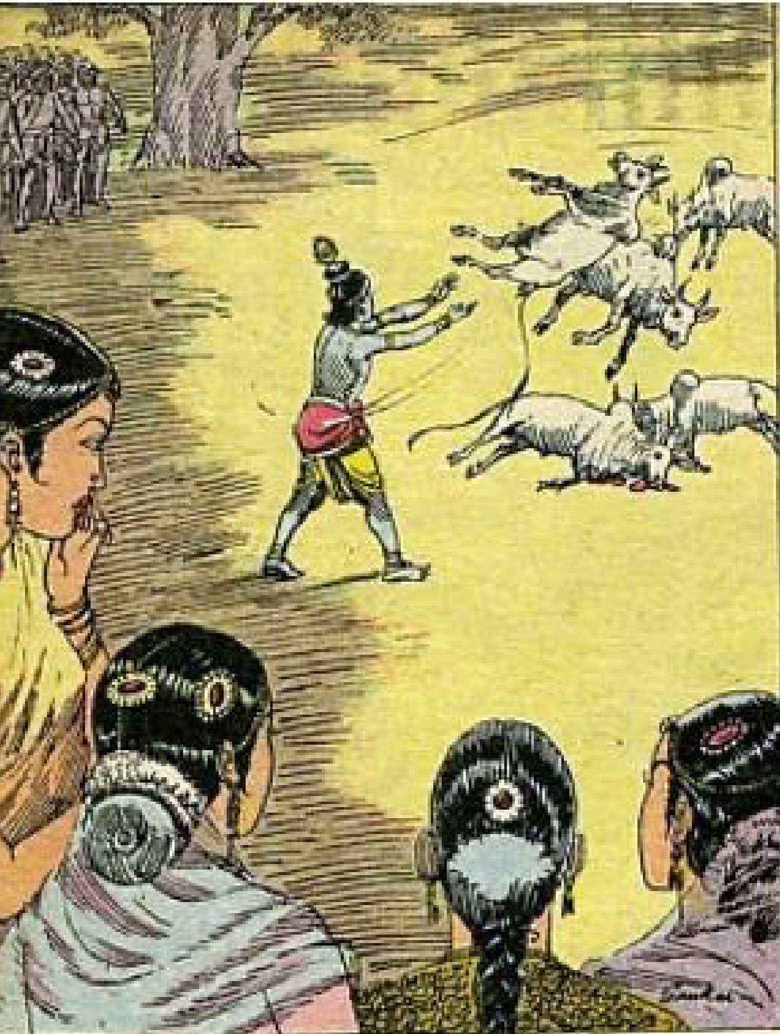
ऐसी स्थिति में नन्द के जातिवाले घोषवंत नामक एक गोप ने कहा,"इन कम्बख्त बैलों को मैं आज मार न डालूँ तो मेरे बल एवं पराक्रम किस काम के? तुम लोग देखते रह जाओ! मैं एक ही झपटे में उन्हें मार गिराता हूँ।" यह कहकर ताल ठोंककर वह बैलोंकी ओर बढ़ा। उसका एक एक कदम वीरता और आत्मविश्वास



से भरा लग रहा था। जोश में आने से उसकी आँखें लाल-पीली दिखाई दे रही थी। उसकी पिंड़लियों के और बाहों के स्नायु उभर आये थे। शिकार पकड़ने निकले व्याघ्र जैसी उसकी चाल सावध थी।

अन्य लोग खेत की मेड़ों, मकानों की छतों और पेड़ की शाखाओं जैसे ऊँचे स्थान पकड़कर तमाशा देख रहे थे।

घोषवन्त ने आगे बढकर एक बैल के माथे पर ज़ोर से अपनी मुठ्ठी से प्रहार किया। प्रेक्षकोंने हर्षनाद किये। मगर दूसरे ही क्षण देखते हैं, सातों बैलों ने उसे घेर लिया। कृष्ण ने व्यथित होकर सोचा,"इसने ज़्यादा आत्मविश्वास में आकर क्यों यह संकट मोल लिया? अब ये बैल क्या इसे



उसको मना करने की कोशिश की ! उनको शक था कि इन बैलों का सामना करना कृष्ण और बलराम के लिए कहाँ तक संभव है! अगर उनकी अवस्था भी घोषवन्त-सी हुई तो? नंद-यशोदा को बड़ी चिन्ता हुई । तरह तरह की दुष्ट शंकाओं से उनका मन भर गया ।

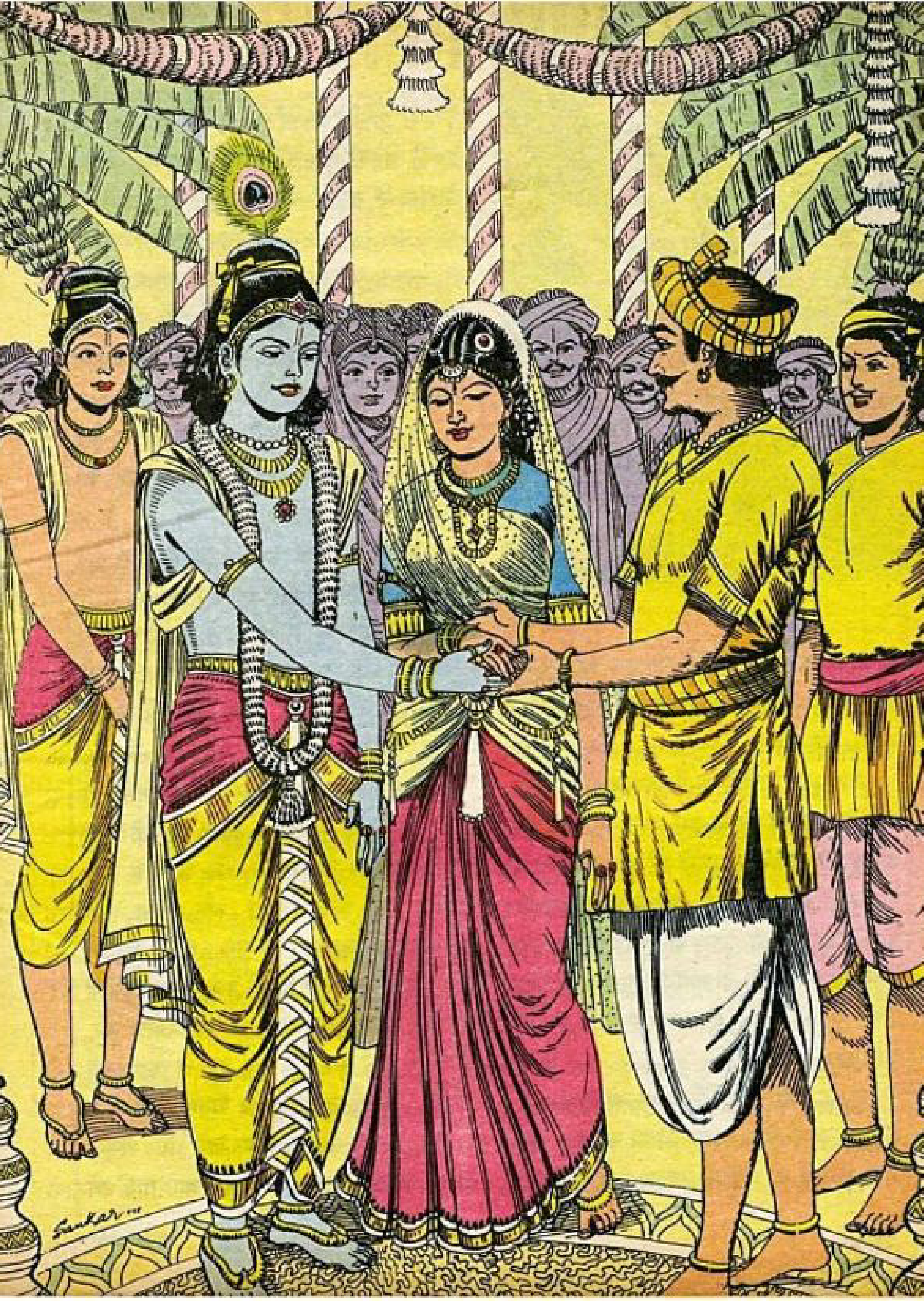
मगर उनकी ओर ध्यान दिये बिना कृष्ण आगे बढ़ा । बहुत ही क्रुद्ध होकर उसने अपनी मुट्ठी बाँध दी थी । यह देखकर उन सातों बैलोंको-जो सहोदर भाई थे-अपनी पुरानी शत्रुता का स्मरण हो आया । वे भी क्रोधावेश में आ गये और उन्होंने एकसाथ कृष्णपर धावा बोल दिया । कृष्ण तो तैयार ही था । एक एक बैल जैसे उसके समीप आया, कृष्ण ने उसके माथेपर अपनी हथेली से प्रहार करके उसी वक्त उस बैल के सींग पकड़कर उसे दूसरे बैल पर ढकेल दिया । दो-एक बैलों की पूँछें पकड़कर उन्हें हवामें चक्र जैसा घुमाकर कहीं झोंक दिया । कुछ के माथे तथा पीठ पर प्रहार करके उन्हें भयभीत किया । यह देख प्रेक्षक विस्मय में आ गये । यह युद्ध कृष्ण के लिये एक खेल मात्र था, मनोरंजन था । उन प्रेक्षकों में नीला भी थी । वह प्यार और लज्जा भाव से कृष्ण को निहार रही थी । उसको यों देख कृष्ण को भी बड़ा आनन्द आ रहा था ।

अन्त में मानों खेल समाप्त करने के लिये कृष्ण ने प्रत्येक बैल के सिरपर एक एक मुक्का मारकर उन सब के सिर फोड़ दिये । बैलोंके सिर व नथुनों से खून बहने लगा । उन सबने धराशायी

जीवित छोड़ भी देंगे ?" इतने में बैलोंने उसे सींगपर उठाकर नीचे ज़मीनपर पटक दिया । अपने खुरों से लात मारकर दूर फेंक दिया ।

इस प्रकार घोषवन्त को हराकर बैलोंने प्रेक्षक गोपकों की ओर अपना रुख मोड़ लिया । अब प्रेक्षकों में हाहाःकार मच गया । वे भागने लगे । बैल भी सींग मारते, खुर चलाते, सब को तितर बितर करके भगाने लगे । लोगों में भगदड़ मच गयी ।

बलराम से कृष्ण ने कहा, "ये साधारण बैल नहीं हैं । बैलों में इतना साहस व ऐसी ईर्ष्या होना असंभव है । मैं स्वयं अब कुंभक की सहायता करूँगा ।" और कृष्ण उन लड़ाकू बैलों की ओर दौड़ने को हुआ, तब नंद-यशोदाने चिल्लाकर


Sankar



नन्द से बोला, "बहनोईजी, आपका पुत्र बहुत ही शूर है,उसीकी कृपा से हम एक भयानक विपदा से मुक्त हो गये हैं। साथ ही मेरी प्रतिष्ठा में भी आँच नहीं रही। अब हम लोग सुख और शांति से अपना जीवन यापन कर सकेंगे। मैं उपहार-स्वरूप नीला को हज़ारों गायें सौंप रहा हूँ। कृपया स्वीकृति दीजिए। मैं अपनी प्रसन्नता के लिए ये सब दे रहा हूँ।"

"पगले, मेरे पास गायों की अपार संपदा है। कृष्ण के जन्म से लेकर हमारे रेवड़ों में गायों की संख्या आश्चर्यकारक ढंग से बढ़ रही है। अपरिमित दूध हमको प्राप्त हो रहा है। उस दूध से अपार घी हम को मिल रहा है। हम सब बहुत ही सुखी जीव हैं।" नन्द ने समझाया।

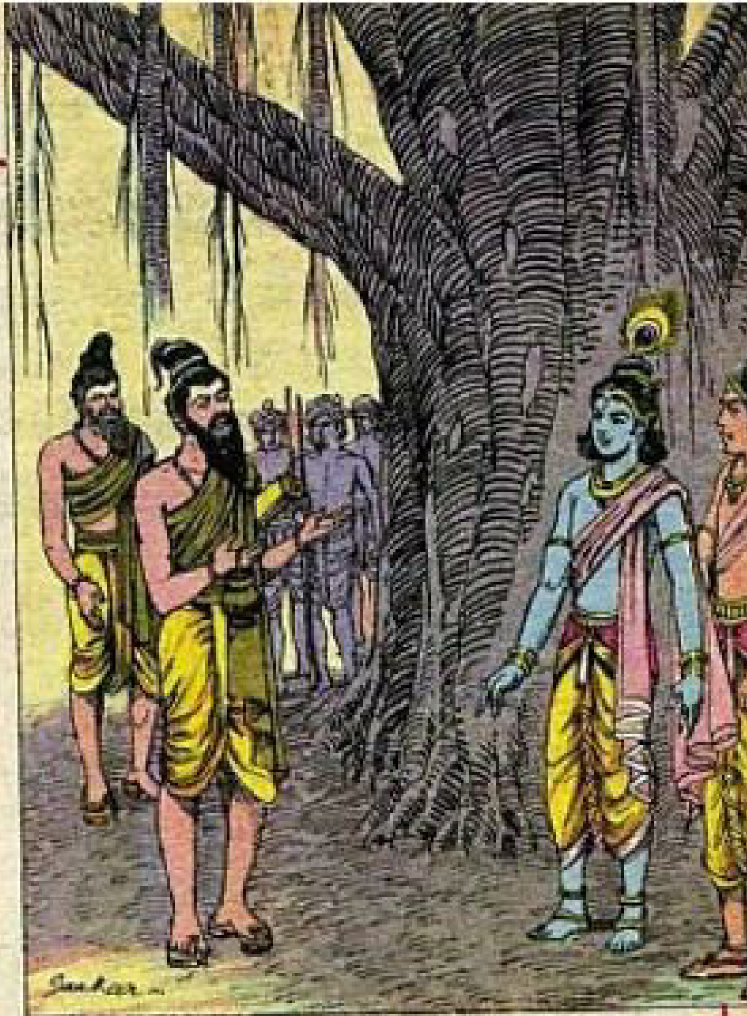
हो अपने खुर हवामें झाड़ते हुए प्राण त्याग दिये। इस प्रकार कृष्ण ने कालनेमी के सातों पुत्रोंका संहार कर डाला।

नन्द और यशोदा ने दौड़कर कृष्ण को गले लगाया। अपने पुत्र के इस प्रकार पराक्रमी होने की उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। क्षण भर के लिए वे दोनों अवाक् रह गये कुंभक नीला का हाथ पकड़कर उसे कृष्ण के पास ले गया और नीला का हाथ कृष्ण के हाथ में देकर बोला, "यह कन्या तुम्हारे पराक्रम का उपहार है। तुम इस का पाणिग्रहण करो।"

इस के बाद कुंभक ने कृष्ण को वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। नन्द-यशोदा को वस्त्र और अन्य गोपकों को विविध उपहार दिये, फिर वह

सब ने एक दिन वहाँ महोत्सव मनाया। बैलों के अत्याचारों का अंत होनेसे सब को अतीव संतोष था। सब गा-गा कर नाच रहे थे, नाच-नाच कर गा रहे थे। ऐसा आनन्द-महोत्सव अब तक किसी ने अपनी आँखों से नहीं देखा था। दूसरे दिन नंद, यशोदा और नीला के साथ श्रीधाम को लेकर कृष्ण और अन्य सब वृंदावनवासी वृंदावन लौट गये। इसके बाद वे अपने दिन सुखपूर्वक बिताने लगे। नवयौवन में प्रवेशित कृष्ण रेशम के पीले वस्त्र धारण कर, पगड़ी में मयूर पंख खोंसकर, कंठ में वनमालाएँ पहनकर, मुरली बजाते सर्वत्र विहार करते थे।

एक दिन बलराम व कृष्ण गायें चराने यमुना किनारे गये थे। वहाँ एक वटवृक्ष था। गायों को



चरने के लिए छोड़कर दोनों उस वृक्ष के नीचे बैठ गये। अन्य गोपालक खेलों में मग्न हो गये।

ऐसे में वामदेव न भारद्वाज नाम के दो मुनि तीर्थाटन करते करते वहाँ से गुज़र रहे थे। उस विशाल वटवृक्ष की परिक्रमा कर उन्होंने उस वृक्ष को प्रणाम किया। पास खेलनेवाले गोपालकों से उन्होंने पूछा, "बेटा, स्नान करने के लिए यहाँ कोई अच्छा सा घाट है, जहाँ मगरमच्छ व सर्पों का भय न हो ?"

गोपबालक एक दूसरे के चेहरे देखते हुए, शरारत करके बराबर कहने लगे, "मैं कुछ नहीं जानता, उससे पूछ लो!" यह देख कृष्ण ने सोचा, ये नटखट बच्चे मुनियों से शरारत कर रहे हैं। वह उठकर उन के पास जाकर बोला, "देखिये, ये लड़के कुछ भी नहीं जानते। मैं आपको एक बढ़िया घाट दिखला दूँगा। आप दोनों अपने धार्मिक कृत्य समाप्त कर यहाँ आ जाइये। मलाई व दही मिलाया बासी भात हम छींको में रखकर लाये हैं। आप लोग खुशी से वह खा सकते हैं। अगर भात नहीं चाहते, तो हम गाय को दुहकर धारोष्ण दूध आप दोनों को पिलाएँगे। मैं नन्दपुत्र कृष्ण हूँ और यह मेरे भाई बलराम है। हम दोनों आपकी भरसक सहायता करेंगे। यहाँ के जलचरों के प्रति ज़रा भी भय मन में मत रखिए। कोई तिरछी नज़र से आपकी ओर नहीं देख सकेगा। आप स्नानानन्द का उपभोग करें।"

अपने साथ बात करनेवाले बालक का तेज देखकर मुनि सोचने लगे, 'गोपकुल में ऐसा बालक कैसे उत्पन्न हुआ है? आश्चर्य में आकर पलभर आँखें बन्द कर वे समाधि अवस्था में पहुँचे और कृष्ण के बारे में सब जान लिया। उन्होंने कृष्ण से कहा, "वत्स, यह हमारा बड़ा सौभाग्य है। जिस को ब्रह्मा आदि देवता पूरे प्रयत्न करके भी देख नहीं सकते, ऐसे आप के दर्शन हम को आज अनायास हो गये। आज हमारा जन्म सार्थक हुआ। तुम्हें पुत्र के रूप में पानेवाले माता-पिता धन्य हैं।" इस प्रकार कृष्ण की प्रशंसा करते हुए दोनों अपने पथ चलते बने।

इस प्रकार बलराम व अन्य गोप बालकों के साथ गायों के पीछे घूमते, हँसते, खेलते, गाते कृष्ण अपना जीवन बड़े सुखपूर्वक बिताते रहे।

कृष्ण एक दिन यमुना किनारे चलते चलते ज़रा ज्यादाही दूर निकल गया। एक स्थानपर उसने एक भयानक तालाब देखा। तालाब ख़ासा विशाल था। समुद्र की लहरों की भाँती इस तालाब की लहरें उछल रहीं थीं। लहरों पर घनी भांप छायी हुई थी। और समीप के तटवर्ती पेड़ व लताएँ बुरी तरह झुलस गयी थीं। तालाब की लहरें भयानक रूपमें तट को छू रहीं थीं। ऐसा लग रहा था कि, उस स्थान पर कोई पक्षी या प्राणी जीवित नहीं रह पा रहा था। एक प्रकार का भयानक सन्नाटा वहाँ छाया हुआ था।

कृष्ण ने कालिया नाम के सर्प के बारे में यह सुन रखा था—इस महासर्प के मुँह से अग्नि-ज्वालाएँ फूट निकलती हैं। यह सर्प गरुड़ से भी नहीं डरता। वह एक तालाब में छिपा रहता है। कोई भी तालाब के पास फटक नहीं सकता।—अभी इस तालाब को देखकर कृष्ण को ये सारी बातें याद हो आयीं और उसने जान लिया कि यही वह तालाब है। कृष्ण ने सोचा कि, इस तालाब में प्रवेश कर उस सर्प का मद चूर-चूर कर यह तालाब मवेशियों के लिए उतरने योग्य कर देना चाहिए। इस कार्य से और भी एक लाभ होगा—वह यह कि, कालिया के परिवार से संबधित अनेक सर्प बन में संचार करते हुए वृंदावन के कुछ प्रदेशों को भी विपदाजनक बना रहे हैं। यदि उचित रूप में कालिया का मर्दन हो जाएँ, तो इन छोटे-मोटे सर्पों के खेल समाप्त हो जाएँगे। यह काम किसी भी हालत में संपन्न करना ही चाहिए। ऐसी हालत में विलम्ब क्यों? 'शुभस्य शीघ्रम्।' इस प्रकार विचार कर कृष्ण तालाब के किनारे पहुँचा। तालाब के जल से सटकर एक कदंब वृक्ष फैला हुआ था। उसपर चढ़कर तालाब में कूदने का निश्चय कृष्ण ने किया। उसने किसी से भी इस संबंध में परामर्श नहीं किया। अपने साथ रखे रस्सों को वहीं कहीं फेंक दिया। अपना डंका तथा मुरली को किसी के हाथ में दे दिया। सिर पर से मोरपंख निकालकर जूड़ा बाँध दिया। और कदम्ब वृक्षपर चढ़कर ऊँची आवाज़ देकर वह तालाब में कूद पड़ा। कृष्ण जहाँ पर पानी में गिरा वहाँ तालाब का जल बड़ी ऊँचाई तक उछल पड़ा। (क्रमशः)





कृष्ण ज्यों ही कालिया के तड़ाग में कूद पड़े, त्यों ही उसमें ऐसी उत्ताल तरंगें उठीं जैसी क्षीर-सागर में मंदार पर्वत के गिरने से ऊँची तरंगें उठीं थीं और खूब हलचल मची थी। इस समय कृष्ण के कूदने से तड़ाग में ऐसी हलचल मची की वह हलचल तड़ाग के रसातल तक पहुँची। इस पर कालीय अत्यंत क्रुद्ध हो उठा। उसने क्रोध से अपने पाँचों फन फैलाकर इस प्रकार मुँह खोला कि जिसमें से उसकी कराल दाढाएँ स्पष्ट दिखाई दें। फिर उसने अपने मुँह से विषज्वालाओं को फेंकते हुए अपने वक्रगतिवाले शरीर को नदी में फैलाकर कृष्ण के शरीर पर अपने दाँतों से जहाँ तहाँ काटा। बाद में उसके शरीर को अपनी लपेट में जकड़कर कसने लगा। शरीर कस जानेसे कृष्ण बेहोश होने लगा, यह देखकर कालीय के बन्धु, पत्नियाँ व बच्चे भी कृष्ण को घेरकर उसे काटने लगे। इसके साथसाथ इस परिवार के साथ रहनेवाले अन्य सर्प भी उसमें सम्मिलित हुए।

यह दृश्य देखकर गोपबालक बहुत घबड़ा गये और वार्ता पहुँचाने के लिये दक्षिण दिशा में एक कोस की दूरी पर स्थित गोकुल की ओर दौड़ पड़े। वहाँ पहुँचते ही गोकुल के निवासियों को हाँफते-हाँफते कहा कि, "खेलते खेलते दूर जाकर बिना किसी को कहे कृष्ण यमुना के तडाग में कूद पड़े, जहाँ भयानक सर्प निवास करते हैं। कूदते ही सबसे महान सर्पने उसको अपनी लपेट में कसके पकड़ रखा है और साथ ही बाकी सभी सर्प कृष्ण को डस रहे हैं। सब लोग जल्दी चलिये और उसको सर्प से छुडाइये, जल्दी



ने कहा, "हम पर विपदा के बादल छाये हुए हैं।" कुछ लोग कहने लगे, "यह कृष्ण हमेशा कुछ न कुछ ख़तरा मोल लेता रहता है। कभी चुप नहीं बैठता। कुछ गड़बड़ किये बिना जैसे उसे चैन ही नहीं आता।" "वह बच्चों की-सी हरकतें नहीं करता बल्कि सदा भारी ख़तरों से जूझता रहता है।"—अन्य कुछ कह रहे थे। कुछ लोग तो और व्याख्या करने लगे—"कृष्ण ने आजतक बड़े-बड़े संकटों का सामना करके हर बार विजय ही प्राप्त की है। उसके सामने यह कालिया क्या हस्ती है!"—मगर ऐसी अलग अलग प्रकार की बातें करनेवाले सभी के सभी लोग यमुना की ओर दौड़ रहे थे।

कीजिये।" गोपाल आँखों में आँसू लाकर कहने लगे।

यह समाचार सुनते ही गोकुलवासियों को जैसे बिजली छू गयी! नन्द आश्चर्य एवं दुख से भर उठे। विकल होकर वे पूछने लगे, "क्या कह रहे हो? कहाँ है मेरा लाल?" और यह पूछते पूछते ही वे भी उन बच्चों के पीछे दौड़ पड़े।

गोकुल के बलवान युवक अपने हाथों में डंडे और हथियार लेकर नंद के साथ हो लिये। यशोदा तो वार्ता सुनकर मानो होश-हवास खो बैठी। वह चिल्लाने लगी, चीखने लगी। उसके बाल खुल गये। अन्य गोप-स्त्रियाँ उसको आधार देकर यमुना की ओर चलाने लगीं।

इस प्रकार सारा गाँव उमड़ पड़ा। कुछ लोगों

सब लोग दौड़ते दौड़ते कालिन्दी के तटपर पहुँचे और कृष्ण को देखकर एकदम हताश हो गये। साँप की लपेट में फँसा कृष्ण बहुत ही दयनीय दीख रहा था। किसी को कुछ कहते नहीं बना, सबने हथियार डाल दिये। नंद-यशोदा तो बेहोश हो गये। बाकी लोगों ने कुछ उपचार किये और वे उनको होश में लाये।

नन्द अपने गाँववालों से कहने लगे—"न मालूम मैं ने पिछले जनम में कैसा पाप किया है, कि मेरा बेटा अब साँप का शिकार बन गया है। हर कोई यह कहकर मेरी प्रशंसा करता रहा कि मैं एक बडा पुण्यात्मा हूँ, इसी लिये ऐसे सुंदर और बल-पराक्रमी पुत्र का पिता बन गया हूँ। इसपर प्रत्यक्ष देवता भी ईर्ष्या से भर गये हैं। मेरे मन में अब भी आशा की रेखाएँ खींची जा रही हैं कि



जिसने पूतना, शकट आदि अनेक राक्षसों का संहार किया है, वह क्या इस कालिया का मर्दन नहीं कर सकता? मैं तो किसी तरह से साहस बटोर रहा हूँ, मगर अपने पुत्र की हालत देख उधर यशोदा का मातृ-हृदय जैसे तड़प रहा है। उस बेचारी की व्यथा हम कैसे दूर कर सकें?"

उधर यशोदा बोलने लगी,"बेटा, तुमने माखनचोरी की तो गोपिकाएँ तुम्हारी शिकायत करने आयीं। इसपर मैंने तुमको ओखली से बाँध रखा। अब उस अपराध की सज़ा के रूप में मुझे इस प्रकार सता रहे हो? तुम तो बड़े शक्तिशाली हो, यह यःकश्चित सर्प तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है? क्या तुम्हें मेरे प्रति प्रेम नहीं है? मेरी ओर देखकर एक बार हँस लो बेटे। अपनी आँखें खोलकर एक बार मेरी ओर देखो बेटे। देखो, गायें कैसी अनाथ सी बनीं घास चरना छोड़कर तितर-बितर हो गयी हैं, वे भी तुम्हारी दिशा में ताक रही हैं। विषवृक्ष से भरे जंगल को ध्वस्त करनेवाले तुमको यह सर्प किस खेत की मूली है?"

यशोदा की बातें सुनते हुए सब लोग शोक में डूब गये। सब ने यह समझकर यशोदा को सान्त्वना देनी चाही कि वह अपने पुत्र से वंचित हो गयी हैं। कुछ गोपक तो कहने लगे—"हम सब अभी इसी वक्त कालिन्दी में कूदकर उस सर्प से लड़ेंगे और कृष्ण को सांप की जकड़ से मुक्त करेंगे, वरना हम भी कालीय की विषाग्नि में जल-भुनकर भस्म हो जाएँगे। कृष्ण को साथ लिये बगैर हम लोग लौटकर गोकुल हरगिज़ नहीं जायेंगे।"

बलराम चुपचाप खड़े ये सभी बातें देख-सुन रहे थे। अब उनको भी लगा कि यह सब तमाशा बन्द होना चाहिए। उन्होंने कृष्ण को पुकार कर कहा, "हे कृष्ण, तुम मानव आकृति में आने से लोकहित की बात भूल रहे हो। इस कम्बख़्त सर्प की पकड़ में आकर कैसे असहाय बने पड़े हो। क्या तुम यह नहीं देख रहे हो कि तुम्हारे प्रिय जन किस प्रकार हीन-दीन बन बैठे हैं? बस कर दो यह सब तमाशा! अब तुरन्त उस विषैले कीट को दण्ड देकर इन सब को चिन्तामुक्त कर डालो। इन्हें प्रसन्न बना दो।"

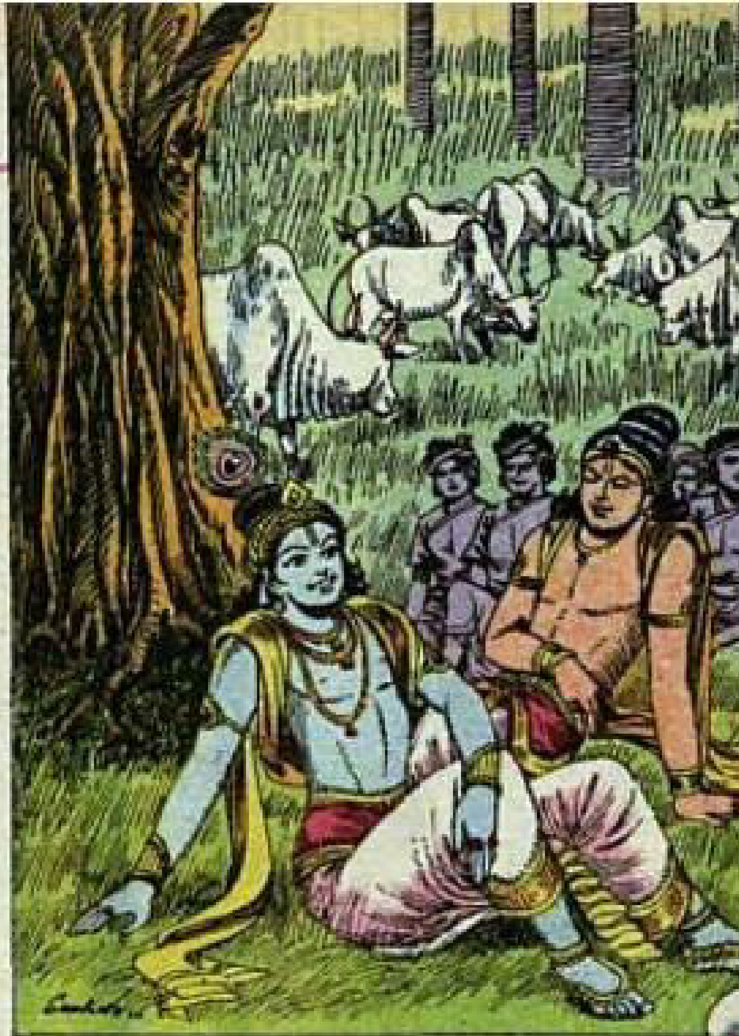
बलराम की यह बात सुनकर कृष्ण जैसे



एकदम होश में आ गये और कालिया को अलग ढकेलकर स्वयं हवा में उछले। हवा में से सीधे वे सर्प की फणों पर कूद पड़े। इस के बाद सर्प की पूँछ को अपने एक हाथ में थामे उसके सिरोंपर उछल उछलकर उसका मर्दन करने लगे। उस नृत्य को देख यमुना की लहरें ताल देने लगीं। नदीतट पर खड़े गोपाल हर्षनाद करने लगे, जिसमें एक विशेष प्रकार का ताल व संगीत था। वही ताल पकड़कर कालीय के सिरोंपर अदल-बदल कर कृष्ण महानाट्य करने लगे। आकाश के देवता भी यह नृत्य नाट्य अवलोकन करने लगे।

कृष्ण जैसे ज़्यादा गति पकड़ने लगे वैसे वैसे कालिया के सिर छितरने लगे। उस के नासापुटों से खून की धाराएँ बहने लगीं, उसके दाढ़ टूटने लगे और उसके मुँहसे विषपूर्ण ज्वालाएँ निकल-निकल कर उसका विष भी खतम हो गया। आँखिर वह थक कर ऐसा दयनीय दिखाई देने लगा, जैसे सूखा कमलनाल झुकता जा रहा हो। झुकते झुकते अंतमें वह मरने की स्थिति में आ गया। अब वह दीन स्वर में निवेदन करने लगा—"भगवान, मैं अज्ञानवश आप की महिमा को पहचान नहीं सका। आप तो सर्वेश्वर हैं। मैं ने क्रोध में आकर आप की पवित्र देह पर प्रहार किये। अच्छा ही हुआ—आपने मेरे अहंकार का दमन किया। अब आप कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए। मेरा सारा विष भी उतर गया है और मेरी अकल ठिकाने लग गयी है। इसके आगे मैं आप का दास बनकर आप के आदेश का पालन करूँगा। आपके चरणों का स्पर्श पाकर मैं पवित्र हो गया हूँ। आप का क्रोध मेरे लिये अनुग्रह बन गया है।"

यह निवेदन सुनकर कृष्ण के मन में भी कालीय के प्रति दया का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने कहा, "सुनो कालिया, आइन्दा तुम इस यमुना नदी में नहीं रह सकते। अपने परिवार सहित तुम इसी वक्त समुद्र की ओर प्रयाण करो। तुम्हारे यहाँ से चले जाने के बाद यह जल जब बह जायेगा तब नदी निर्मल होगी और जनता के लिए उपयुक्त बन जायेगी। तुम्हारे सिरपर अंकित मेरे चरणों के चिन्ह देखकर गरुड कभी भी तुम्हें हानि नहीं पहुँचाएगा। यही वरदान मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।"



फिर क्या था! कालीय उसी समय अपने परिवार के साथ समुद्र में बसने के लिए निकल पड़ा। इसके बाद कृष्ण यमुना के जल से बाहर निकल आये। उनके मातापिता ने आगे बढ़कर उन्हें गले लगाया और उन्हें आशिर्वाद दिये। कृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। अन्य गोपों ने कृष्ण को घेर कर उनकी भूरि प्रशंसा की और उन के अद्भुत कार्य पर आश्चर्य प्रकट किया।

गोपकों के प्रमुख व्यक्तियों को कृष्ण एक देवता के समान दर्शित हुये। वे उनकी स्तुति करने लगे, "इतना बल, साहस और पराक्रम अन्य किसी में भी नहीं होगा। तुम्हारी महिमा सारे जगत में प्रशंसनीय है। हमारे रेवडों के और हमारे भी रक्षक तुम्हीं हो। तुम्हारी कृपा से ही हमारी गायें स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र संचार कर सकती हैं। अब इस नदी में स्नान के लिए उतरनेवाले ऋषि-मुनियों को किसी प्रकार का ख़तरा नहीं रहेगा। तुम्हारी विशेषता को हम आजतक समझ नहीं पाये थे। तुम्हारे समाजहित के काम अद्भुत हैं।" यह कहकर सब लोगों ने कृष्ण की प्रदक्षिणा की।

कृष्ण ने उचित रूप में सब से बातचीत की और उनके साथ गोकुल लौट गये। वहाँ पहुँचकर सुखपूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

थोड़े दिन बीत गये। मवेशियों के लिए अब वहाँ घास नहीं रही। कृष्ण ने अन्य गोपकों के साथ इस समस्या को लेकर चर्चा की। उस वक्त एक बुज़ुर्ग ने कृष्ण को यह बात बतायी।

गोवर्धन गिरी की उत्तरी दिशा में कालिंदी के समीप एक अत्यन्त विशाल ताड़ का वन है। उस बन में हरी घास भरपूर है। मगर उसी वन में धनुक नाम का एक राक्षस गर्दभ के रूप में निवास करता है। इस कारण कोई भी प्राणी उस वन में घुसने का साहस नहीं करता है।

यह समाचार सुनकर बलराम और कृष्ण का उत्साह उमड़ पड़ा। उन दोनों ने कुछ साहसी गोपकों को समझाया, "हमारे जानवरों के लिए अगर चारा मिल जायँ, तो क्या हम राक्षसों से भय खाकर जानवरों को भूखा रखेंगे? चलो, हम उस राक्षस का ही संहार करेंगे।" इसके बाद वे सब अपने रेवड़ों को हांककर ताड़वन की ओर निकल पड़े। वन में सर्वत्र हरी हरी घास और दूब लहलहा रही थी। जानवर बड़ी खुशीमें घास पर



लेना।" यह कहकर बलराम एक एक पेड़ के पास जाकर उनको हिलाने लगा। टपाटप ध्वनी के साथ ताड़ के फल ज़मीन पर गिरने लगे।

फलों के गिरने की आवाज़ धेनुकासुर के कानों में पड़ी। गधे के रूप में संचार करनेवाला वह राक्षस अपनी ही आकृतिवाले एक हजार प्रचण्ड अनुचरों के साथ बलराम तथा कृष्ण पर हमला करने के लिए उनके पास पहुँचा। उन को देख सारे गोप आपादमस्तक कांप उठे।

एक साथ इतनी संख्या में गधों के चलने से जो धूल उठी इसके कारण वहाँ का सारा आकाश अँधेरे से व्याप्त हो गया। उनके रेंकने से सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उन गधों के समूह में सबसे आगे धेनुकासुर अपनी छाती फुलाए चला आ रहा था। उसको देखते ही बलराम खाली हाथ आगे बढ़कर उसका रास्ता रोके खड़ा हो गया। धेनुक ज्यों ही बलराम के पास पहुँचा, त्यों ही उलटकर धेनुक ने अपनी पिछली टाँगों से बलराम की छातीपर लात मारना चाहा। मगर धेनुक की ऊपर उठी पिछली टाँगों को बलराम ने बड़ी फूर्ति से कसकर पकड़ लिया और उस को हवा में उछाल दिया। उसका शरीर ताड़ के पेड़ों से टकराकर चूर चूर हो गया। इसके साथ ही इस धक्के से ताड़ के फल नीचे गिर पड़े।

बलराम इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने अन्य राक्षसी गधों की टाँगें पकड़कर उनको भी ताड़ वृक्षों की ओर झोंक कर उन्हें भी मार डाला। उस की देखादेखी कृष्ण ने भी वही काम आरंभ किया

टूट पड़े। कृष्ण और अन्य गोप भी बहुत प्रसन्नता से उस घास में विहार करने लगे।

उस वन की शोभा देखकर कृष्ण अतिशय प्रमुदित हुए। मानो पाताल से उगे, फण जैसे सिरों वाले वे श्याम रंग के ताड़वृक्ष नाचनेवाले सर्पों की भाँती प्रतीत हो रहे थे। दर्शकों को वे अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उनके लाल व काले रंग के फल अपनी सुगंध हवा में फैला रहे थे। उन फलों को देखकर कृष्ण ने बलराम से कहा, "भैया, तुम पेड़ों पर चढकर फल गिरा दो। मुझे खाने की तीव्र इच्छा हो रही है। हमारी गायों को भी हम ये फल खिलाएँगे।"

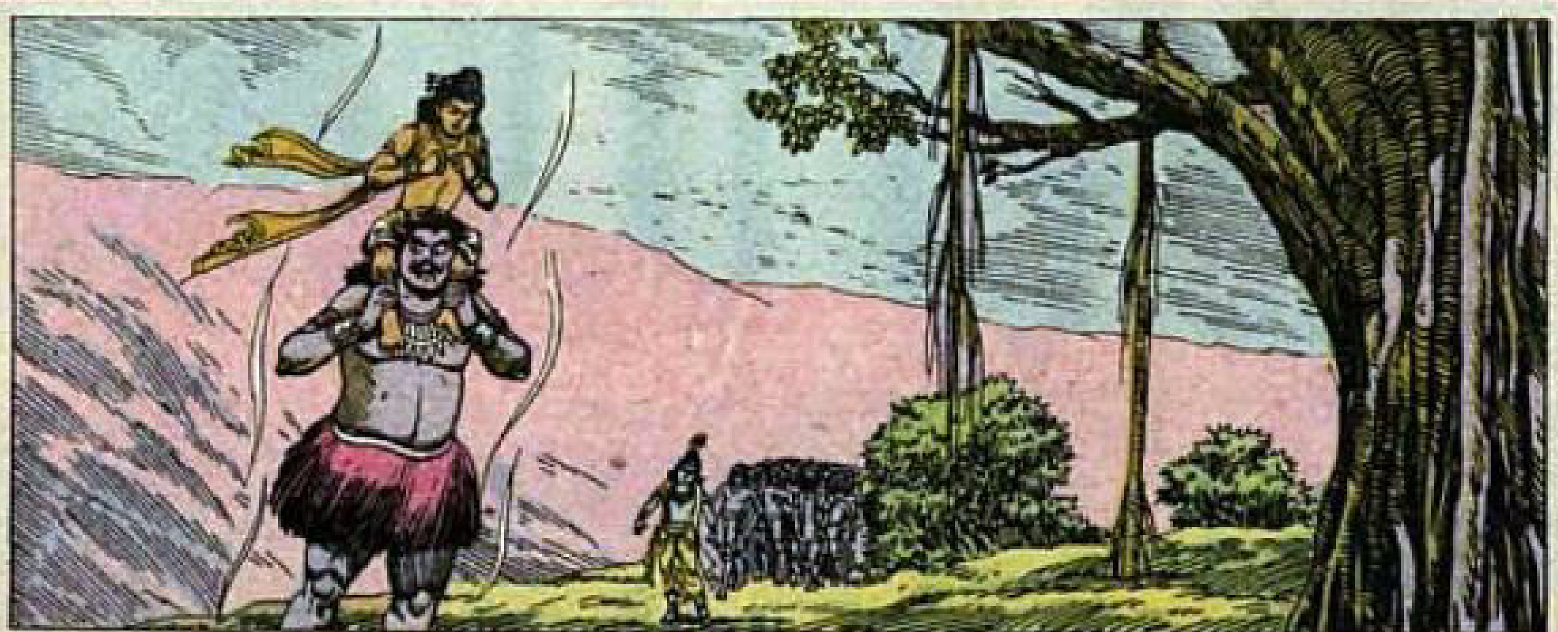
"कृष्ण, पेड़ों पर चढने में काफी समय लगता है, मैं पेड़ों के तनों को हिला दूँगा। इससे जो फल जमीन पर गिरेंगे उन को तुम लोग उठा



और उसने भी अनेक राक्षसों को मार डाला फिर क्या था! सारा वन ताड़ के फल और राक्षसों के कलेवरों से भर गया। गोपकों ने उन दोनों भाइयों के पौरुष की प्रशंसा की। इस प्रकार राक्षसों की मृत्यु के कारण वह ताड़वन निरापद हो गया।

एक बार की और घटना है—गोपक लोग भांडीर वटवृक्ष के प्रदेश में अपनी गायों को चराते हुए अपनी खेलकूद में मस्त थे। उस समय प्रलंब नाम का एक राक्षस गोपालक का रूप धारण कर उनमें सम्मिलित हुआ। गोप बालक 'हरिण क्रीडा' नामक खेल खेलने के लिए जोडी-जोडी में बाँट गये। कृष्ण और उसका ममेरा भाई श्रीधाम की एक जोड़ी बन गयी तो गोपाल रूपी प्रलम्ब और बलराम की एक जोड़ी बनी। इस प्रकार आधे गोपाक कृष्ण के पक्ष में तो आधे श्रीधाम के पक्ष में बँटकर उन के दो गुट बन गये। खेल ऐसा था—भांडीर वटवृक्ष को सीमा बनाकर सबको हिरन जैसे कूदते हुए दौड़ना होगा। इस खेल में कृष्ण के पक्ष के लोग विजयी हुए और श्रीधाम का पक्ष हार गया। अब पराजित गुट के खिलाड़ियों का काम था—विरुद्ध पक्षीय अपनी जोडी के खिलाड़ी को अपनी पीठ पर लादकर सीमा तक ढोकर ले जाना।

इस कारण प्रलम्बने बलराम को अपनी पीठ पर उठाया और निश्चित स्थल की ओर जाने के बदले उसको दूसरी ही दिशा में ले गया। और अचानक अपनी राक्षस आकृति धारण कर बलराम के सहित आकाश में उड़ने लगा। बलराम सकते में आ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कि क्या किया जाय। उसने चिल्लाकर कृष्ण को अपना हाल सुनाया। कृष्ण ने उसे चेतावनी दी, "भैया, देखते क्या हो, उसका अंत कर डालो।" दूसरे ही क्षण बलराम ने अपनी मुट्ठी कसकर राक्षस के सिरपर पूरी ताकत से प्रहार किया। इस मुट्ठीप्रहार से राक्षस का सिर तत्काल फट गया, वह आकाश से नीचे आ गिरा, और मर गया। प्रलम्ब का वध करने के बाद बलराम 'बलदेव' नाम से भी पुकारा जाने लगा।





उस साल मूसलाधार बारिश हुई। चारों तरफ़ हरी हरी घास लहलहाने लगी। हरी-भरी वसुंधरा पर जानवर खूब मज़े से घास चरने लगे। जानवर और उन के बछड़े खूब हट्टे-कट्टे बन गये। फसलें बहुत अच्छी आईं। घास, लताएँ और पेड़-पौधे खूब उगे। गोकुल में धन-धान्य और गोरस विपुल मात्रा में उपलब्ध हुआ।

वर्षा ऋतु समाप्त हुई और शरद ऋतु का प्रारंभ हुआ। नन्द गोप और अन्य बुजुर्गों ने आपस में सलाह-मश्विरा किया और इन्द्रोत्सव मनाने का निर्णय किया। तुरन्त इन्द्रोत्सव की तैयारियाँ शुरू हुईं। सब लोग इसी काम में व्यस्त दिखाई देने लगे। इन्द्रोत्सव से संबंधित कामों का आपस में बँटवारा किया गया। निवास-स्थानो को लीप-पोत कर साफ़-सुथरा बनाया गया। भिन्न भिन्न प्रकार की पूजा-सामग्री जुटाई गई। प्रसाद के रूप में बाँटने की मिठाइयाँ बनने लगीं। सर्वत्र आनन्द और उल्लास का वातावरण छा गया।

यह सब हंगामा देख कर श्रीकृष्ण ने हँसते हुए गोपकों से पूछा—"यह कैसा नया उत्साह आप लोगों में भर गया है? इन्द्रोत्सव का यह क्या पर्व है? किस अधिदेवता की पूजा-अर्चना करनी है? इस पूजा से आप लोगों का क्या कल्याण होने की आशा रखते हैं? इन्द्रोत्सव मनाने से क्या लाभ होनेवाला है?

एक बजुर्ग गोपक ने श्रीकृष्ण को समझाते हुए कहा—"बेटा, सारे लोकपालकों का राजा इन्द्र देव ही है न? वर्षा ऋतु के देवता भी इन्द्र ही हैं। इन्द्र के कारण ही वर्षा ऋतु में बादल जमा होकर



पृथ्वी पर अमृत-धारा बरसाते हैं। नदी-तालों में विपुल पानी बहने लगता है। ग्रीष्म की गरमी गायब हो सर्वत्र शीतलता का आभास होने लगता है। विपुल मात्रा से अनाज की अपलब्धि इन्द्र देवता के कारण होती है। अगर इन्द्र का कोप हुआ तो सारी समृद्धि से वंचित होना पड़े। गोगणों का उपकार करनेवाले इन्द्र देवता की आराधना गोपकों को अवश्य ही करनी चाहिए। इसी हेतु हम ने इन्द्रोत्सव मनाने की सोची है। समझ गये?"

यह निवेदन सुनकर श्रीकृष्ण ने अपनी बात सुनाई—"देखिए, मनुष्यों में प्रधानतः तीन पेशे हैं, खेती-बाड़ी, व्यापार-वाणिज्य और पशु-पालन। जो जिस पेशे को अपनाते हैं, उन का वही देवता है। हम लोग गोपालक हैं, वनों में रहते हैं और पहाड़ों में विचरण करते हैं। जानवरों का पालन करते हुए जीवन-यापन करते हैं। इस लिए हमारे लिए जंगल, पहाड़ और पशु ही देवता हैं। सब को अपने ही कुल-देवताओं की पूजा करनी चाहिए। किसान गाँवों में निवास करते हैं, जंगली लोग या आदिवासी जंगलों में रहते हैं। हम लोग पहाड़ों में निवास करते हैं। ब्राह्मण मंत्र-यज्ञ करते हैं, किसान हल का यज्ञ करते हैं, और गोपालक पहाड़ का यज्ञ करते हैं; इसलिए हमें पर्वतोत्सव करना चाहिए। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा आप लोग नहीं करेंगे तो मैं ज़बरदस्ती आप से करवा दूँगा।"

"मैं यह सब गोकुल की भलाई के लिए ही कह रहा हूँ। ऋषि-मुनियों ने गिरि-यज्ञ की महिमा गायी है। हम पर्वतोत्सव का आयोजन करेंगे तो हमारा सब तरह से फायदा होगा। अतः मैं चाहता हूँ कि हम सब मिल कर बड़े पैमाने पर पर्वतोत्सव का आयोजन करें।"

श्रीकृष्ण ने इस प्रकार देर तक उनको समझाकर कहा, तब उन्हें ये सब बातें उचित मालूम हुई। इस के अलावा गोकुल की सारी जनता सब प्रकार से श्रीकृष्ण पर अवलंबित थी, क्योंकि और कोई उन का सहारा न था। श्रीकृष्ण ने जो अद्भुत कार्य किये थे, वे अपूर्व थे। मनुष्य मात्र के द्वारा वे कभी संभव न थे। साथ साथ श्रीकृष्ण ने कई बार उन को असाधारण आपत्तियों से बचाया था। उन की दृष्टि में वे मनुष्य ही नहीं,

देवता थे । श्रीकृष्ण की बात टालना किसी को संभव न था । श्रीकृष्ण का पर्वतोत्सव का प्रस्ताव सब को सर्वथा उचित लगा ।

अतः गोपालकों ने इन्द्रोत्सव मनाने का अपना इरादा छोड़ दिया । उन्होंने ब्राह्मणों को निमंत्रित किया और गिरि-यज्ञ मनाने का प्रबंध किया । खीर, मोदक इत्यादि व्यंजन तैयार किये गये । अनेक प्रकार के अन्न, मांस, मधु, चटनियाँ, दही, घी और दूध जैसे पदार्थ बंगियों व गाड़ियों पर लादे गये । वाद्यों के साथ बाल-गोपाल वृद्ध गोपकों के पीछे जुलूस निकाल कर बड़े उत्साह के साथ गोवर्धन पर्वत की ओर चल पड़े ।



गोवर्धन गिरि के पास एक अच्छी समतल भूमि को गोबर से लीपा-पोता गया । सुंदर रंगोलियों से उसे अलंकृत किया गया । एक ऊँचे आसन पर श्रीकृष्ण विराजमान हुए और उन के नेतृत्व में गिरि-पूजा संपन्न हुई । साथ में लाये गये खाद्य-पदार्थों को पर्वत के लिए भोग चढ़ाया गया । गोपालकों ने पुष्पांजलियाँ समर्पित करते हुए पर्वत को प्रणाम किया । जब सब लोग इस कार्य-कलाप में व्यस्त थे, तब पर्वत के अधिष्ठाता देवता के रूप में स्वयं श्रीकृष्ण पर्वत-शिखर पर अवतरित हुए । सब लोगों ने बड़े विस्मय के साथ उस दृश्य को देखा । श्रीकृष्ण ने हाथ फैला कर सारा नैवेद्य भक्षण किया । तब जाकर उन्होंने कहा—"आप लोगों की भक्ति देख मैं प्रसन्न हुआ ।"

गोपालकों ने हाथ जोड़कर नम्र भाव से कहा—"हे देव, हम सब आप के दास हैं । आप की इच्छा हमारे लिए आज्ञा के समान है । आप जो आदेश दें, हम उस का पालन करेंगे"

"पर्वताकार रूप में ही आप लोग मुझे देवता माने और मेरी आराधना करें । इस से आप की सारी इच्छाएँ पूर्ण होंगी । आप के गोधन की वृद्धि होगी और गायों से अमृत-धाराएँ बहेंगी । मैं आप लोगों के बीच एक व्यक्ति बनकर रहा करूँगा ।" इतना कहकर पर्वत-पर्व का देव अदृश्य हो गया।

गोपालकों ने पर्वत पर अधिष्ठित श्रीकृष्ण और पर्वत के नीचे विराजमान श्रीकृष्ण को एक ही समय देखा । इसके बाद उन्होंने अपने पशुओं के सींगों की पूजा की और उनके गलों में घुंघरू बाँधे । बेल-लताएँ लाकर उनके मुकुट बनाकर



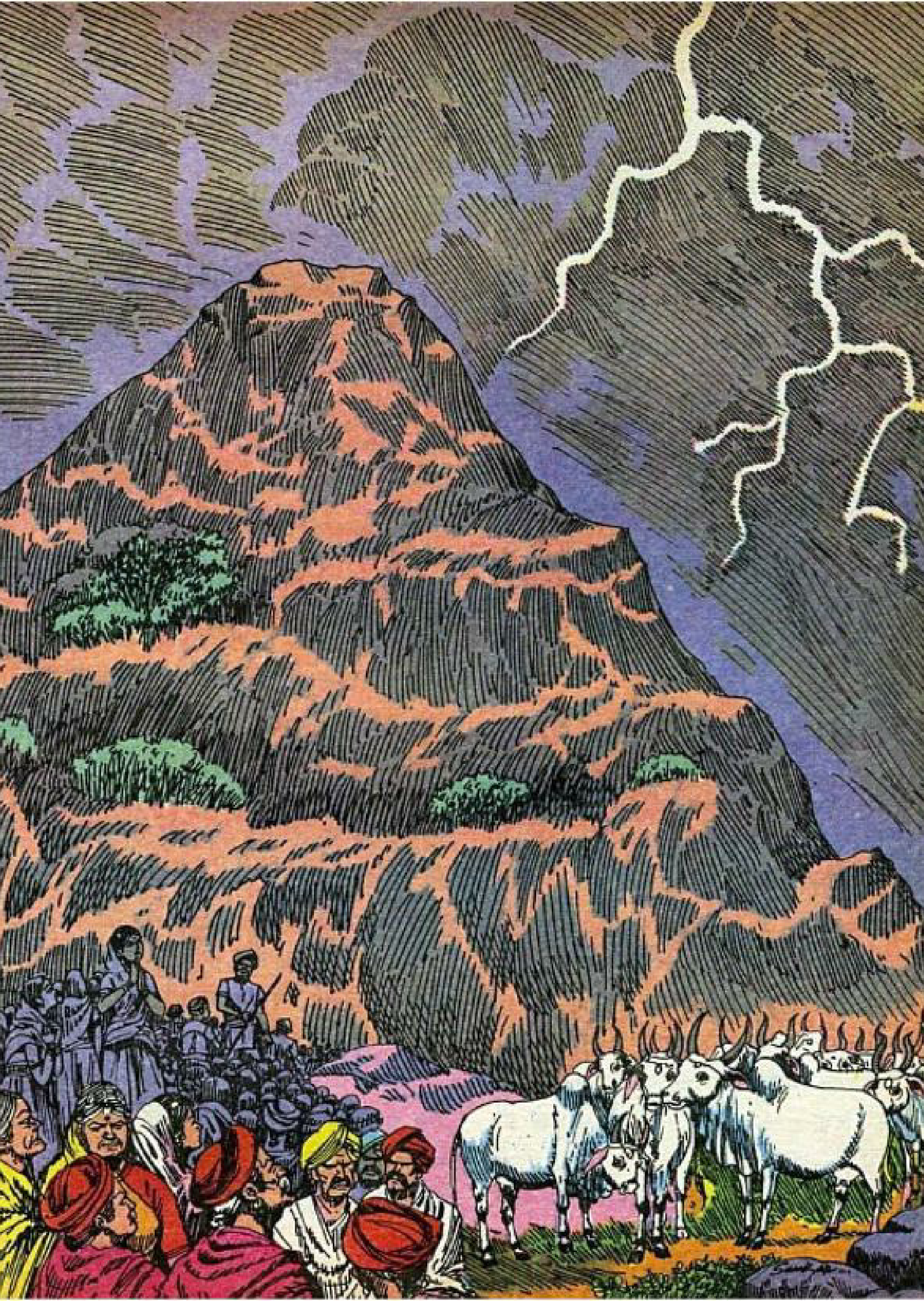
उन्हें सजाया । ज़ोर ज़ोर से घोषणाएँ करते हुए उन्होंने पर्वत की चारों ओर परिक्रमा की और जहाँ-तहाँ नज़र उतारी । इस के बाद खाद्य-पदार्थ प्रसाद-स्वरूप स्वयं खा लिए । इस के बाद श्रीकृष्ण को बीच में रख कर सब ने नाचना-गाना शुरू किया । अलग अलग वाद्यों के ताल पर गोपाल नाच रहे थे और साथ साथ गा रहे थे । घण्टों तक यह आनन्द-पर्व चलता रहा । सभी आनन्द-सागर में मानो डूबे जा रहे थे । इस प्रकार पर्वतोत्सव समाप्त हुआ । फिर आनन्दोत्सव में सब लोग श्रीकृष्ण के साथ गोकुल लौट आए ।

उधर स्वर्ग-लोक में इन्द्र का अपमान हुआ और गोपालकों के प्रति उस का क्रोध उमड़ आया। उसने संर्वतम् आदि महा मेघों को बुलाकर उकसाया—"तुम लोग देख ही रहे हो, वृन्दावन के वासी सभी गोपक अहंकार के अधीन हो गये हैं । प्रति वर्ष जो मेरी पूजा करते थे, उसे बन्द कर के कपटी श्रीकृष्ण की बातों में आकर उन्होंने एक दुर्बल पर्वत की पूजा की है । शायद उन लोगों ने सोचा है कि इसी से उन को सब कुछ मिल जाएगा । तुम लोग लगातार सात दिन मूसलाधार बरस पड़ो और उनकी जीविका का आधार बनी गायों को हानि पहुँचा दो । मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी । मैं भी तुम लोगों के साथ चलूँगा और सब तमाशा देखूँगा । देखूँ, तुम्हारा पराक्रम और शक्ति कैसी है!"

गोकुलवासियों को ईशान्य दिशा में बिजली की कौंध दिखाई दी । ज़ोर की हवा चली, भारी तूफ़ान उमड़ पड़ा । बच्चे चिल्लाने लगे, सर्वत्र बारिश ने हाहाकार मचा दिया ।

पूरब में और बादल दिखाई दिए और बिजलियाँ कड़कने लगीं । वृद्ध गोपक विस्मय में आकर सोचने लगे आखिर यह बेमौसम की बरसात कैसी? अभी अभी हम ने उत्साह के साथ पर्वतोत्सव मनाया । अब यह कौन नई आपत्ति आने को है! लगता है, बड़ी भारी वर्षा होगी । आखिर हम ने क्या ग़लती की है?

देखते-देखते काल मेघ सारे आकाश में फैल गये और सूरज को ढँक लिया । सारा आकाश गहरे अंधकार से भर गया । कड़क-कड़क कर बिजलियाँ गिरने लगीं । इसके बाद ओले गिरे । अब क्या था, पृथ्वी व आकाश को जोड़ते हुए





करें? झोंपड़ियाँ गिर पड़ीं, गाडियाँ उलट गई। अधिकतर पशु मर गये। रसोई बनाएँ तो कहाँ बनाएँ? दूध दुहना बंद हो गया। इस दुर्दशा की अवस्था में सभी गोपक श्रीकृष्ण के पास पहुँचे और प्रार्थना करने लगे—"हे कृष्ण, हम सभी अब तुम्हारी शरण में आ गये हैं। तुम्हीं हमारे एकमात्र सहायक हो। हमारी रक्षा करो। अब तक जब गोकुल पर संकट आए, तुम्हीं ने हमको उबारा। तुम्हारी शक्ति और सामर्थ्य अद्भुत है। अभी अति वृष्टि के कारण जो प्रलय मच रही है, उस से हमें बचाने की ताक़त केवल तुम्हीं में है।"

श्रीकृष्ण इन्द की दुर्बुद्धि समझ गये। प्रति वर्ष होनेवाले इंद्रोत्सव को रोक कर हम ने नया उत्सव मनाया, इस लिए उसे क्रोध आ गया। क्रोधवश गोकुल पर वह प्रतिशोध ले रहा है। इन्द्र को विश्वास है कि ऐसा करने पर कृष्ण विवश हो जाएँगे। इन सब बातों का विचार कर श्रीकृष्ण ने निश्चय किया कि गोवर्धन पर्वत को आकाश में उठा कर उस के नीचे गोपकों तथा गायों की सुरक्षा का प्रबंध करना चाहिए।

दूसरे ही क्षण श्रीकृष्ण ने बड़ी सरलता से गोवर्धन पर्वत को उखाड़ लिया और अपने हाथ से छतरी की भाँति उसे थाम लिया। श्रीकृष्ण ने जिस समय गोवर्धन को उखाड़ा, तब बड़े बड़े पत्थर भारी आवाज़ के साथ नीचे लुढ़क आये। विशाल वृक्ष उखड़कर धराशायी हो गये। गुफ़ाओं में छिपे हींस्र श्वापद और बिलों में वास

कुंभ वृष्टि होने लगी।

उस वर्षा को देख गोपक भयभीत हो गये। उन को लगा, मानो प्रलय प्रारंभ हो गयी है। उन की समझ में नहीं आया कि इस प्रचंड वर्षा से लोग अपने को कैसे बचाएँ और अपने प्राणों की सुरक्षा कैसे करें। भागे तो कहाँ भागे? पशुओं की दशा इस से भी बदतर हो गई। पेड़-पौधे धराशायी हो गये। बिजलियों के गिरने से कुछ पेड़ जल गये। आँधी में कुछ पेड़ उड़ गये, तो कुछ और वृक्ष बाढ़ में बह गये। आँधी और वर्षा ने मिलकर जंगल की प्राकृतिक सुंदरता को ध्वस्त कर दिया। बहुत अधिक संख्या में पक्षी मर गये।

मनुष्यों पर जो गुज़री, उसका वर्णन कैसे

करनेवाले साँप बाहर निकल आये। उन पर रहनेवाले विद्याधर भागने लगे। तपस्या करनेवाले मुनियों की तपस्या भंग हो गई।

श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर गोपकों से कहा—"आप लोग अपने सारे पशुओं को लेकर इस पर्वत के नीचे आ जाइए। तब वर्षा आप का कुछ नहीं कर सकती।" कृष्ण की पुकार सुनकर सभी गोपक अपना सामान, गाडियाँ, औरतों-बच्चों तथा गायों को लेकर पर्वत के नीचे आ पहुँचे।



सात दिन लगातार कुंभ-वृष्टि कराने के बाद इन्द्र ने मेघों को वापस बुलाया। फिर आकाश निरभ्र और स्वच्छ हो गया। गोवर्धन पर्वत के नीचे से सारा गोकुल बाहर आ गया। फिर श्रीकृष्ण ने गोर्वधन को अपने स्थान पर रख दिया। और तब वे पर्वत पर बैठ कर चारों तरफ़ चरनेवाले गायों की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखते रह गये।

श्रीकृष्ण के द्वारा किया गया यह अद्भुत कार्य देख कर इन्द्र अविचलित हो अपने स्थान पर बैठे न रह सके। मन-ही-मन घबड़ा गये। इन्द्र कुछ अन्य देवताओं के साथ ऐरावत पर सवार हो पृथ्वी पर उतर पड़े। उन के हाथ में वज्रायुध भी था। गोवर्धन पर्वत पर जहाँ श्रीकृष्ण बैठे थे, वहीं इन्द्र पहुँचे। ऐरावत से नीचे उतरकर इन्द्र ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया।

श्रीकृष्ण ने ऐसा नाटक किया जैसे इन्द्र को देखा ही न हो। मौन बैठे रहे। इन्द्र ने समझ लिया कि श्रीकृष्ण उस पर नाराज़ हैं। तब उन्होंने स्तुति पाठ किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को बताया कि वे ठीक समझ नहीं पाये कि गोपाल रूप में श्रीकृष्ण सर्वेश्वर का एक रूप है। अहंकारवश उन्होंने भगवान के प्रति अपकार किया। इन्द्र ने श्रीकृष्ण से क्षमा माँगी। इस के बाद इन्द्र ने गोपति के रूप में श्रीकृष्ण का अभिषेक कराया और उन्हें दिव्य वस्त्राभूषण समर्पण किये।

अंत में इन्द्र ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया—"हे श्रीकृष्ण, कंस के अधीन रहनेवाले कई राक्षस आप को हानि पहुँचाना चाहते हैं। अन्त में ये सब आप के हाथ मारे जाएँगे। आप कंस का वध करके अन्त में राजा बन जायेंगे। आप की फूफी कुंती के गर्भ से युधिष्ठिर और

भीमसेन का जन्म होगा। तब मेरे द्वारा अर्जुन का उद्भव होगा। वह आप का भक्त बनकर आप का आश्रय चाहेगा। आप उस को आश्रय देकर उसकी उन्नति का हमेशा ख्याल रखिए। उस के यश का कारण बन जाइए। भविष्य में कौरव और पांडवों का युद्ध होगा। उस युद्ध में कई राजा भाग लेंगे। मैं चाहता हूँ, उस में अर्जुन की विजय हो।"

श्रीकृष्ण ने इन्द्र को आश्वासन दिया—"मेरी फूफी के पाँचों पुत्र महान् पराक्रमी हैं। सब में परमात्मा आ अंश है। एक समय आएगा वे सब सारी पृथ्वी के शासक बन जायेंगे। उनमें से एक अर्जुन बड़ा ही शूर और पराक्रमी है। मैं पहले से ही ये सारी बातें जानता हूँ। आप ने जो कुछ कहा, मैं सब कुछ अवश्य करूँगा। आपके आने से मुझे परम संतोष हुआ। अब आप निश्चिन्त होकर स्वर्ग-लोक जा सकते हैं।"

इसके बाद इन्द्र ने श्रीकृष्ण के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, और उन की परिक्रमा की। फिर ऐरावत पर सवार हो अन्य देवताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने लोक चले गये। इधर श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत से उतर कर गोकुल चले गये।

सभी गोपकों ने उनको चारों तरफ़ घेर लिया। गोकुलवासी समझ गये कि श्रीकृष्ण सामान्य मानव नहीं है। ये एक असाधारण मानव हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा—"इस समय प्रच्छन्न रूप में हमारे बीच रहनेवाले आप वास्तव में कौन है? गोकुल पर कितनी बार आपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े। आप ने हर बार बहादुरी से हम सब की रक्षा की। आप की शक्ति अतुलनीय है। आप न होते, तो जाने हमारी क्या दुर्दशा होती। आप तीनों लोकों के रक्षक हैं। तो यहाँ पर गायें क्यों चराते हैं? आप को देख कर कभी कभी डर लगता है।"

श्रीकृष्ण ने मुस्करा कर कहा—"मैं तो आप के समान एक मानव हूँ। क्यों ये सारे प्रश्न कर रहे हो?"

इस पर सब गोपक अत्यन्त हर्षित हो उठे।





श्रीकृष्ण अब युवा हुए । उनके सौन्दर्य, बल और पराक्रम की ओर गोकुल की सभी नारियाँ आकृष्ट थीं । एक दिन अर्धरात्रि के समय अपने गिर्द गोपियों को वृत्ताकार में खड़ी करके श्रीकृष्ण बीचोबीच रहकर उन के साथ खेल विनोद में निमग्न थे । उसी समय अचानक अरिष्ट नामक एक राक्षस एक भयंकर साँड के रूप में वहाँ उपस्थित हुआ और ज़ोर से रँभाते हुए कृष्ण की ओर सींग बढ़ाये दौड़ पड़ा ।

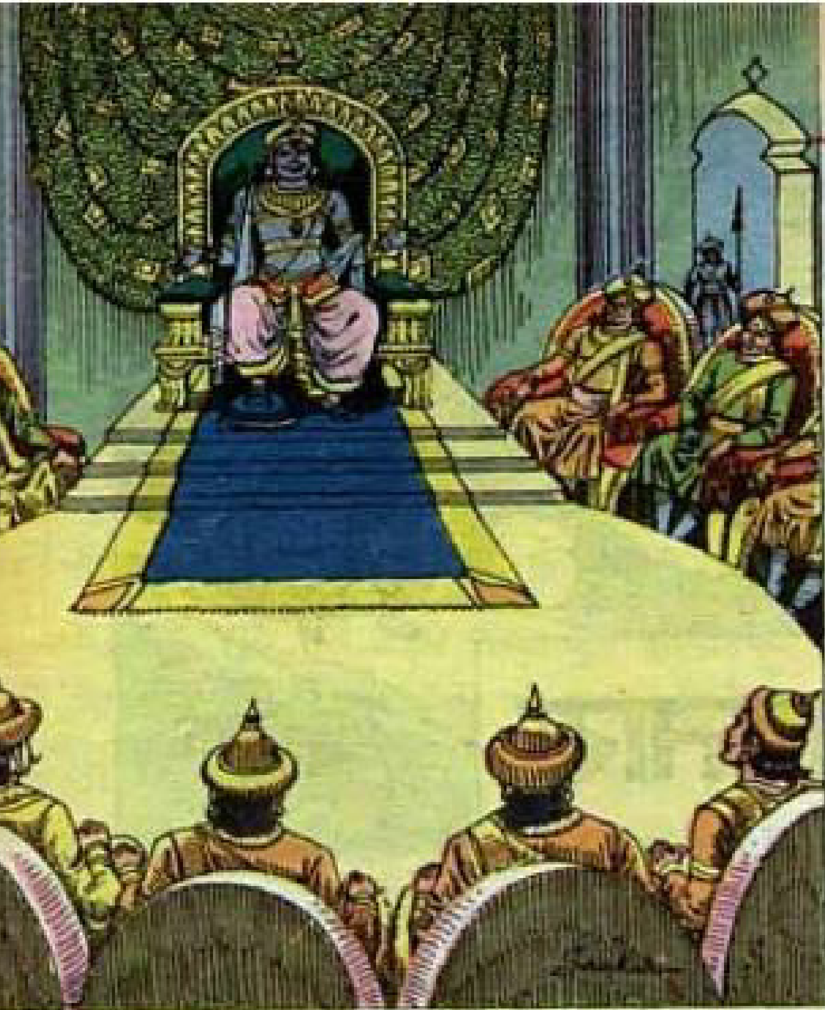
साँड़ की वह भयंकर आकृति और उसकी रँभाने की भयानक आवाज़ सुनकर सभी गोपिकाएँ भयभीत हो कृष्ण की ओट में पहुँची और उन्हों ने अपनी आँखें मूँद लीं ।

कृष्ण ने पहले सभी गोपियों को ढाढ़स बंधवाया । बाद में हमला करने आये साँड़ के दोनों सींग उसने कसकर पकड़ लिये और उसको निश्चल बनाया । अब अपनी पूरी ताकत लगाकर उसने साँड़ की गर्दन मरोड़कर उसे बाजू में ढकेल दिया ।

अपने मुँह और नाक से खून उगलते वह भयंकर बैल निर्जीव होकर गिर पड़ा ।

अब गोपिकाओं की हिम्मत बँध गयी और कृष्ण को घेरकर उन्होंने उसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की । हे कृष्ण, आज तुम्हारी वजह से हम सुरक्षित हैं । वरना वह साँड़ न जाने हमारी क्या दुर्गति करता । तुमने उसका शूरता के साथ सामना किया और उस के दाँत खट्टे किये । तुम्हारा पराक्रम, बस देखते ही बना ! हम बहुत घबड़ा गयीं थीं । समझ में नहीं आता था, क्या करें ? तुम्हीं हमारे त्राता बनकर ठीक समय हाज़िर हुए ।

९.कृष्ण का आमंत्रण



इस प्रकार इधर वृन्दावन में श्रीकृष्ण केलि-क्रीडा में निमग्न थे, मगर उधर मथुरा में कंस के बुरे हाल थे, वह चिन्ता में डूबा हुआ था। कृष्ण के बारे में सुनकर उसका मन विकल हो गया। क्रमशः वह जीवित शव की भाँति बन गया। एक दिन उसने अपने सभाभवन में उग्रसेन, वसुदेव, सत्यक, अंधक, कंपक, दारुक, विपृथ, बभ्रुव तथा अन्य यदु एवं भाजवंशी प्रमुख व्यक्तियों को बुलवाकर उनसे कहा—

"आप सब मेधावी हैं, ज्ञानी हैं। किसी प्रकार की जटिल समस्या का हल ढूँढ़ सकते हैं। आप सब मेरे परम हितैषी हैं। फिर भी इस समय मुझे एक भारी ख़तरे में फँसे देखकर भी जाने क्यों आप मेरी उपेक्षा सी कर रहे हैं। नंदगोप का पुत्र कृष्ण मेरा निर्मूलन करने पर तुला हुअ है। उपेक्षित रोग की भाँति, वायु का संयोग प्राप् मेघखण्ड की तरह, तथा विषवृक्ष के जैसे दिन दिन उसका विकास हो रहा है। बहुत सोचक सिर खपाने पर भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि वह किस अंश को लेकर पैदा हुआ है लगता है उस में कोई देवांश है। क्योंकि उसव सारा चरित्र ही मानवातीत प्रतीत होता है। सु लीजिये, मैं उसकी सारी कहानी सुनाता हूँ।

इसके बाद कंस ने उन लोगों को कृष्ण सभी कार्योंका सविस्तार विवरण सुनाया। उस कैसे शैशव दशा में ही पूतना का वध किया, पे के बल रेंगने की उमर होने से पहले ही उस शकट को कैसे लात मारकर चकनाचूर कर दिय लड़खड़ाते कदमों से चलने की अवस्था में जुड़ साल वृक्षों में से पत्थर की ओखली खींचव वृक्षों को कैसे गिरा दिया—वगैरह करतूतें कह कहते कंस बोल उठा, "कहाँ तक उस करिश्मे गिना दूँ ? समय बीतते-बीतते उस कालिया का मर्दन किया; प्रलंब, धेनुक आदि संहार किया। अभी अभी कुछ दिन पहले उस अरिष्ट का वध किया। बच्चों की बात भगव जानें, पर क्या युवक भी ऐसे कार्य संपन्न क सकते हैं ? सात दिन तक मूसलाधार वर्षा हु तब एक पहाड़ को ही बड़ी आसानी से उठाव छत्र की भाँति पकड़े रहा वह ! यह उसका ए असाधारण कार्य ही उसकी विराट शक्ति परिचय देने के लिये पर्याप्त है। अन्य कार्यों



उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।"

यह सारा वृत्तान्त सुनकर कंस ने उन लोगों से कह कर और आगे कहा—

"अब राक्षस वीरों में केवल केशि ही बचा है हमारे पास। अगर वह भी कृष्ण के हाथों मर जाए तो फिर मेरी ही बारी आएगी। जो दूसरों को मारने का ही शौक रखता है, वह भला क्या मुझे छोड़ देगा ? कृष्ण के साथ बल-पराक्रम में लगभग उसी का सानी बलराम भी है। दरअसल नारद ने मुझे सच्ची बात बता दी है। देवकी ने उस दिन अर्ध-रात्रि के समय एक पुत्र को जन्म दिया था और इसी वसुदेव ने उस शिशु को ले जाकर नन्द गोप की पत्नी की बगल में रखा, और उसके गर्भ से उत्पन्न लड़की को उठाकर ले आया। उसे अपनी पत्नी के पास लिटा दिया था। वह लड़की भी मेरे हाथों से बचकर आसमान में उड़ गयी और 'विन्ध्य वासिनी' देवी बनकर बैठ गयी है। आज तक मेरे अत्यन्त हितैषी जैसा अभिनय करते हुए इस वसुदेव ने मेरे साथ कपट किया है। मैंने उसका जितना आदर किया, उससे कहीं अधिक मात्रा में मेरे साथ द्रोह किया है।"

इसके बाद वसुदेव की ओर मुड़कर कंस बोलने लगा, "मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूँ।तुम अपने पुत्र के हाथों मेरा वध कराकर उसे मथुरा का राजा बनाना चाहते हो। लेकिन तुम यह बात नहीं जानते—साक्षात् इन्द्र भी पृथ्वीपर उतर आये तो वे मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। यहीं पर तुम भ्रम में फँसे हो। तुम चक्रवर्ती वंश में पैदा हुए हो, बचपन से ही मेरे पिता की छत्रछाया में पले हो। मेरी बहन के साथ विवाह करके तुम समस्त यादवों के गुरुस्थान पर पहुँच गये हो। इतने लायक होते हुए भी तुम इतना नीच कर्म करने पर तुल गये हो। तुम्हारा पाप तुम्हारे साथ सदा लगा रहे, मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा। मैं ने आजतक बन्धु, मित्र और ब्राह्मणों की हत्या नहीं की है, भविष्य में भी नहीं करूँगा। तुम्हारे अपराध के कारण मैं तुमको मार भगा सकता हूँ, पर यह भी मैं करना नहीं चाहता। तुम खुद यहाँ से जाना चाहते हो, तो जा सकते हो। रहना चाहो, रह सकते हो।"

इसके बाद भोजवंशी अक्रूर को उद्देश्य कर



वह बोला, "मैं इस वर्ष अपने धनुष का एक महान् उत्सव मनाने जा रहा हूँ। उस में भाग लेने सुदूर देशों के राजा-महाराजा यहाँ पधारनेवाले हैं। अनेक दिनों तक उन्हें दावतें देनी पड़ेंगी। गोकुल से पर्याप्त मात्रा में दूध, दही, घी, जंगली शहद आदि मंगवाना पड़ेगा। इसलिये तुम गोकुल में जाकर ऐसा आदेश दे दो, जिससे वक्त पर ये चीज़ें यहाँ पहुँचायी जायँ। लौटते समय नन्दगोप और उस के परिवार को साथ लेते आओ। मेरे भानजे कृषण और बलराम को देखने मेरा जी तरस रहा है। सुना है—वे महान् बलशाली और पराक्रमी हैं। तुम उन से इस प्रकार बातें करो कि वे समझें कि मैं अपने सच्चे दिल से उन को देखने को तरस रहा हूँ। मेरे यहाँ दो ज़बरदस्त

पहलवान हैं। इनके साथ उन दोनों की कुश्ती लड़वाकर मैं उनके बल-पराक्रम की परीक्ष करूँगा। उन दोनों को तुम लाने में सफल होगे तो मैं समझूँगा कि तुमने मेरा बहुत बड़ा उपका किया है। वसुदेव शायद तुम्हारे कान भरने क प्रयत्न करेंगे, मगर तुम उनकी बातों में न आना तुम अभी, इसी वक्त गोकुल के लिये रवाना ह जाओ।"

कंस के परिवार में अनेक लोग कृष्ण क भगवान का अवतार मानते थे, अक्रूर भी उन्हीं स से एक था। कृष्ण को देख कर तर जाने क मौक़ा अपने को मिल रहा है, यह जानकर व मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर कंस बिदा लेकर उसी समय रथ पर सवार होकर व गोकुल के लिये चल पड़ा।

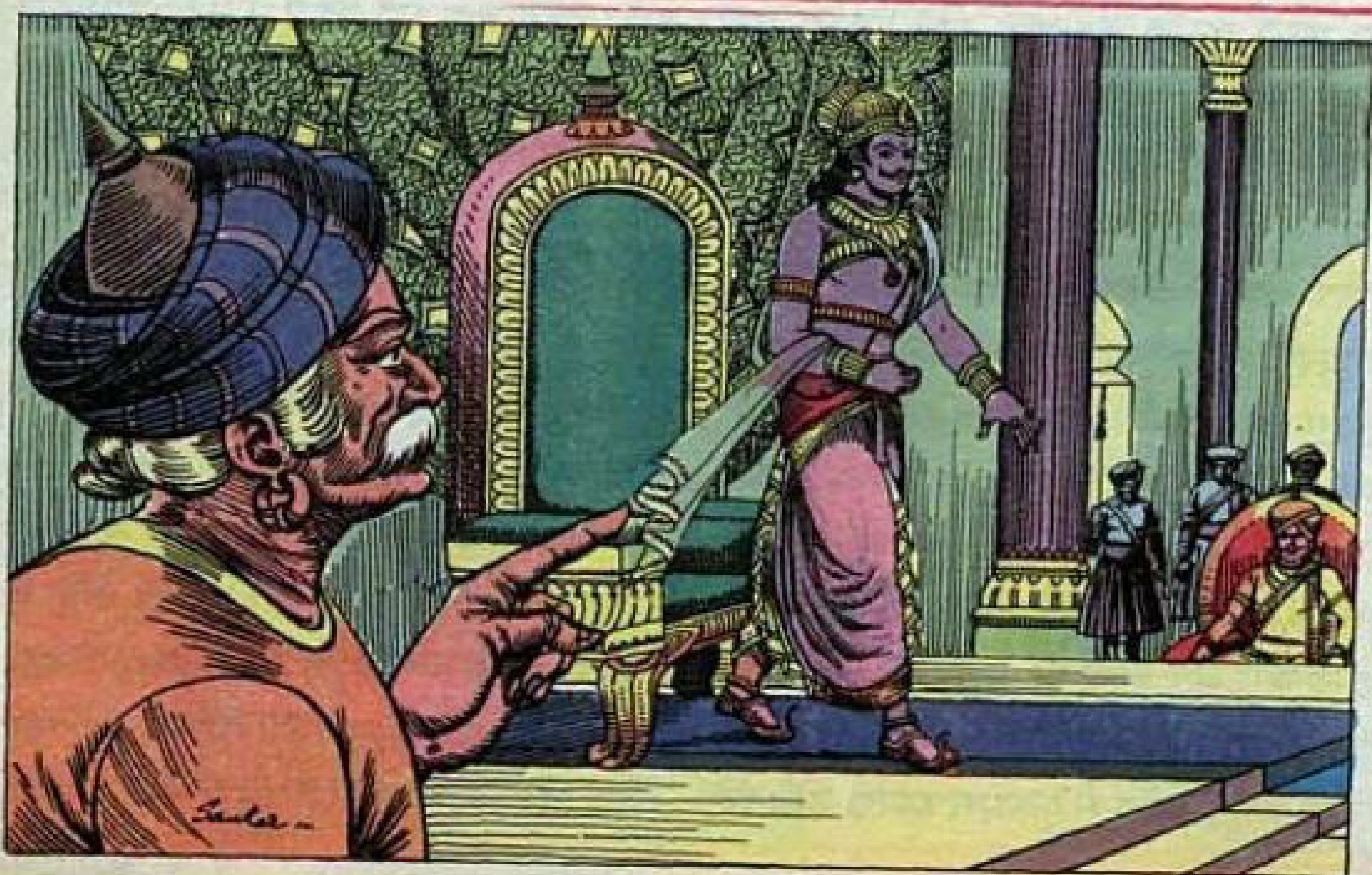
सभाभवन में कंस के द्वारा वसुदेव क अपमानजनक बातें सुनाने पर अधिकांश सभास मन ही मन बहुत दुखी हुए। मगर किसी ने कंस के विरुद्ध आवाज़ न उठायी। उन में सब से वयोवृद्ध अंधक नाम क यादव था, उससे चुप रहा नहीं गया निर्भयतापूर्वक आगे बढ़कर उसने कंस कहा—

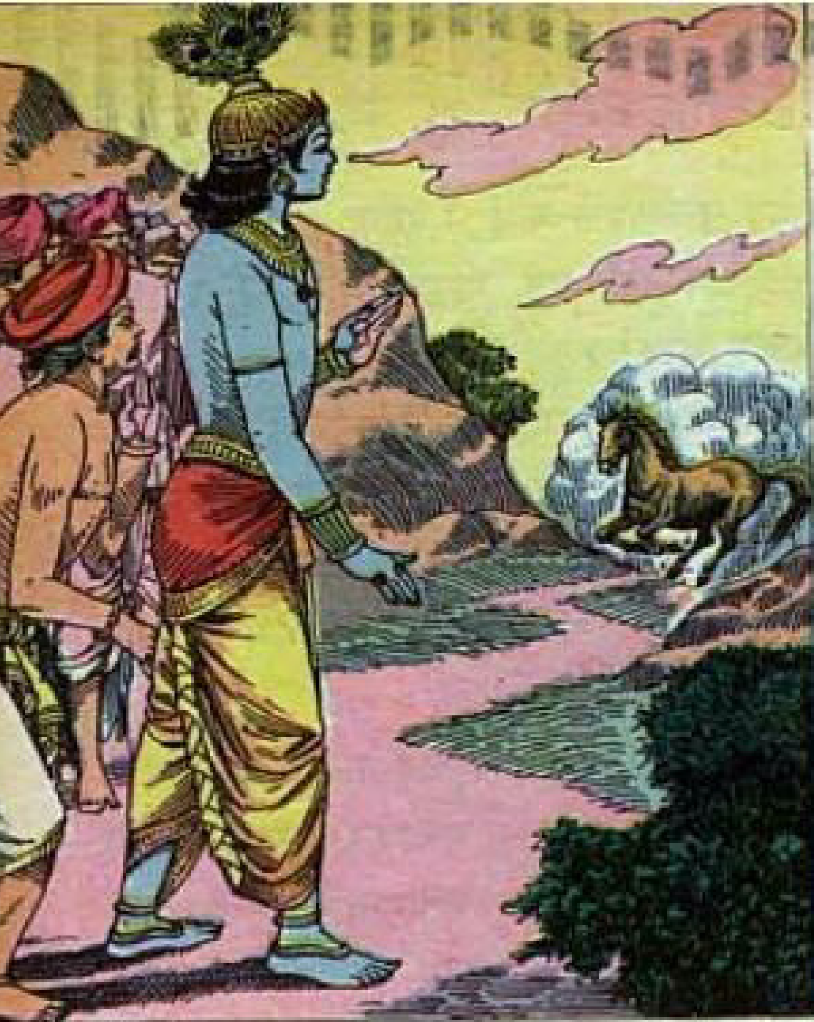
"कंस, तुमने अभी जो बातें कहीं, राजोचित नहीं हैं। थोड़ा भी सोचे बगैर ए बुज़ुर्ग व्यक्ति पर इस प्रकार दोषारोपण कर उसको लांछन लगाना नहीं। ऐसा व्यवहार क तुम अपने मातापिता और कुल को भी कल

लगा चुके हो। वसुदेव ने अपने पुत्र की रक्षा के हेतु उसे छिपाया, तो तुम उसपर दोषारोपण करते हो ? क्या तुम इस सत्य को नहीं जानते, कि अपने वंश की रक्षा के लिये माँ बाप नाना प्रकार की यातनाएँ झेलते हैं ? तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे लिये कितनी यातनाएँ झेली होंगी, तभी तो तुम इतने बड़े हो गये हो न ? तुम्हारा यह व्यवहार मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। तुम जैसे के साथ अपनी मैत्री का संबन्ध न तोड़कर तुम से चिपके रहना हमारी मूर्खता है। हम से कई गुना अक्रूर भाग्यवान है। कृष्ण के दर्शन कर के लौटनेवाले अक्रूर को देख हम सब लोग भी पवित्र बन जायेंगे। कृष्ण यदि यहाँ आयें तो तुम्हारी मौत निश्चित है। उसको यहाँ बुलाकर तुमने अपनी मृत्यु को ही बुलाया है। अब तुम्हारी मदद करनेवाला कोई न रहेगा। अच्छा होगा, यदि तुम इसी वक्त गोकुल में कृष्ण के पास जाकर उसकी करुणा प्राप्त करके बच जाओ।"

अंधक की सलाह सुनकर कंस असहनीय क्रोध में आया और उसी समय अपने आसन से उठकर सभाभवन त्यागकर चला गया। इस पर अन्य सभासद भी अपने अपने निवास को लौट गये।

अक्रूर के गोकुल पहुँचने के पूर्व ही कंस ने केशि नामक राक्षस को वृन्दावन में भेजा। केशि घोड़े का रूप धारण कर वृन्दावन में पहुँचा। वहाँ पर चरनेवाले पशुओं तथा गोपालकों का वह नाश करने लगा। उस भयंकर आकृतिवाले घोड़े को देखकर सारे गोकुलवासी डर गये। वह घोड़ा पशुओं को चीरकर उनका मांस खाता हुआ और

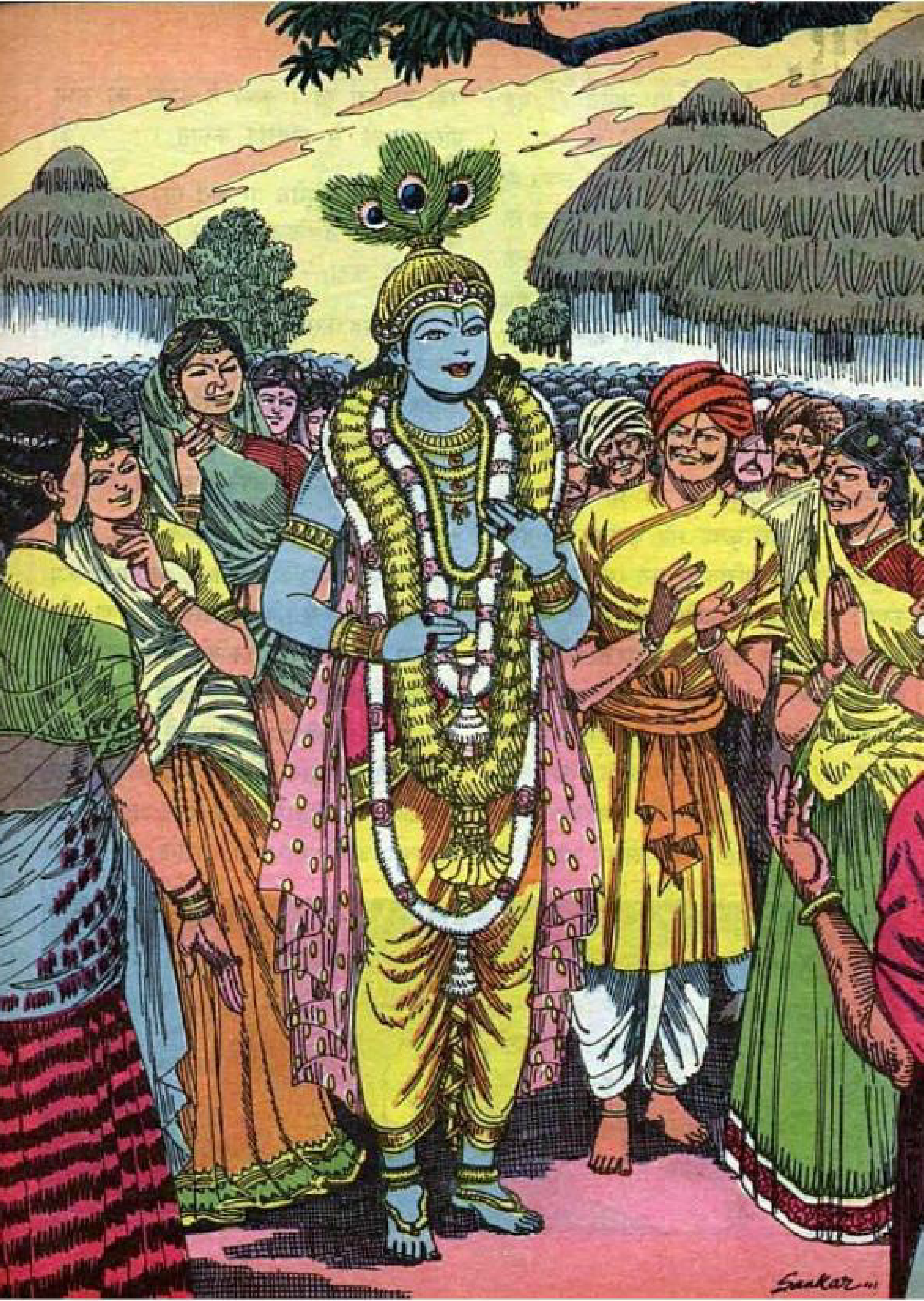




उनका खून पीता हुआ इतस्ततः विचरने लगा। इस प्रकार वन में चरनेवाले सभी पशुओं का उसने सर्वनाश किया। अब वह गोपकों के निवासों की ओर मुड़ा। दूर से ही उसको आते देख गोकुलवासी भयभीत हो कृष्ण के आश्रय में गये। कृष्ण ने उनको अभय प्रदान किया और खुद ज़ोर से तालियाँ बजाकर उसने केशि को भड़का दिया। इस आव्हान से घोड़ा उकसाया गया और कृष्ण को निहत्थे देख उसका उत्साह दुगुना हो उठा। अपना मुँह एक ओर फेरकर अपनी दाढ़ाओं को फैलाकर वह ज़ोर से हिनहिनाया और कृष्ण पर आक्रमण करने उद्यत हुआ। अपनी पिछली टाँगों के बल खड़े होकर अपनी अगली टाँगों से कृष्ण पर हमला करने का पवित्रा उसने भरा। उसकी टाँगें कृष्ण के शरीर पर उतरने से पहले ही कृष्ण विद्युत् गति से थोड़ा पीछे हट गया और उतरनेवाले घोड़े के मुँह में उसने अपना हाथ ठूँसकर उसकी जीभ कसकर पकड़ रखी।

फिर क्या था ? घोड़े की सारी उमंग धरी सी रह गयी। वह न तो कृष्ण की पकड़ से अपने को बचा सका न उसको काट ही सका। अंत में लाचार हो ज़मीन पर अपने पैर पटक पटक कर शिथिल हो गिर पड़ा। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। तब कृष्ण ने उसकी जीभ खींच डाली, उसका कंठ चीर डाला, उसके दाँत तोड़ दिये और उसकी बगल में मुके मार कर उसकी दारुण हत्या की।

केशि को मरा देख गोकुलवासियों ने आश्वस्त होकर गहरी साँस भरी। सब ने कृष्ण को घेरकर उस का अभिनन्दन किया। गोपियों ने पुष्पमाला पहना कर उसका कंठ भर दिया। उस समय नारद ने अदृश्य रूप में आकाश में रहकर और अपना नाम बताकर कृष्ण से कहा, "वत्स, आप जानते हैं कि मैं कलह-प्रिय व्यक्ति हूँ। इसलिये आपका यह युद्ध देखने में विशेष रूप से देवलोक से आया हूँ। आप ने यह जो पराक्रम दिखाया, वह इन्द्र और शिव के लिये ही संभव है, अन्यों के लिये नहीं। इन्द्र को भी केशि का सामना करना असंभव सा था। ऐसे राक्षस का आपने बड़ी सरलतापूर्वक संहार किया। इसका वध करने के कारण आप 'केशव



नाम से विशेष लोकप्रिय हो जायेंगे ।" यह कहकर नारद चले गये ।

इस बीच उत्तम अश्व जुते हुए रथपर सवार हो कहीं रुके बिना अक्रूर संध्या समय गोकुल के पास पहुँचा । सूर्यास्त हो चारों तरफ़ संध्याछाया फैल रही थी । अंधकार को तितर-बितर करते हुए चन्द्रोदय हुआ । गोकुल में सर्वत्र कोलाहल हो रहा था । सब लोग गोपों और गायों के नाम लेकर उन्हें पुकार रहे थे । दूध दुहने की आवाज़ें घरघर से आ रहीं थीं । उस कोलाहल से पूर्ण गोकुल के बीच अक्रूर का रथ आ पहुँचा और थोड़ी ही दूर खड़े कृष्ण और बलराम को देख अक्रूर अत्यंत आनन्दित हो झट रथ से उतरकर उनकी ओर बढ़ा । समीप पहुँचने पर अपना परिचय उन्हें देकर अक्रूर ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ कृष्ण के चरणों में प्रणाम किया । कृष्ण ने उस को अपने हाथों से उठाया, उस को आलिंगन कर के कुशल प्रश्न पूछे और कृष्ण-बलराम उसे अपने साथ घर ले गये ।

कृष्ण और बलराम से मिलकर अक्रूर को बड़ी प्रसन्नता हुई । कृष्ण ने अक्रूर को स परिवारवालों से परिचित कराया ।

अक्रूर के अनुरोध पर नन्द गोप आदि स बुजुर्ग गोपाल उसके पास आये । उन लोगों अक्रूर ने कहा—

"महाराज कंस ने अपने धनुष का एक उत्स मनाने का संकल्प किया है । आप सब स्वयं उ उत्सव में पधार कर अपने अपने शुल्क जमा क दीजिये । दावतों के लिये दूध, दही, मक्ख जंगली शहद वगैरह अपने साथ लेते आइये

इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये कंस अपने भानजे कृष्ण और बलराम को विशेष रू से कहला भेजा है । धनुष-उत्सव में कृष्ण औ बलराम की उपस्थिति उन को विशेष वांछनी है । उन दोनों को लाने की ज़िम्मेदारी उन्होंने मु पर सौंपी है । इसी विशेष कारण से मैं आज य आया हूँ । आप सब लोग रवाना हो जाइये, मग इन दोनों को मैं अभी, इसी वक्त अपने रथ बिठाकर अपने साथ ले जाऊँगा ।"

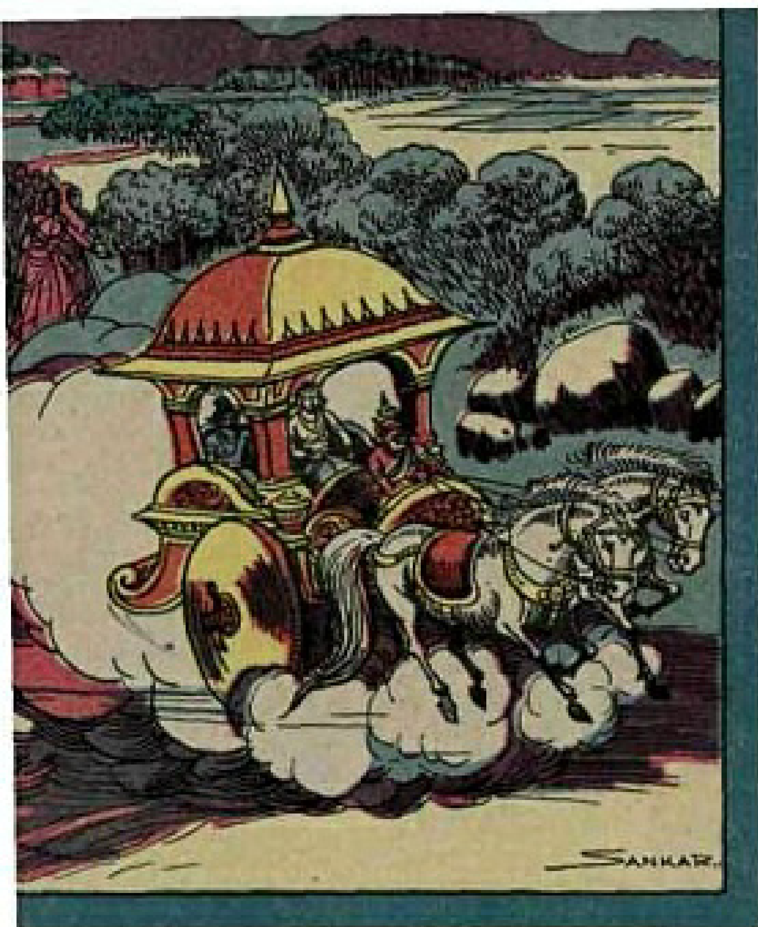




कृष्णावतार

उस दिन रात को अक्रूर ने बलराम और कृष्ण के साथ भरपूर भोजन किया। वे सब जब एक ही जगह लेटे हुए थे, तो उसने कहा—"बेटा, माँ के गर्भ से निकलते ही तुमने नाना कष्ट झेले। बड़े बड़े कार्य किये। अब इस प्रकार का जीवन काफी हो गया। अब तुम अपने वंश के लिए कुछ कीर्ति प्रतिष्ठा कमाओ। तुम्हारे पिता वसुदेव बहुत बड़े आदमी हैं, तुम दोनों लड़कों के होते हुए भी वह कंस से बड़े डरते हैं। उस दुष्ट से अपमानित हो रहे हैं। वे इस दुख में कराह रहे हैं कि उन्हें तुम्हें जंगलों में भेजना पड़ा। उनकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम्हारी माँ देवकी के दुख का तो कोई ठिकाना ही नहीं है। जो कोई उसके गर्भ से पैदा हुआ, कंस उनको लगातार मारता गया। उसने इतने बच्चों को जन्म दिया पर उसने एक भी लड़के को दूध न दिया। तुम इतने सुन्दर हो। पर क्या यह तुम्हारी माँ जानती है? उसके मातृत्व को सफल बनाने का भार तुम पर है। तुम्हारे जैसे लड़के के होते अगर वह इतने कष्ट उठा रही है, तो इससे अच्छी मौत ही है।"

१०. बलराम कृष्ण का मथुरा गमन

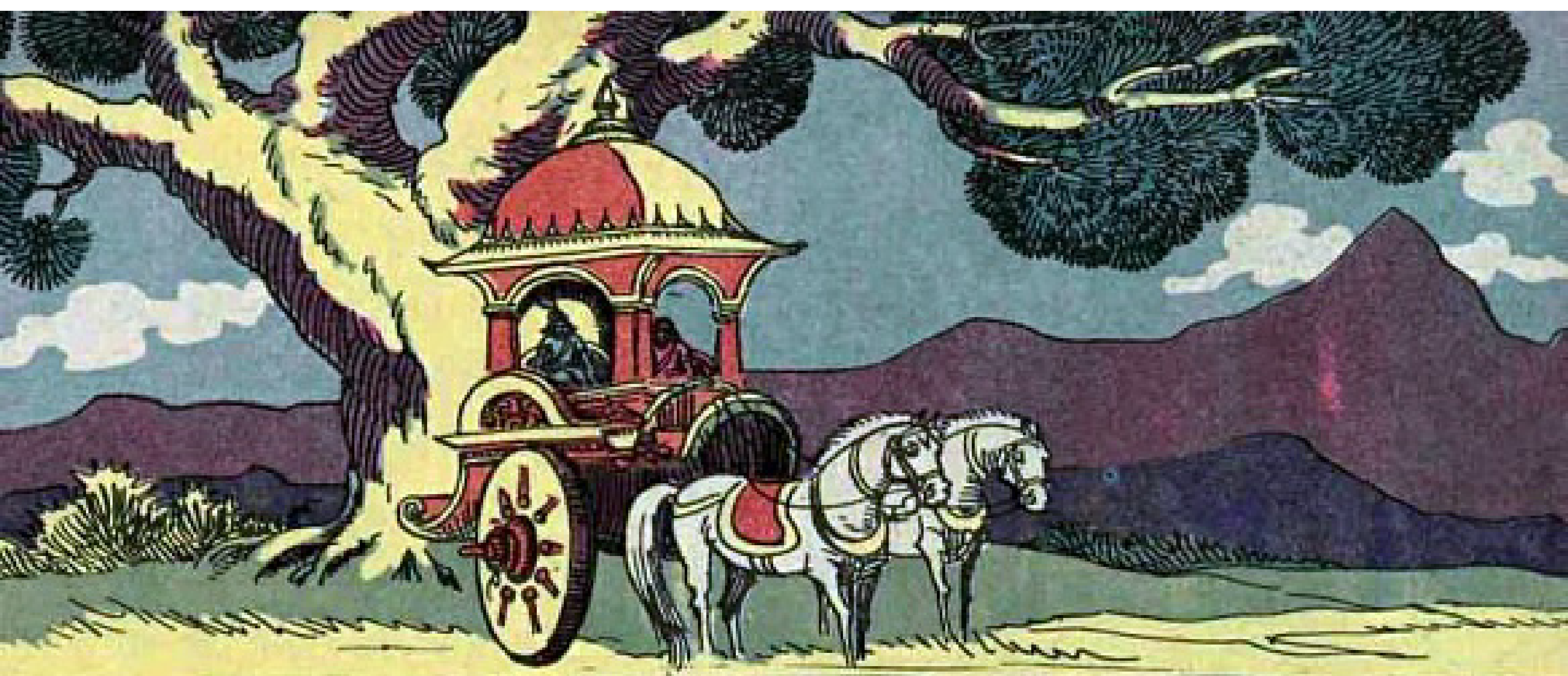


कृष्ण उसकी बातों का साराँश समझ गया। मथुरा नगर जाकर, कंस को मारकर, अपने माँ बाप देवकी और वसुदेव को अवश्य सुख पहुँचाना चाहता था।

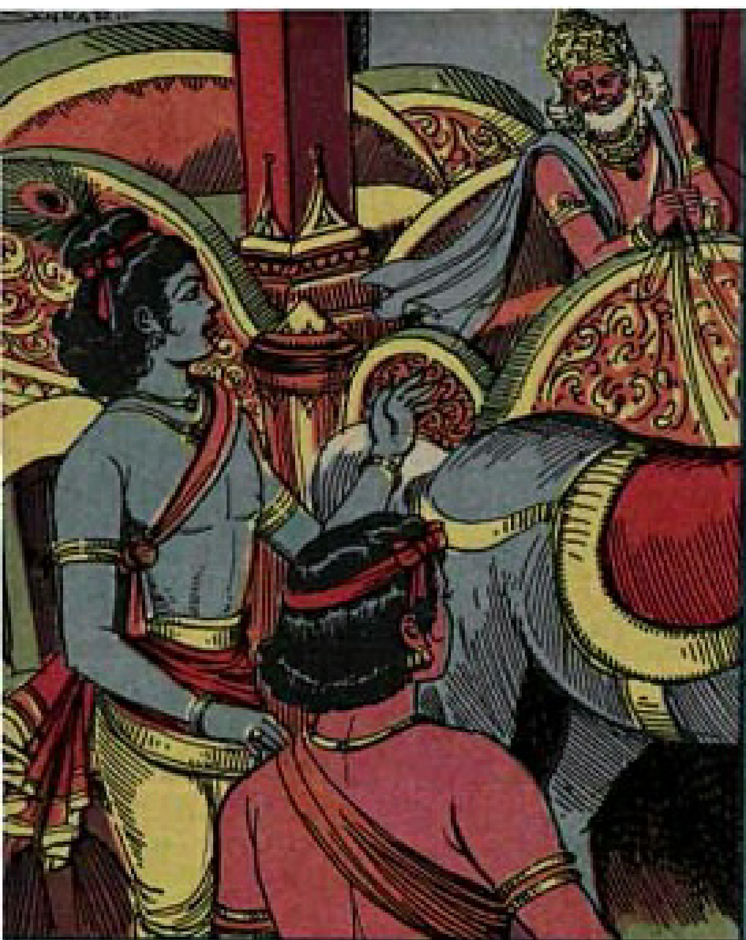
सवेरा हुआ। बलराम और कृष्ण नित्यकृत्य से निवृत्त होकर रथ पर सवार हुए। अक्रूर भी रथ चलाता मथुरा की ओर निकल पड़ा। कुछ गोपिकायें रथ के साथ साथ कुछ दूर गईं। कृष्ण का चला जाना उन्हें बिल्कुल न जंचा। कई ने अक्रूर को खूब बुरा भला कहा। कई और ने कहा—"अगर कल ही किसी राक्षस ने हम पर हमला किया, तो हमारी कौन रक्षा करेगा? जो हमारे लोग कृष्ण को यूँ जाने दे रहे हैं, क्या वे पगले नहीं हैं? जब वह तेजी से जाने लगे, तो वे रुक गईं और घर वापिस चली गईं।

दुपहर तक रथ चलता रहा। फिर वे एक कालिन्दी के किनारे कदम्ब वृक्ष की छाया में रुके। अक्रूर ने बलराम कृष्ण से कहा—"मैं नदी में स्नान करके, तर्पण करके, अभी आता हूँ। तब तक तुम रथ में रहो। इस बीच घोड़े भी कुछ घास खा लेंगे।" कहकर वह नदी में गया। फिर उसने डुबकी लगाई।

तब अक्रूर को पानी में पाताल दिखाई दिया। वहाँ वासुकी, कर्कोटक आदि श्रेष्ट नाग दिखाई दिये। बहुत ही सुन्दर रत्न मन्डप में हजार सिरोंवाला आदिशेष दिखाई दिया। उसका शरीर साफ था। सफेद था। सिमटा बैठा था। फण उठे हुए थे। उसकी जीभें बिजलियों की तरह चमक रही थीं। उसके अगल बगल में ओखल, हल, ताड़ के पेड़ के चिन्होंवाले झण्डे थे और उस आदिशेष पर काला, कमलों की तरह नयनोंवाला कृष्ण पीले कपड़े पहिने बैठा दिखाई दिया।



SANKAR



इस तरह दीखे कृष्ण की अक्रूर ने मन्त्रों से आराधना की। विविध अर्चना सामग्री से उसकी अर्चना की। फिर जब वह पानी से उठा, तो उसने रथ में बैठे बलराम और कृष्ण के देहों पर अपनी अर्चना सामग्री के चिन्ह देखे। अक्रूर यह देख और भी चकित हुआ। फिर उसने पानी में डुबकी लगाई। फिर उसने आदिशेष पर कृष्ण को बैठे देखा।

जब अक्रूर अपना अनुष्टान पूरा करके रथ के पास आया, तो कृष्ण ने कहा—"अक्रूर, तुमने बहुत देरी कर दी है। पाताल में शायद कोई आश्चर्य दिखाई दिया है? तुम्हारे मुँह को देखकर तो ऐसा ही लगता है।"

"भगवान, तुम्हारे पास होने के अतिरिक्त और कौन-सा आश्चर्य हो सकता है? तुम और तुम्हारा भाई जैसे यहाँ दिखाई दे रहे हो, वैसे पानी में भी दिखाई दिये। तुम्हारे वास्तविक रूप का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता। फिर मेरी क्या औकात है? मुझ पर प्रेम करके अनुग्रह करो। चलो अब चलें। कंस तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होगा। सूर्यास्त होने से पहिले पहुँचना है।" अक्रूर ने कहा।

रथ फिर चल पड़ा। सायंकाल के समय मथुरा नगर पहुँचा। कृष्ण ने हँसकर अक्रूर से कहा—"हमने कभी नगर नहीं देखा है, कंस को देखने तक हम सब्र नहीं कर सकते। इसलिए आओ, चारों ओर घूम आयें। अनुमति दो।"

अक्रूर ने उन्हें रथ से उतारकर कहा—"शायद तुम वसुदेव के घर जाना चाहो। पर वैसा न करना। यदि तुम बिना कंस को पहिले दिखाई दिये





उनको दिखाई दिये, तो कंस बड़ा नाराज होगा।" उनसे यह कहकर वह कंस के पास तेजी से यह कहने चला गया कि वह बलराम और कृष्ण को ले आया था।

बलराम और कृष्ण मथुरा नगर की वीथियों में नगर के आश्चर्यों को देखते आगे चल पड़े। जब वे इस प्रकार जा रहे थे, तो नगरवासी उनको देखकर तरह तरह ही बातें करने लगे।

कुछ दूर जाने के बाद बलराम और कृष्ण को रंगकार नाम का धोबी दिखाई दिया। वह तरह तरह के कपड़े तह लगाकर, गठ्ठर बनाकर ले जा रहा था।

"क्यों धोबी? हम राजा को देखने जा रहे हैं। राजमहल में जानेवालों को अच्छे अच्छे कपड़े पहिनकर जाना चाहिए न? तुम इन कपड़ों में से किसी अच्छे आदमी के अच्छे कपड़े दो।" कृष्ण ने कहा।

यह सुन धोबी को बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा—"जंगलों में पशुओं के बीच रहनेवालों को कंस महाराजा के कपड़ों की जरूरत आ पड़ी है? जानते हो, ये कपड़े कैसे हैं? दूर दूर के राजाओं ने इन्हें कंस महाराजा के पास उपहार में भेजे हैं। खरीदना भी चाहो, तो नहीं खरीद सकते, जाओ।"

कृष्ण को गुस्सा आ गया। उसने अपनी तलवार निकालकर, धोबी के गले पर मारी। वह नीचे गिरकर ठंडा हो गया। उसकी बहुत-सी पत्नियाँ थीं। वे भागी भागी आईं उन्होंने इसकी खबर राज नगर में और सब को दी।

कृष्ण ने कपड़ों का गठ्ठर खोला। उनमें से पीले रंग के कपड़े उसने ले लिये, नीले रंग के कपड़े बलराम को दे दिये। बाकी में से उसने कुछ को वहाँ खड़े



अच्छे फूल चुनकर दिये। फूल मालाओं को जब उन्होंने सिर पर, गले पर डाला, तो वे बड़े विचित्र से लगे।

राजमार्ग से जाते जाते उनको एक कुबड़ी दिखाई दी। उसके हाथ में एक पात्र था, जिसमें से सुन्दर गन्ध आ रही थी। कृष्ण ने उसके पास आकर कहा, उसके मुँह-का परदा हटाकर उसको देखकर कृष्ण ने पूछा—"यह सुगन्धित द्रव्य किसके लिए ले जा रहे हो?"

"कंस महाराज स्नान करके इस चन्दन के लिए प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अगर कोई और यह चन्दन उनके लिए तैयार करे, तो उनको यह नहीं भाता है। मुझे ही इसे बनाना पड़ता है, तभी वे लगाते हैं। तुम्हें देखकर न मालूम क्यों मुझे यह सब बताने की सूझी। नहीं तो मेरे पास एक घड़ी भी समय नहीं है। यह राजा के स्नान का समय है।"

"हम दूर देश से आये हुए मल्ल हैं। हम तुम्हारे राजा को, राज्य को और धनुष की होनेवाली पूजा को देखकर सन्तोष करने आये हैं। तुमने अपना बड़प्पन तो बखान दिया। पर हम केवल

लोगों को देते हुए कहा—"घबराओ मत। पहिन लो।" बाकी को उसने जला दिये। उस धोबी के घर को भी खाक कर दिया। और आगे आगे चलते गये।

वहाँ उनको गणक नाम का मालायें बनानेवाला दिखाई दिया। कृष्ण ने उससे बढ़िया फूल माँगे। उसने बलराम और कृष्ण को देखकर सोचा कि शायद वे कोई सिद्ध थे, या यक्ष थे। उसने उनको नमस्कार करके कहा—"ले लो, ये सब फूल तुम्हारे ही हैं।" कहकर उसने अच्छे



सुनकर ही कैसे तुम्हारी सराहना करें? अगर तुमने उस पात्र का चन्दन दिया तो हम भी इसे लगाकर, तुम्हारी प्रशंसा करके राजा के दरबार में कुछ बन ठनकर बैठेंगे।" कृष्ण ने कहा।

यह सुनकर वह हँसी, उसने कहा—"ले लो।" उसने अपने पात्र का चन्दन दे दिया। कृष्ण ने कुछ चन्दन बलराम को दिया। फिर जितने चन्दन की उसे जरूरत थी, उसने उसे अपने शरीर पर पोत लिया। जो कुछ बचा, उसने वहाँ खड़े बच्चों को दे दिया। उसने उस कुबड़ी को साधारण स्त्री बना देना चाहा। इसलिए उसने उस कुबड़ी के पैर के अंगूठे को अपने अंगूठे से दबाया और अपने हाथ की एक अंगुली से उसका सिर उठाया। तुरत उसका रूप निखर आया। उसके शरीर के मोड़ सीधे हो गये। उसकी कमर पतली हो गई। पीठ सीधी हो गई। देह लम्बी हो गई। वह अपने को देख फूली न समाई। हँसते हुए कृष्ण को देखकर उसने कहा—"तुम वह महानुभाव हो, जिसने मेरा बड़ा उपकार किया है। हमारे घर आकर हमें धन्य करो। अगर तुमने मुझे छोड़कर जाना चाहा, तो मैं नहीं सुनूँगी।" कृष्ण को अपने हाथ से पकड़कर उसने कहा।

"इस समय मुझे बड़ा काम है। फिर कभी आऊँगा। तुम सोच लो कि तुम मेरी ही हो।" कहकर कृष्ण ने उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया और बलराम के साथ आगे बढ़ गया। न उन्होंने अपने उद्देश्यों को किसी को बताया, न कुछ और ही दिखाया। वे मामूली ग्वालों की तरह चलते चलते कंस के महल के द्वार के पास पहुँचे। वहाँ

बड़ा शोर शरावा हो रहा था। राजाओं के भेजे हुए उपहार, हाथी, घोड़े, रथ और सुन्दर वस्तु हजारों की संख्या में वहाँ उतारे जा रहे थे।

अन्दर आयुधागार था। उसे सोने और बड़ी बड़ी मणियों से सुन्दर बनाया गया था। कई राजा उसे देखने आये थे। असंख्य सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे।

"कंस महाराजा का धनुष क्या यहीं रखा गया है? हम उसे देखने बड़ी दूर से आये हैं। कहाँ है? क्या हम उसे देख सकते हैं?" जब बलराम और कृष्ण ने यूँ नादानी से पूछा, तो सैनिक उनको वहाँ ले गये जहाँ धनुष रखा था। वह बड़ा धनुष था। तक्षक के शरीर की तरह था।

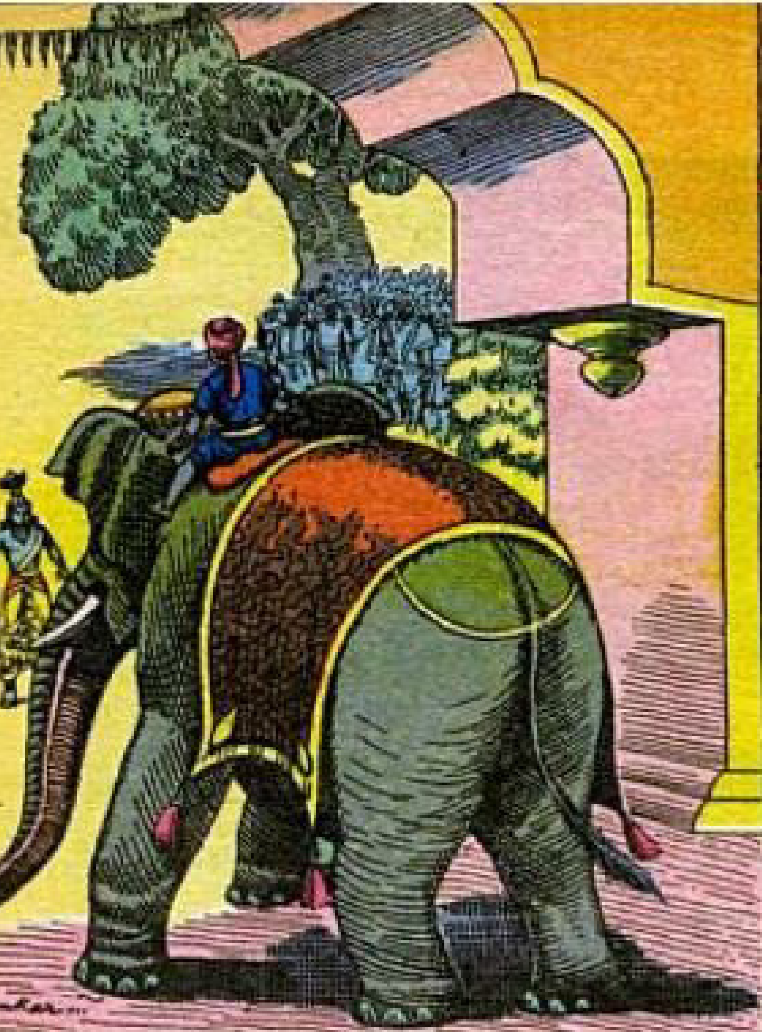
उसे देख कृष्ण ने कहा—"कहा जाता है, इस पर बाण चढ़ाना न देवताओं के लिए सम्भव है, न दानवों के लिए ही। सच क्या है, जरा यह तो देखें।" कहकर उसने धनुष उठाया और धीमे से उसकी प्रत्यन्चा खींची। ऐसा करने से उससे जो ध्वनि निकली उससे सारी दिशायें प्रतिध्वनि हो उठीं। वहाँ खड़े लोग चकित होकर देख रहे थे कि कृष्ण ने उसको फड़ाक से तोड़ दिया। जिसको लेकर बड़ा उत्सव होने जा रहा था, वह टुकड़े टुकड़े हो गया। कृष्ण यूँ लोगों में खिसक गया, जैसे उसे कुछ मालूम ही न हो और आयुधागार से बाहर निकल आया और सैनिक एक से एक बढ़कर कंस के अन्तःपुर में भागे भागे गये और जो कुछ हुआ था, उसे दबी जबान में कंस को बताया।





धनुष तोड़कर कृष्ण-बलराम शस्त्रागार से चुपके से खिसक तो गये, मगर जब वहाँ के भटों ने टूटा धनुष देखा तो उनके छक्के छूट गये। थोड़ी ही देर में वहाँ कोलाहल सा मच गया। मगर कुछ मुस्तैद राजभटों ने कोलाहल पर काबू पाया। जहाँ कोलाहल शुरू हो रहा था वहाँ के लोगों को उन्होंने कुछ बहाना बनाकर पहले शस्त्रागार से बाहर निकाला। और बाद में शस्त्रागार के बाकी हिस्से भी उन्होंने बड़ी चतुराई से खाली करवाये; शस्त्रागार का प्रमुख दरवाजा बंद करवाया और तब धनुष टूटने की खबर कंस को देने के लिए कुछ राजभट राजमहल की ओर रवाना हुए।

शस्त्रागार के भटों ने प्रवेश कर कंस को सूचित किया कि उसका धनुष टूट गया है, तब कंस को ऐसा अनुभव हुआ—मानो उसकी रीढ़ ही टूट गयी है। वह एकदम गहरी चिन्ता में डूब गया और उत्सव का प्रबंध स्वयं देखने चल पड़ा। एक सुंदर मंच का आयोजन करके राजा, मंत्री, बाहर से आये हुए राजा, राजा के रिश्तेदार, अधिकारी, प्रतिष्ठित नागरिक तथा विलासिनियाँ - इन सब के लिये उसपर उचित आसन बनाये गये थे और आसनों पर चढ़ने के लिए विविध सोपान बिठाये गये थे। सर्वत्र नयनाभिराम शिल्प, पर्दे व तोरण अलंकृत किये गये थे। यथास्थान अलंकार, धूप और पुष्प व्यवस्थित रूप में सजाये गये थे। इन सब का निरीक्षण करके और कर्मचारियों को आवश्यक सूचनाएँ देकर कंस अपने महल में लौट आया। इसके बाद चाणूर और मुष्टिक नामक अपने दो मल्लयोद्धाओं को



बुलाकर उसने समझाया, "सुनो, मल्लयुद्ध में तुम दोनों का सानी इस दुनियाभर में कोई भी नहीं है। बलराम और कृष्ण नाम के दो लड़के हैं, जो आज तक केवल वनों में ही भटकते रहे। उनमें साहस, पराक्रम और शौर्य नाममात्र भी नहीं है। जब वे तुम से सामना करने आयेंगे, तब तुम उन के साथ ज़्यादा देर तक जूझो मत। एक ही पेंच में अगर तुम उनका काम तमाम कर दोगे तो मुझे बड़ी ही प्र:न्नता होगी।"

राजा की बात सुनकर दोनों मल्ल बड़ी प्रसन्नतासे बोले, "प्रभु, हमें विस्तार से बताने की ज़रूरत नहीं है। सामने आते ही हम उन दोनों लड़कों को मसल डालेंगे। हमारे लिये क्या यह कोई बड़ा काम है ?" यह कहकर उन मल्लयोद्धाओं ने ज़ोर से अपने ताल ठोंके और फिर हुँकार भरते हुए अपने निवास को लौट पड़े।

इतना करने पर भी कंस को किसी प्रकार चैन नहीं आ रहा था। उस को चाणूर और मुष्टिक की ताकत पर पूरा भरोसा था। फिर भी अब उसे शकट, केशी वगैरह की याद आयी। कृष्ण-बलराम से अगर चाणूर मुष्टिक ने मात खायी तो ? वैसे शकट-केशी पर भी तो उसको पूरा भरोसा था। अब वह सोचने लगा कि चाणूर मुष्टिक से अगर बात न बनी तो और एक बाण तैयार रखना चाहिए। और अचानक उसे याद आयी महाकाय हाथी कुवलयापीड की !

इसके उपरान्त कंस ने महामात्रु नामक एक महावत को बुलाकर समझाया, "तुम मेरे अत्यंत निकट मित्र हो। तुम से इस वक्त एक ख़ास काम लेना है। वसुदेव के पुत्र अत्यन्त दुष्ट हैं लेकिन बलवान भी हैं। इस समय वे हमारे नगर में पधारे हुए हैं। तुम कल सब से पहले ब्रह्ममूहूर्त में ही कुवलयापीड़ हाथी के साथ राजमहल के द्वार पर तैयार रहो। ज्यों ही वे दोनों द्वार के पास आने लगेंगे तो कुवलयपीड़ को उनपर उकसा दो। कुवलयापीड़ उनकी हड्डी-पसली तोड़ देगा।"

कंस के पास बहुत से बड़े बड़े हाथी थे। मगर उनमें कुवलयापीड नाम का हाथी ज़्यादा ही विशालकाय था। उसकी सूरत भी बड़ी डरावनी थी। उसकी सूँड और दाँत विकराल थे। उसकी चिंघाड से सारा पीलखाना कँपकपा उठता था। महामात्रु कुशल महावत था। कुवलयापीड़ को

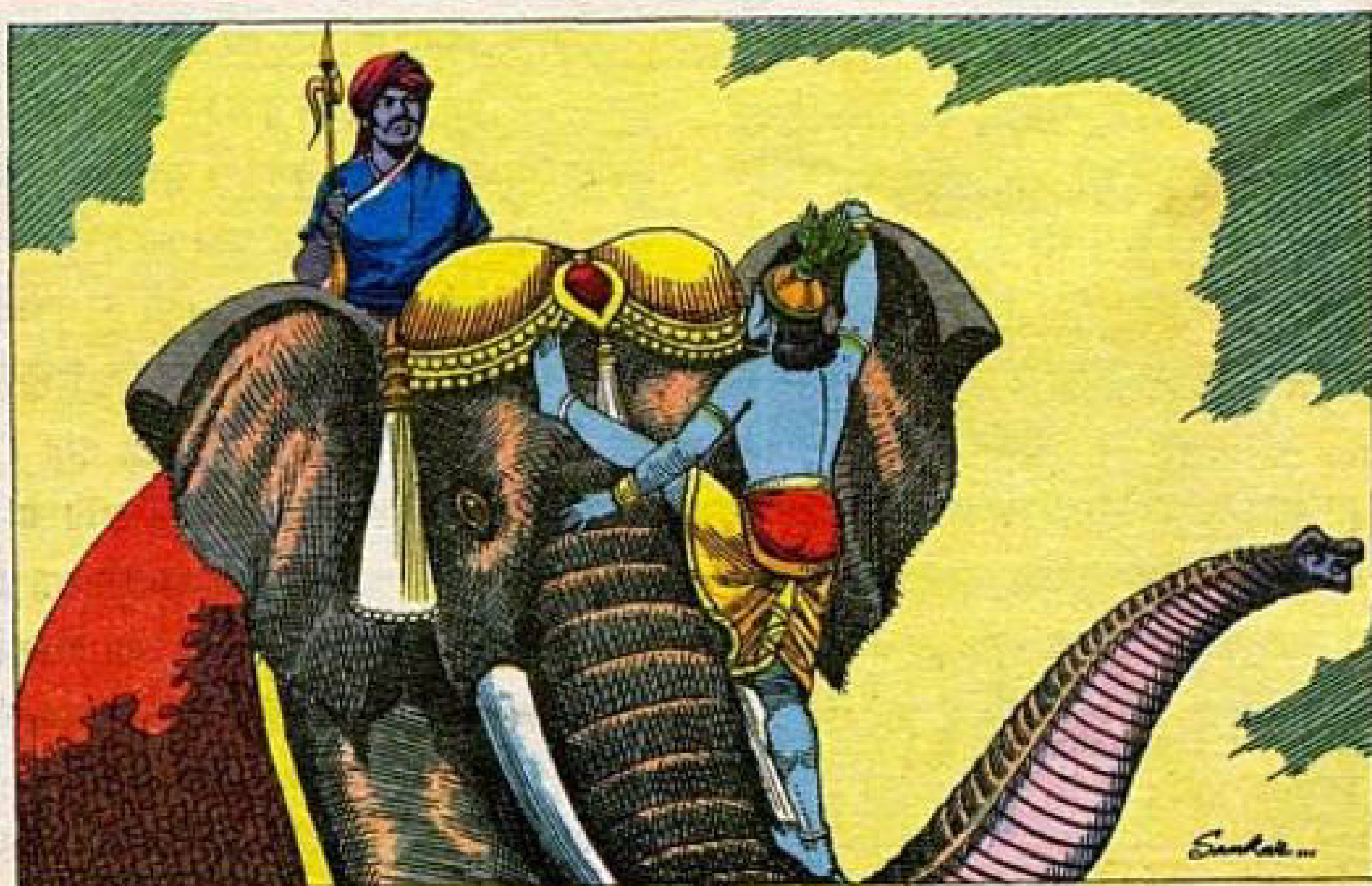
वह बड़ी सहजता से काबू में रखता था। महामात्रु अब कुवलयापीड की सेवा में लग गया। उसने कुवलयापीड़ को इसलिए मद्य भी पिलाया कि सबेरे वह पूरे ज़ोर से कृष्ण पर टूट पड़ सके।

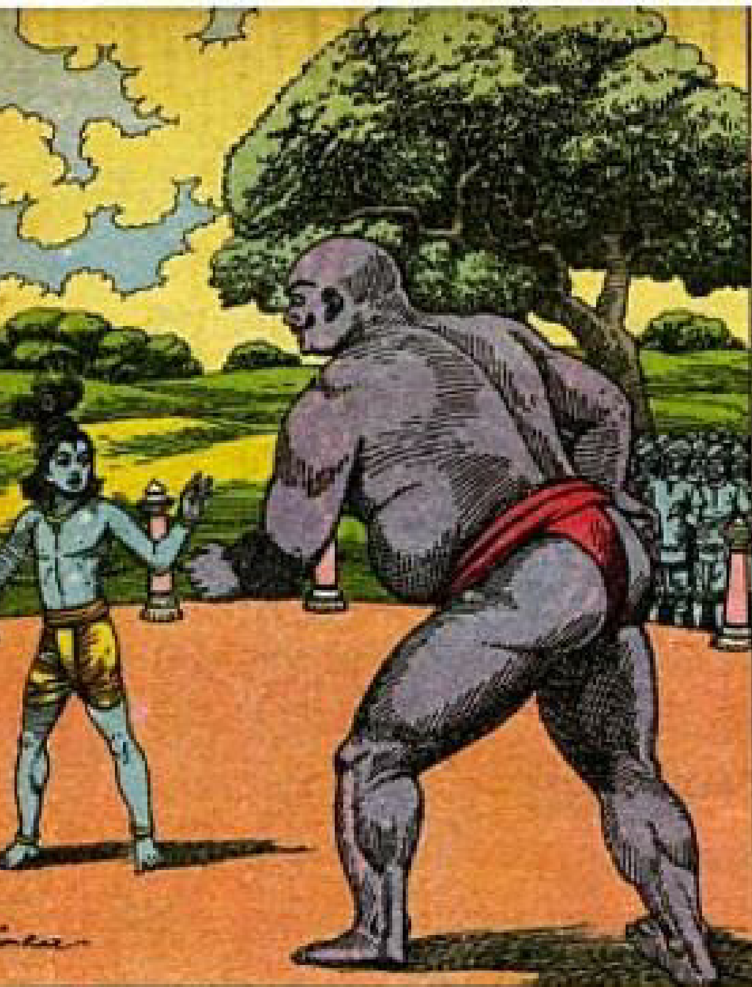
राजा के आदेश के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग सभास्थान पर आकर अपने अपने स्थान पर बैठ गये। वे सब बड़ी ही उत्सुकता से बलराम और कृष्ण के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कंस एक ऊँचे सुवर्ण आसन पर विराजमान था। उसने श्वेतछत्र तथा मोतियों के आभूषण धारण किये थे। श्वेतछत्र तथा श्वेतछत्रधारिणी विलासिनियों द्वारा चँवर डुलवाते हुए वह चंद्रमा जैसा शोभित हो रहा था।

चाणूर और मुष्टिक मत्त हाथियों की भाँति रंगस्थल पर प्रवेश करके कंस के सामने खड़े हो गये। महामात्रु भी कुवलयापीड़ पर सवार हो आ पहुँचा और द्वार के समीप हाथी को रोककर बलराम और कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी ही देर में कृष्ण और बलराम द्वार के समीप आ पहुँचे। सभा में उपस्थित सब लोगों ने उनकी ओर अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखा। वे दोनों अत्यन्त निश्चिन्त और निश्चल दिखाई दे रहे थे। द्वार के समीप उन को देखते ही वाद्यवृन्द के नाद और प्रेक्षकों की हर्षध्वनियाँ आकाश में प्रतिध्वनित हो उठीं। उस कोलाहल के बीच महामात्रु ने कुवलयापीड़ को उनपर उकसाया।

यह देखकर बलराम की ओर देख मन्दहास करते हुए कृष्ण बोला, "भैया देखो, कंस ने हमारा संहार करने के लिये एक मत्त हाथी को तैयार कर रखा है। बेचारा यह भी नहीं जानता





कि वह खुद मौत के जबड़े में फँसा हुआ है। तुम मुझे सावधानी से देखते रहो।" इतना कहकर कृष्ण आगे बढ़ा।

विशाल दन्तवाले, भयंकर सूँड को उठाकर पृथ्वी को कंपा देते हुए आगे कदम बढाने वाले उस रौद्र रूपधारी हाथी को महामात्रु ने और आगे बढ़ाया।

कृष्ण ने कुवलयापीड़ के साथ युद्ध करने के बहाने अपने बल का प्रदर्शन और लोगों का थोड़ा मनोरंजन करने के बहाने प्रारम्भ में हाथी को अपने वक्ष पर सूँड़ से प्रहार करने दिया। इसके बाद उछलकर वह उसके दाँतों पर पैर रखकर खड़ा हो गया। अपने बायें पैर से उसने हाथी के कुम्भस्थल पर लात मार दी और फिर उसकी पीठ पर जा बैठा। हाथी ने अपनी सूँड़ पीछे की ओर फैला दी तब उसे पकड़कर कृष्ण ज़मीनपर कूद पड़ा। उसने अपनी मुठ्ठियाँ कसकर हाथी की बगल में प्रहार किये। इसपर हाथी पीछे मुड़ा, तब कृष्ण उसके पैरों के नीचे से पीछे गया और उस की पूँछ पकड़कर उसने हाथी को गोल चक्कर घुमाया। हाथी नीचे गिर पड़ा, मगर उसने झट उठकर अत्यंत क्रोध में आकर सूँड़ से कृष्ण पर प्रहार किया, दाँतों से उसे चुभोया। अब कृष्ण ने हाथी का संहार करने का निश्चय किया और उछलकर उसके चेहरेपर लत्ताप्रहार किया। फिर ज़बरदस्ती उसका एक दाँत उखाडकर उसीसे हाथी का सिर फोड़ने लगा। शीघ्र ही धराशायी हो कुवलयापीड़ ने दम तोड़ दिया। इसके बाद नीचे गिरे हुए महावत का भी उसी दाँत से सिर फोड़कर, उसको भी मार डाला।

हाथी के हमले से कृष्ण की देह से खून बह उठा। उसी स्थिति में अपने हाथ में वह दाँत लिये अत्यन्त भयंकराकृति में कृष्ण ने सभा-भवन में प्रवेश किया। कृष्ण को देख कंस क्रोध से काँप उठा; फिर उसने चाणूर को युद्ध करने का संकेत किया। इसी प्रकार मुष्टिक को भी बलराम से युद्ध करने को उसने उकसाया।

चाणूर और मुष्टिक आंध्र के निवासी थे। उन्हें देखकर ही मत्त गजों की याद आती थी। उन्हें इस बात का बड़ा अभिमान था कि दुनिया में कोई भी उन्हें पराजित करने की हस्ति नहीं रखता था। चाणूर कृष्ण के पास जाकर व्यंग्य भरे क्रोध से बोला, "तुमने गायें चरानेवाले बच्चों को डराकर

बड़ी ख्याति अर्जित की है। लेकिन आज तुम मेरे सामने हो, मेरे हाथ से बच नहीं सकोगे। महाराजा की प्रशंसा पाने योग्य रीति से मैं अभी तुम को काल किंकरों के हाथों में समर्पित कर देता हूँ।"

कृष्ण बड़ी सब्र से बोला, "बेचारा कंस तुमपर बड़ी बड़ी आशाएँ लेकर बैठा है; इसलिये तुम अपनी सारी शक्ति का, अपने सारे कौशल्य का भरपूर प्रयोग करो। बेकार बातें बनाने से क्या फायदा ?" यह कहकर कृष्णने ताल ठोंके।

इसपर चाणूर कृष्ण से जूझ पड़ा। सभा में उपस्थित सभी यादव कृष्ण को लेकर बहुत चिन्तित हुए। वे आपस में विचार विनिमय करने लगे—"पर्वत जैसे चाणूर और बालक कृष्ण के बीच मल्लयुद्ध कैसा ? यह तो घोर अन्याय है। यहाँ जो बुज़ुर्ग बैठे हैं, क्या उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है ? और यह मल्लयुद्ध का सही तरीका भी नहीं है। मल्लयुद्ध के समय योद्धाओं के सहायक उनके साथ रहकर थकावट के समय उनका उपचार करते हैं। कुशलता और हबीपन के बीच फरक तो परखना होगा। अब ज़रूरत महसूस होने पर बुज़ुर्गों को युद्ध रोक देना चाहिये। यह तो मनोरंजन का कार्यक्रम है, शत्रुओं के बीच युद्ध तो नहीं। जो कुछ अब तक हुआ, बस ज़्यादा ही है। अब राजा के द्वारा दोनों को बुलाकर युद्ध रुकवाकर उचित रूप में उनका सत्कार करना उत्तम होगा।"



ये बातें सुनकर कृष्ण उन से बोला, "मुझे इसी प्रकार लड़ने दीजिये। मनोबल, पराक्रम, सहनशीलता, उत्साह तथा विजय का प्रदर्शन करनेवाले योद्धा के लिये लंबाई, मोटापन तथा उमर से क्या मतलब है ? मैं उसका वध करने का विचार रखता हूँ। आप लोगों को मैं प्रसन्न करूँगा। आप चुपचाप सब देखते रहिये। यह चाणूर क्रूर देश का निवासी है, अनेक मल्ल-योद्धाओं का इसने संहार किया है। इसलिये मैं इसका वध करके यश का भागी बन जाऊँगा।" यह कहकर कृष्ण ने चाणूर के साथ युद्ध प्रारंभ किया।

उस युद्ध में मल्लयुद्ध प्रवीण चाणूर से बढ़कर कृष्णने ही अधिक कुशलता दिखाई दोनों एक दूसरे को झुकाते, उछलते, ढकेलते,



झुकते, दबते, पार्श्व की ओर हटते देर तक अद्भुत रीति से युद्ध करते रहे । पीठों व सिरों की टकराहट तथा मुष्टिघातों के समय बड़ी ध्वनियाँ हुआ करती थीं । एक दूसरे को हाथों, पावों से मारते, दाँतों व नाखूनों से खरोंचते लड़नेवाले वे दृश्य दर्शकों को भयंकर प्रतीत हो रहे थे ।

मगर सब प्रकार के दाँव-पेचों में कृष्ण की कुशलता ही सराहनीय रही । इसपर दर्शकों को हर्ष-नाद करते देख क्रुद्ध होकर कंस ने अपने हाथ का इस प्रकार संकेत किया, कि मानो उसका अर्थ था—'हर्षनाद रोक दो ।' कृष्ण ने थोड़ी देर अपने प्रतिभा का इस प्रकार परिचय देने के बाद चाणूर का अंत करने का निश्चय किया । चाणूर भी युद्ध करते थक कर शिथिल हो चुका था; दुर्बल हो गया था । उस हालत में कृष्ण ने उछलकर उसके सिरपर ज़ोर से अपनी मुट्ठि का प्रहार किया, फिर एक बार उछलकर अपने घुटने से उसके वक्ष पर मार दिया । इसपर चाणूर की आँखें निकल आयीं । रक्त उगलते हुए वह गिर पड़ा और उसके प्राणपखेरू उड़ गये ।

इस बीच बलराम ने भी मुष्टिक का वध कर डाला । दोनों मल्लयोद्धाओं का अन्त करके बलराम और कृष्ण विजयी होकर रंगस्थल पर खड़े हो गये । उन दोनों ने कंस की ओर जो दृष्टि प्रसारित की और कंस के चेहरे पर जो क्रूरता नाच उठी, उसे देख नंद आदि गोप भयकंपित एवं आतंकित हो मौन रह गये ।

देवकी ने आँठवीं बार जिस पुत्र को जन्म देकर गोकुल भेज दिया था, वह चाणूर के हाथों कहीं प्राण खो बैठे, इस भय से देवकी देवी तड़पती रही । उसका मन इस विचार से व्याकुल था, कि लम्बे अरसे के बाद एक ही बार दर्शन देकर थोड़ी ही देर बाद अपने प्राणों से वंचित हो जाएगा । मगर चाणूर का संहार करनेवाले अपने पुत्र के शौर्य की वार्ता सुन उसकी आँखों से अब आनन्दाश्रु झरने लगे । वसुदेव की प्रसन्नता की भी कोई सीमा न रही ।

मगर इधर कंस के चेहरे पर से पसीना छूटने लगा । असहनीय क्रोध के मारे उसका शरीर काँपने लगा । वह गहरी साँसें भरने लगा । उसकी आँखों से अंगार बरसने लगा । उसने एक बार चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ायी । फिर अपने सेवकों को बुलाकर आदेश दिया—"इन दोनों लड़कों को



ले जाकर नगर के बाहर छोड़ आओ। नंदगोप को हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहनकर बन्दी बना लो; और बाकी गोपकों का शिरच्छेद कर डालो। मेरे राज्य में जहाँ कहीं गोपक दिखाई दें, उसे पकड़कर ऐसा दण्ड दो, जैसे चोर डाकुओं को दिया जाता है। उनकी सारी संपत्ति लूटकर ख़ज़ाने में भर्ती कर लो। वसुदेव को भी कठिन दण्ड दो।"

वह हुक्म सुनकर सब के चेहरे पीले पड़ गये। पुनः शोकग्रस्त हो देवकी बेहोश हो गयी।

कृष्ण भी अपने माता-पिता की दीन स्थिति, बन्धु-मित्रों की व्यथा, तथा सभासदों की असहाय दशा देखकर क्रोधावेश में आ गया। विद्युत्गति से वह सीढ़ियाँ चढ़कर सिंहासन पर आरूढ कंस के पास जा पहुँचा। सभासदों को कृष्ण सीढ़ियाँ पार करते हुए दिखाई नहीं दिया! अभी एक क्षण पूर्व वह रंगस्थल में था और अभी दूसरे क्षण वह कंसके सिंहासन के निकट था!

कृष्ण ने कंस के मुकुट पर इतने ज़ोर से लात मारी कि, उस में जटित मणि बिखर गये। फिर उसने कंस का जूड़ा पकड़ उसका सिर झुका दिया। उस के सिरपर मुष्टि प्रहार किये। वक्षपर घुटनों से प्रहार किया। कंस कुछ भी नहीं कर पाया। उसके कंठहार कट गये, कर्ण-कुण्डल टूटकर गिर पड़े और वस्त्र खुल गये! उसके नाक, कान, मुँह से खून बहने लगा, आँखें निकल आयीं। इसके बाद कृष्ण ने उसको ऊपर से नीचे गिराया। ज़ोर से धकेलने के कारण कंस का शरीर पलटियाँ खाते हुए रंगद्वार की परिखा में जा गिरा।

इस बीच बलराम ने कंस के छोटे भाई सुनाम पर सिंह की भाँति आक्रमण करके उसका वध कर डाला।

कृष्ण ने जिन हाथों से कंस का वध किया, उन्हीं हाथों से उसने वसुदेव के चरण छूकर प्रणाम किया। वसुदेव ने कृष्ण को दृढ आलिंगन करने आशीर्वाद दिया। इस के बाद कृष्ण को अपने आलिंगन में लेकर उसका माथा सूँघ लिया।

बाद में कृष्ण ने उग्रसेन व अन्य बुज़ुर्गों को प्रणाम करके उनके आशीर्वाद लिये और सब को वहाँ से भेजकर कृष्ण अपने भैया बलराम को साथ लेकर अपने पिताके घर चला गया।

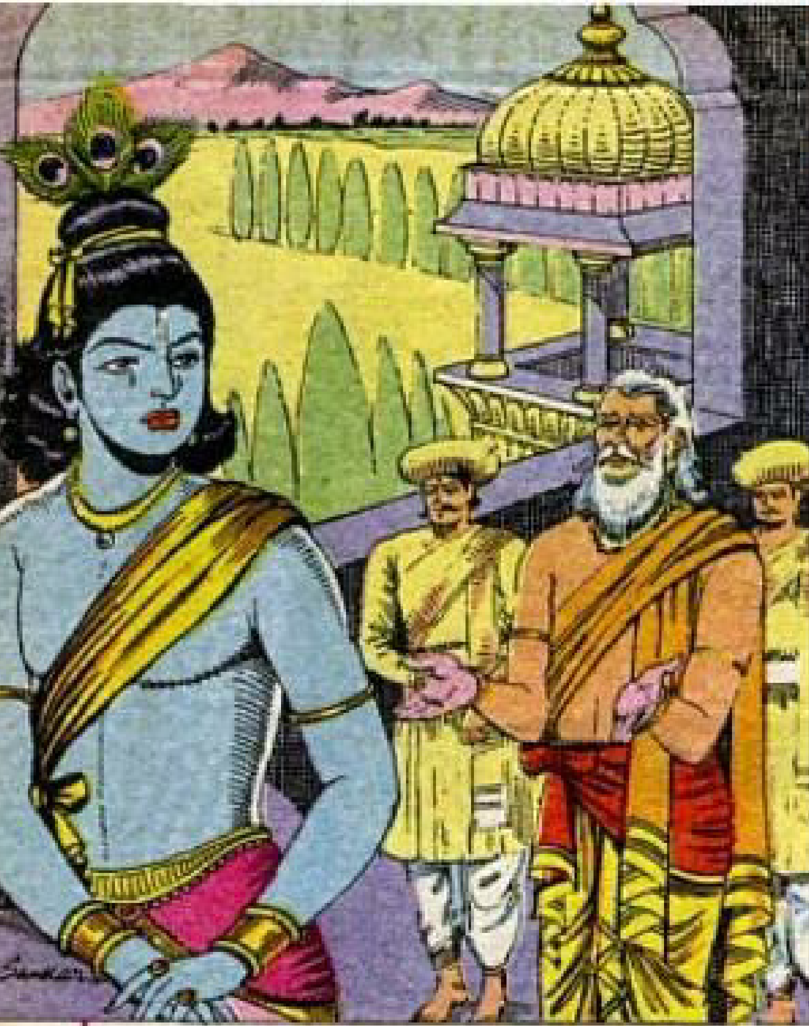




कंस की मृत्यु का समाचार पाकर उसकी सभी पत्नियाँ वहाँ पर मूर्तिभूत शोकदेवियों जैसी आ पहुँचीं और अपने पति के शवपर गिरकर दहाडे मार कर, छातियाँ पीटती हुई विलाप करने लगीं। उनका विश्वास था कि, तीनों लोगों में कंस का संहार कर सकनेवाला व्यक्ति है ही नहीं। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकीं कि, ऐसा शक्तिशाली पुरुष एक निरे बालक के हाथों इस प्रकार बुरी मौत मर सकेगा और इतने शीघ्र उन्हें वैधव्य प्राप्त होगा। बालक श्रीकृष्ण के बल-पराक्रम की उन्हें कल्पना न थी। जो कुछ हुआ, वह उनके लिए एकदम अनपेक्षित था। कंस की मृत्यु पर सभी पत्नियों को अपार दुख हुआ।

कंस की माता भी अपनी बहुओं के साथ अपने पुत्र की मृत्यु पर रो पड़ी। अपने पति उग्रसेन के पास पहुँच कर उसे उलाहना देते हुए वह बोल उठी, "वज्रपात के कारण गिरे हुए पर्वत की भाँति, गिरे हुए अपने पुत्र को देखा तुमने? उसकी अंत्येष्टि-क्रिया करनी है न तुम्हें ? कृष्ण ने अपने बाहुबल से हमारा राज्य जीत लिया है। अब उससे अनुमति माँग लो, ताकि कंस की अंत्येष्टि-क्रियाऐं संपन्न की जा सकें।"

इसी वक्त सूर्य इस प्रकार अस्त हो गया, कि मानो, वह कंस की मृत्यु की प्रतीक्षा में ही अभी तक डूबा नहीं था। उस संध्या के समय यादवों के बीच रहे कृष्ण को जब कंस की पत्नियों का रुदन-स्वर सुनाई दिया, तब उसकी आँखों में



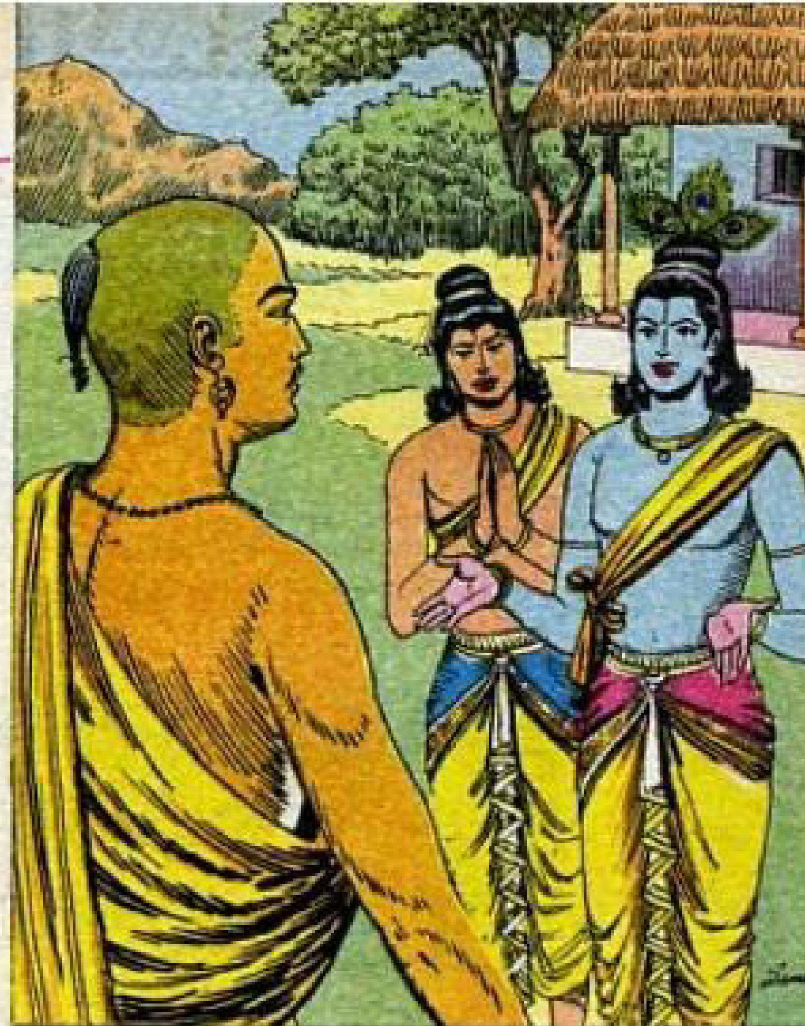
आँसू छलक आये। वह अपने चारों ओर फैले हुए बन्धुजनों से कहने लगा, "मैंने अत्यन्त बाल्य-सुलभ भावना के वशीभूत होकर कितनी स्त्रियों को वैधव्य दुख पहुँचा दिया है। पर सचाई यह है, कि कंस की दुष्टता का निर्मूलन करने का कोई और उपाय भी तो नहीं था। उस दुष्ट जैसा, अपने ही पिता को बन्दी बनाकर राज्यशासन करनेवाला पुत्र कहीं और कोई है? जनश्रुति है कि, पापी पर दया दिखाना भी पाप है। जगत् के कल्याण के हेतु ही मैं ने इस दुष्ट का निर्दालन किया है। कंस की निर्दयता और कठोरता तो सब ने देखी है। उसने मेरे पिता-माता के प्रति जो अन्याय किया उसके बारे में उनके प्रति मेरे मन में शत्रुता नहीं है। पर दुष्टता की भी हद होती है। कोई जनम भर पाप ही पाप करना रहे, और कोई उसका बन्दोबस्त न कर सके, यह कैसे हो सकता है। ऐसा ही कुछ विचार मन में रखकर मैं ने करणीय किया। भविष्य के कार्यक्रम के बारे में भी मैं ने पहले ही सोच रखा है।"

उसी समय उग्रसेन, शिवि आदि वृद्ध यादवों के साथ वहाँ आ पहुँचा। थोड़ी देर कृष्ण के सामने सिर झुकाकर खड़ा रहा, उसने आँसू बहाये और फिर सिर उठाकर गद्‌गद् स्वर में बोला, "बेटे, तुमने अत्यंत क्रूर एवम् भयंकर शत्रु का संहार कर अपूर्व यश प्राप्त कर लिया है। यादव वंश को तुमने अत्यंत आनन्द पहुँचाया है। अब यह राज्य तुम्हारा है, तुम्हीं यहाँ के राजा हो। अब तुम इस राज्य का इस तरह वैभव भोगो कि जिससे जनता के लिए भी किसी प्रकार का कष्ट वा अभाव न हो। तुम्हारे शत्रु का अन्त हो गया है, इसलिए अब तुम प्रतिशोध की भावना न रखो। मुझ जैसे लोगों के प्रति स्नेह और प्यार का भाव रखो। अब कंस का दाह संस्कार करना है। तुम इसके लिए अनुमति दो, तो मैं मेरी पत्नी और मेरी बहुएँ—अब मिलाकर तर्पण देंगे। इस के बाद मैं जटा एवम् वल्कल धारण कर वनवास करूँगा।" तुम ने कंस का वध किया इस बात का खेद भी करें तो कैसे ? जिसने अपने जीवन भर अन्याय ही अन्याय किया, उसे दंड देनेवाला भी कोई निकलनेवाला था। तुमने जो कुछ किया उसके लिए तुम्हारी भूरी भूरी प्रशंसा करनी चाहिए। दुष्टों का निर्दालन करने का कार्य

निरंतर करते रहो । अन्याय पीड़ित जनों की पीड़ा कौन दूर करेगा ?

इसपर कृष्ण ने कहा, "इस कार्य के लिए मेरी अनुमति की आवश्यकता किस लिए? कंस की क्रियाओं को संपन्न करने में मैं क्या आपत्ति उठा सकता हूँ ? मैं यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देता हूँ—मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है । राज्य व संपत्ति के लालच में आकर मैं ने कंस-वध नहीं किया है । कंस वंशद्रोही, तथा जगत् के लिए काँटा बन बैठे थे; इसलिए लोकहित की कामना से ही मैं ने उनका संहार किया है । इससे मुझे जो यश प्राप्त हुआ है, वही मुझे पर्याप्त है । अब मैं गायों के रेवडों के बीच पहुँचकर गोपालों के साथ मिलकर खेलकूद और नाच-गान में लग जाऊँगा । मैं ये बातें केवल आप को खुश करने के लिए नहीं कह रहा हूँ । वास्तव में यह राज्य आप ही का है । इसे आप के पुत्र ने हर लिया था; अब फिर वह आप का हो गया । आप सुख-पूर्वक राज्यपालन कीजिए । यह राज्य जीत कर मैं स्वयं आप को दे रहा हूँ । आप अपना राज्याभिषेक करवा लीजिए । आप के मन में मेरे प्रति अगर कुछ वात्सल्य और प्रेम हो, तो आप मेरी यह इच्छा नहीं टालिए ।"

इतना कहकर ही कृष्ण संतुष्ट नहीं हुआ । उसने तत्काल सब लोगों के बीच उग्रसेन का राज्याभिषेक करवाया । उग्रसेन ने कृष्ण-बलराम का उचित रूप में सत्कार किया । कृष्ण ने विशेष रुचि लेकर मथुरा नगरी को पहले की अपेक्षा कहीं और सुन्दर व वैभव-शाली बनाया । उग्रसेन के महल तक जानेवाले राज-मार्ग को और प्रशस्त बना दिया । जनता को किसी प्रकार की तकलीफ न हो इस लिए तरह तरह की नई सुविधाओं का निर्माण किया । आइंदा कंस के समान कोई कठोरता बरते, तो उसके दमन का उचित प्रबंध किया ।



एक दिन कृष्ण ने बलराम से कहा, "भैया, हम बचपन से ही शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार एवम् दुनियादारी का ज्ञान प्राप्त किये बिना वनों में चक्कर लगाते रहे । अब इस समय ही सही, मगर हमें किसी गुरु के आश्रय में जाकर शिक्षा प्राप्त करना उचित होगा ।"

इस विचार के पैदा होने ही बलराम और कृष्ण



ने अपना संकल्प अपने आत्मीय जनों को सुनाया और अनुमति लेकर वे अवंतिपुर के निवासी सांदीप नामक ब्राह्मण के पास पहुँचे । अपना नाम, पता व गोत्र आदि का परिचय देकर उन दोनों ने उन से शिक्षा प्रदान करने की अभ्यर्थना की । उसने दोनों भाइयों को अपना शिष्य बनाया और चौंसठ दिनों में उनसे चारों वेद और षडांगों का अध्ययन कराया । इसके बाद बारह दिनों में दोनों भाइयों ने धर्मशास्त्र तर्क, न्यायशास्त्र, गणीत, संगीत और सैनिक विद्याएँ सीख लीं । इसके उपरान्त पचास दिनों में उन्हों ने अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास पूर्ण रूप से किया । उनकी अध्ययन शक्ति पर विस्मित हो, सांदीप ने कहा, "कहीं मानव रूप धरकर आये हुए ये दोनों सूर्य और चंद्र तो नहीं !"

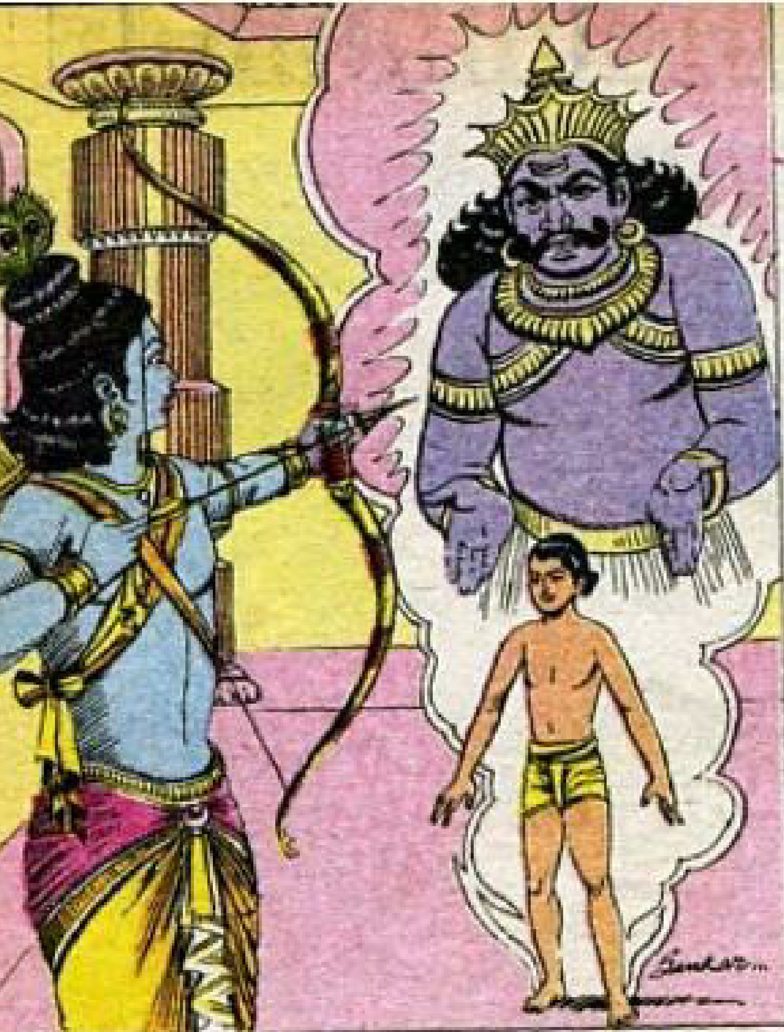
बलराम और कृष्ण ने गुरु के पास विद्याभ्यास पूर्ण करने पर उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा, "आप की कृपा से हम शिक्षित हो गये । आपने पिता के समान हमसे प्रेम किया । अलग अलग विद्याएँ और कलाएँ हम को पूर्णतः सिखा दी । अब कृपया बताइये, आप हम से गुरुदक्षिणा में क्या चाहेंगे? आप की इच्छा चाहे जितनी भी दुर्घट हो, हम उसकी पूर्ति ज़रूर करेंगे ।"

सांदीप ने इस पर कहा, "मेरे एक पुत्र था । वह तीर्थाटन पर निकल पड़ा था एक बार । इसी दौरान वह एक स्थान पर समुद्र में स्नान कर रहा था । तब उसको एक तिमिंगल (व्हेल) ने निगल डाला । वह पुत्रशोक आज भी मेरे हृदय को जला रहा है । कृपा करके मुझे मेरा पुत्र किसी प्रकार वापस दिला दो । बस, यही मेरी प्रार्थना है ।"

अपने गुरु की गुरुदक्षिणा चुकाने का निश्चय कर, कृष्ण ने अपने बड़े भाई की अनुमति प्राप्त की और धनुष-बाण लेकर कृष्ण समुद्र के तटपर पहुँचा । समुद्र को उसने आदेश दिया, "हमने सुना है, कि हमारे गुरु सांदीप ने अपने पुत्र को आप के जल में खो दिया है । उसको निगलनेवाले दुष्ट को मुझे तत्काल दिखाये ।"

दूसरे ही क्षण समुद्र प्रत्यक्ष हो, हाथ जोड़कर काँपते हुए बोला, "महानुभाव, पंचजन नाम के राक्षस ने तिमिंगल के रूप में प्रवेश करके आप के गुरुपुत्र को निगल डाला है । उस राक्षस को मैं





अभी आप के सम्मुख उपस्थित कर देता हूँ।"

फिर क्या था ! उसी क्षण समुद्र की लहरों ने तिमिंगल रूपधारी पंचजन को लाकर किनारे पर फेंक दिया । कृष्ण ने तलवार से उसका पेट चीरकर देखा; मगर उसके अन्दर गुरुपुत्र नहीं था, बल्कि एक विशाल शंख उस पेट में उसे मिला। उस शंख पर आकृष्ट हो कृष्ण ने उसे अपने उपयोगार्थ रख लिया। चूँकि वह शंख पंचजन के पेट से प्राप्त था, उसका नाम पांचजन्य हो गया।

मगर गुरुपुत्र की समस्या तो अभी बनी ही रही। उस युवक का आखिर क्या हुआ ? कहीं मरकर वह यमलोक तो नहीं गया? इस विचार से दक्षिणी दिशा में प्रयाण कर कृष्ण यमलोक पहुँचा। सिंहासन पर बैठे यमराज को ललकार कर उसने कहा, "हमारे गुरु सांदीप के पुत्र को तुम उठा लाये हो। उसको इसी क्षण मेरे हाथ सौंप दो। यदि तुम मेरे साथ संघर्ष करो, तो मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा ।"

इस पर भयकंपित हो यमराज हाथ जोड़कर बोला, "महात्मा, मैं केवल प्राणियों के पाप-पुण्यों का निर्णयक हूँ। प्राणियों के प्राण हर लानेवाला मैं नहीं, बल्कि वह मृत्यु का काम है ।"

"मृत्यु में ऐसा अहंकार ? हमारे गुरुपुत्र को उठा लाने के साथ हमें भी इतनी दूर भटका देने का साहस ! समझो, अभी उसी की आयु का अन्त हो गया।" यह कहकर कृष्ण ने धनुष्य पर बाण चढ़ा दिया। यह देख भयभीत मृत्यु गुरुपुत्र को फिर सजीव कर वहाँ ले आया और उसे कृष्ण के सामने प्रस्तुत किया ।"

इस प्रकार कृष्ण ने समुद्र, यमराज तथा मृत्यु को भी थरथर कँपा दिया और पांचजन्य तथा गुरुपुत्र को भी प्राप्त कर वह गुरु के पास लौट आया। गुरु सांदीप आश्चर्य और प्रसन्नता से भर उठा। उसने अपने पुत्र का आलिंगन किया और इस अपूर्व गुरु-दक्षिणा चुकानेवाले अपने शिष्य कृष्ण को अनेक आशिर्वाद दिये ।

इसके बाद बलराम और कृष्ण कुछ दिन अपने गुरुजी के घर रहे और बाद में उनसे बिदा लेकर मथुरा लौटे ।

उग्रसेन ने कृष्ण-बलराम का अपूर्व स्वागत किया और उनका जुलूस निकला। अपने बन्धु व परिवार को साथ ले जाकर उनकी अगवानी की

और वाद्यवृन्द के साथ उन्हें नगर में ले आया। बादमें वे दोनों वसुदेव के घर पहुँचे। अपने विद्याभ्यास के अनुभवों के बारे में सब लोगों को विस्तार से बातें सुनायीं और वहीं पर सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

जरासंध मगध देश का राजा था। उस की आस्ति और प्रास्ति नाम की कन्याएँ कंस की पत्नियाँ थीं। जरासंध ने जब सुना कि उसके जामाता कंस का संहार करके कृष्ण ने उसकी पुत्रियों को विधवा बनाया है तब वह अत्यंत क्रोध में आ गया। कृष्ण से इस बात का प्रतिशोध लेने का संकल्प कर के जरासंध अनेक राजाओं को साथ लेकर और इक्कीस अक्षौहिणी की सेना समेत मथुरा पर आक्रमण करने निकल पड़ा। यमुना किनारे डेरा डालकर उसने विन्द और अनुविन्द नाम के अपने दो पुत्रों को दूत के रूप में कृष्ण के पास भेजा। उग्रसेन की सभा में उपस्थित होकर उसी सभा में बलराम के साथ बैठ कृष्ण को उन्होंने जरासंध का संदेश सुनाया।

"तुम और तुम्हारे भाई बलराम ने बड़े योद्धाओं की भाँति मथुरा में प्रवेश कर कंस और उसके छोटे भाई का वध किया है। कंस मेरा जामाता था। अपनी पुत्रियों के वैधव्य से दुखित होकर मैं तुमसे युद्ध करने आया हूँ। शीघ्र ही तैयार होकर तुम मेरे साथ युद्ध करने आ जाओ। मेरा अंतिम निश्चय है कि हम दोनों में या तो तुम जीवित रहो, या मैं रहूँ। मगर किसी भीहालत में हम दोनों को साथ साथ इस पृथ्वी पर स्थान



नहीं है। सामने आकर तुम मुझ से युद्ध करो, तो मैं तुम को मार डालूँगा। मेरे हाथ से बचकर युद्धभूमि से भागकर तुम पाताललोक में भी घुस जाओगे, तो तुम्हारा पीछा वहाँ तक भी करके मैं तुम्हारा अन्त कर डालूँगा। मेरी शक्ति, पराक्रम और सामर्थ्य का परिचय तुम अक्रूर या तुम्हारे छोटे भाई सात्यकी के द्वारा प्राप्त कर सकते हो। मैं कल ही मथुरा नगरी को घेरा देनेवाला हूँ। तैयार रहो!"

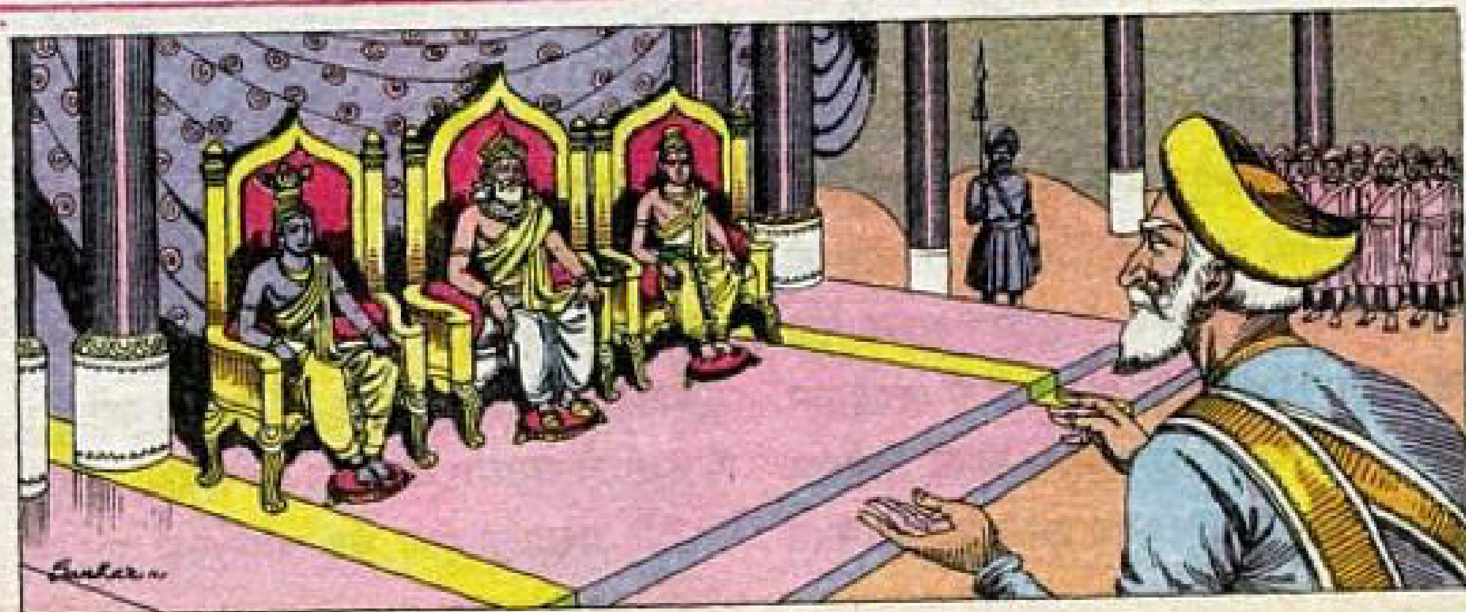
जरासंध का यह संदेश दूतों द्वारा सुनकर कृष्ण मंदहास करके बोला, "यह सब सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैं वाचाल नहीं हूँ। मैं स्वयं ही जरासंध का दमन करने जाना चाहता था, पर अच्छा ही हुआ, वह स्वयम् यहाँ तक आ

गया है। पूर्वकाल में राक्षसी ने उसके शरीर को जोड़ दिया था। मैं फिर उस शरीर के दो टुकड़े कर दूँगा। जिस प्रकार कंस का वध करके मैं ने उसका राज्य उग्रसेन के हाथ सौंप दिया है, उसी प्रकार जरासंध का भी वध करके मैं उस के पुत्र का मगध राज्य के लिए अभिषेक करूँगा।''

इसके बाद जरासंध के दूत बनकर आये राजकुमार कृष्ण के द्वारा सत्कार पाकर लौट गये और कृष्ण का संदेश उन्होंने जरासंध को सुनाया।

इधर जरासंध का नाम सुनकर ही उग्रसेन आदि यादव-प्रमुख भयभीत हो गये। उन में विकद्र नामक वृद्ध यदु कहने लगा।

''बेटा कृष्ण, जिस प्रकार कमल में से ब्रह्मा का उद्भव हुआ, उसी प्रकार तुमने यदुवंश में जन्म धारण कर लिया है। तुम्हारे रहते, यादवों को किसी से डरने की ज़रूरत नहीं है। मगर जरासंध को अनेकों राजाओं का साह्य प्राप्त है। वह न केवल युक्तिवान् है, बल्कि अत्यन्त क्रूर स्वभाव का भी है। उस को युद्ध में परास्त करने की शक्ति अकेले तुम ही रखते हो। कंस ने अहंकार वश अपने दुर्ग को असुरक्षित रख छोड़ा था। हमारे पास जो अस्त्र, शस्त्र व रसद तक नहीं है। वास्तव में यह दुर्ग की संज्ञा के लायक नहीं है। शत्रु ने अचानक हमला बोल दिया है। उसका सामना करने की क्षमता रखते हुए हम हाथ जोड़कर बैठे रहें तो इस राज्य से हम हाथ धो बैठेंगे। प्राचीन काल में मुचिकुन्द, पद्मवन्त, सारस, हरित नामक यादव राजाओं ने ऋक्षवन्त, विंध्य, सह्य नामक पर्वतों में और पश्चिमी समुद्र के द्वीपों में भी शत्रुओं से बचने के लिए दुर्भेद्य अनेक दुर्ग बनवाये हैं। इन चारों राजाओं के पहले, माधव नामक राजाने इस मथुरा का राज्य किया है। आज इस दुर्ग को सुदृढ बनाना संभव नहीं है। इसलिए हमें एक और दुर्ग का निर्माण करना होगा। मैं वास्तविक समाचार तुम्हें सुना रहा हूँ। अब अन्तिम निर्णय तुम्हारा है। तुम इस सम्बन्ध में अच्छी तरह सोचकर निर्णय लो।''
सम्बन्ध में अच्छी तरह सोचकर निर्णय लो।
सुचिन्तित निर्णय के आधार पर काम करना ही अब उचित होगा।''

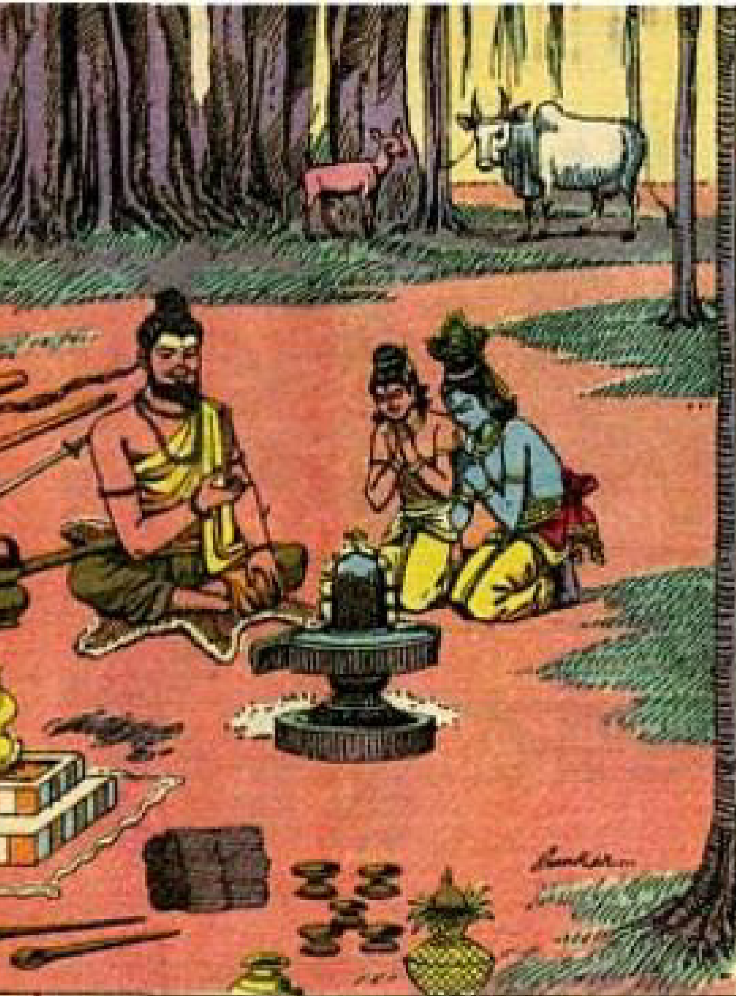




विकद्र की बातें सावधानी से सुनकर कृष्ण ने सुझाव पेश किया— "इस के लिये फिलहाल एक ही उपाय है। मैं और बड़े भैया तत्काल यहाँ से निकल कर जरासंध वगैरहों की देखादेखी दक्षिण दिशा में निकल पड़ेंगे। उस हालत में मथुरा नगरी का घेरा उठाकर वह हमारा पीछा करेगा। हम लोग विन्ध्याद्री आदि पर्वतों में स्थित दुर्गों का आश्रय लेकर जरासन्ध से लड़ते रहेंगे। हमारे ऐसा करने से हमारे वंशधर और राज्य की जनता को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचेगी। हम यहीं रहे तो यहाँ युद्ध छिड़ेगा। मथुरा नगरी के वासियों को भी तक़लीफ हुए बिना न रहेगी। बेकार की हत्याएँ होंगी और इस नगरी में अशान्ति फैलेगी।"

कृष्ण के इस सुझाव का सब ने स्वीकार किया। इस के बाद कृष्ण-बलराम निःशस्त्र होकर मथुरा से निकल पड़े। फिर साहस पूर्वक जरासन्ध के पास जाकर बोले, "हे मगधराज! बताइये, आप विविध देशों से सेनाएँ लेकर यहाँ पर क्यों पधारे हैं? हम भी आप के कार्य में आप की सहायता करेंगे। अगर आप को युद्ध ही करना है, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। पर अगर कोई सत्कार्य करना हो तो उसमें आपकी मदद करने में हमें अधिक प्रसन्नता होगी।"

कृष्ण और बलराम के आगमन की वार्ता सुनकर कवच, धनुष और तरकस धारण कर जरासन्ध उनके सामने आ पहुँचा और दृढ़ स्वर में बोला, "मैं ने सुना है कि तुम दोनों महान् बलशाली हो। इसलिये तुम्हें युद्ध में पराजित करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ। तुम दोनों के



देखा । परशुराम का तेजस्वी रूप देख कर उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई । ऐसा व्यक्तित्व पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था । उन्होंने परशुराम को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनकी ओर एक टक निहारने लगे ।

परशुराम वहाँ बैठे शिवजी की अर्चना कर रहे थे । एक ओर होमधेनु उसके बछड़े के साथ बँधी हुई खड़ी थी । उसकी एक ओर अरणी, कमण्डलु तथा प्रज्वलित अग्नि था और दूसरी ओर एक महाधनु, बाण, खड्ग और परशु रखे हुए थे । इस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रीय तेज से शोभायमान परशुराम के समीप जाकर बलराम और कृष्ण ने उनको इस प्रकार प्रणाम किया कि, जिससे हाथों का स्पर्श परशुराम के सिर को हो जाय । फिर दोनों ने उनका स्तोत्र-पाठ किया ।

कृष्ण ने अपना वृत्तान्त संक्षेप में सुनाकर उनसे कहा, "महात्मा, हम यमुना के तटपर स्थित मथुरा नगरी के निवासी हैं । यादव-शिरोमणी वसुदेव हमारे पिता हैं । मेरा नाम कृष्ण और मेरे इस बड़े भैया का नाम बलराम है । कंस के भय के कारण हमारे पिता ने हमारे जनम से ही हमको गोकुल में भेज दिया । वहीं पलकर हम बड़े हो गये । इसके बाद मथुरा लौटकर मैंने कंस का संहार किया । कंस का राज्य हमने उनके पिता को सौंप दिया । कंस के वध के कारण हम से कुपित होकर भारी सेना के साथ जरासन्ध ने हम पर हमला किया है । हम तो बेहथियार हैं, इसलिये जरासन्ध के साथ युद्ध करने की स्थिति में नहीं

प्राण लिये बगैर मैं यहाँ से हटनेवाला नहीं हूँ। इसलिये तुम भी युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर आ जाओ । बड़े आये सत्कार्य करनेवाले ! यद्ध में पराजित होना पड़ेगा इसका अभी से निश्चय हो गया ? हम ये सब चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं सुनना चाहते हैं । हम को तुम से युद्ध करना है । देखना है कौन अधिक बलशाली है ? हम या तुम ?"

जरासन्ध की बातें सुनकर ज़रा भी विचलित हुए बगैर वहाँ से निकल कर कृष्ण बलराम दक्षिण की ओर चल पड़े । अनेक देश व नगर पार करते हुए वे दोनों विन्ध्याचल के निकट पहुँचे । वहाँ से उन्होंने सह्याद्रिपर एक जंगल में एक महा वटवृक्ष के नीचे बैठे परशुराम को

हैं। ऐसी हालत में उनकी देखादेखी हम दोनों पैदल चलकर इस ओर आ गये हैं। कृपया आप इस समय हमारे कर्तव्य का बोध कराके हम पर अनुग्रह कीजिये। हम ने जरासन्ध से समझौता करने का प्रयत्न किया। पर सब व्यर्थ ! उनको हम से युद्ध ही करना है। सत्कार्य करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं है।"

यह सारा वृत्तान्त सुनकर परशुराम ने कहा, "तुम दोनों को इस ओर दक्षिणापथ में चले आते हुए जरासन्ध ने स्वयं देख लिया है, इसलिये सेना लेकर वह निश्चय ही इस दिशा में तुम्हारा पीछा करता हुआ आ जाएगा। उस को पराजित करने के लिये अधिक अनुकूल एक दुर्ग है। मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम लोगों को वहाँ पहुँचा दूँगा। कंस का वध करनेवाले को इस समय हिम्मत से काम लेना चाहिए। मैं तुम्हें जिस दुर्ग पर ले जाऊँगा, वहाँ से तुम जरासंध का बराबर सामना कर सकोगे। ध्यान में रखो अन्यायी और पापियों की कभी जीत नहीं होती। मैं तुम्हें आर्शीवाद दूँ।"

वे तीनों वहाँ से निकल पड़े। कुछ दिन की यात्रा के बाद वे गोमंत नामक पर्वत पर पहुँचे।

'गोमंत एक महा-पर्वत है। उसपर केवल एक ही शिखर है। उस शिखर पर पहुँचने पर ऐसा प्रतीत होगा कि सूर्य व चन्द के उदयास्त के स्थान समीप में ही हैं। अनेक द्वीपों के साथ समुद्र भी वहाँ से दिखाई देगा।' परशुराम ने ये सारी बातें बलराम और कृष्ण को बताई।



इस के उपरान्त परशुराम ने उन्हें समझाया- "यदि इस पर्वतपर से युद्ध करोगे तो जरासन्ध और उसके साथ आये हुए सभी राजा परास्त होकर यहाँ से भाग जायेंगे।"

इस निर्णय के बाद वे तीनों शीघ्र गति से पर्वतपर चढ़ गये।

"तुम्हारे शत्रु जब यहाँ समीप पहुँचेंगे, तब उनकी ध्वनियाँ सुनाई देंगी। पर याद रखो, तुम्हें अत्यन्त सावधान रहना होगा। अच्छा, अब मैं चला। मैंने यथासंभव तुम्हारी सहायता की है। मैं तुम्हारे पराक्रम को जानता हूँ। जीत तुम्हारी ही होगी।" परशुराम ने कहा। बलराम और कृष्ण ने सादर उन को बिदा किया।

कृष्ण-बलराम ने उस पर्वतपर स्थित गुफ़ाओं



तो हम इस पर्वत को ही चूर-चूर कर के हमारे मनोरथ सिद्ध करेंगे और उसके बाद ही यहाँ से लौटेंगे ।"

"कहा जाता है, कि इस पर्वत पर चढ़ना देवताओं को भी संभव नहीं है । रथोंपर विश्राम करनेवाले हमारे राजा क्या इस पर्वत का आरोहण कर सकेंगे ? संख्या में हम अधिक हैं इस विचार से दर्प में आकर टूट पड़ना युद्ध की नीति नहीं है और न ही उपाय भी है । हमें बलराम तथा कृष्ण को बच्चे मात्र नहीं मानना चाहिये । इस समय दुर्ग उनके अधिकार में है । इसलिये मेरा सुझाव है कि युद्ध करने की अपेक्षा इस पर्वत के चतुर्दिक घेरा डालकर उन्हें रसद पहुँचने से रोक देना बुद्धिमानी का कार्य होगा । एक और उपाय भी है । अगर हम पहाड़ के चारों तरफ़ आग लगा देते हैं तो वे उसका प्रतिरोध नहीं कर पाएँगे और साथ ही वे मुसीबत में फँस जायेंगे ।" शिशुपाल ने अपनी सलाह प्रकट की ।

और वृक्षों का अवलोकन करते हुए अपना समय बिताया । इतने में जरासन्ध की सेना बड़ी शान से वहाँ आ पहुँची और उस पर्वत को चारों तरफ़ से उन्होंने घेर लिया । उस सेना में जरासन्ध के साथ शिशुपाल, रुक्मि, चेकितान, बाल्हिक, द्रुपद, विराट, उत्तमौज, जयद्रथ आदि पराक्रमी राजा थे ।

जरासन्ध ने इन सब राजाओं को बुलाकर सभा की और कहा— "हमें समाचार मिला है कि, यादवकुमार इस पर्वत पर आश्रय ले चुके हैं । हम पर्वत पर चढ़ने के लिये यहाँ के झाड़-झंखाड़ और पत्थर-कंकड साफ़ करवा देंगे। जहाँ तहाँ ढेल-बाँस चलाने वालों को नियुक्त करेंगे । ऊपर से कोई भी झाँककर देखें तो उनपर हम बाण और भाले फेंकेंगे । ज़रूरत महसूस हुई,

चेदिराज शिशुपाल का सुझाव जरासन्ध को उत्तम प्रतीत हुआ ।

सैनिकों ने पर्वत के चतुर्दिक सूखे वृक्ष, झाड़-झंखाड़ आदि डालकर हवा के रुख के अनुसार उस में आग लगा दी और उसके शोलों पर लकड़ी और घास फेंकने लगे । थोड़ी ही देर में पर्वत के चारों ओर दावानल जैसे आग फैल गई । लपटें, शोले व धुआँ आसमान में फैल गये ।

उस दृश्य को देखकर बलराम ने कृष्ण से



कहा, "देखते हो न, हमारे कारण इस पर्वत की कैसी दुर्दशा हो रही है ! इस हालत को हम ऐसे ही देखते रहे, तो हमारे लिये इससे बढ़कर अपयश और क्या हो सकता है ? मैं इसी वक्त अपने बाहुबल से जरासन्ध का संहार कर डालूँगा। इतने सारे देशों के राजा ऐसी भारी सेना के साथ हम से युद्ध करने चले आये हैं। मैं उन पर ऐसा विनाश ढाऊँगा जिस से पृथ्वीपर एक भी राजा बच न रहें। यह कहकर बलराम पर्वतपर से तलहटी में फैली सेना के बीच कूद पड़े। उसी क्षण कृष्ण ने भी बलराम का अनुकरण किया। दो मंदार पर्वत अचानक समुद्र में गिर जाये, तो जैसी हलचल मच जाएगी उसी प्रकार जरासन्ध की सेना में हलचल और भगदड़ मच गयी। सारी सेना तितर-बितर हो गयी। उन के चरणों के आघात से पर्वत ज़रासा धँस गया और पाताल गंगा ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर आयी, जिससे सारी ज्वालाएँ बुझ गयीं।

उन दो भाइयों के शौर्य और साहस से प्रसन्न होकर आकाशस्थ देवताओं ने उन्हें विभिन्न प्रकार के आयुध सौंप दिये। उस समय कृष्ण खुद महाविष्णु और बलराम सहस्रफणोंवाले आदिशेष के रूप में प्रतीत हुए। वे दोनों ही क्रोधित हो सेना का अंधाधुंध संहार करने लगे। यह दृश्य देख समस्त राजा भागने लगे।

उन राजाओं में हिम्मत बँधाकर उन्हें वापस बुलाते हुए जरासन्ध ने कहा, "बुजुर्गों का कहना है कि युद्धभूमि में पीठ दिखाकर भागनेवाले भ्रूणहत्या जैसे पाप के भागी हो जाते हैं। तुम सब तो महान् योद्धा एवं अतिरथी, महारथी हो। ऐसे पराक्रमी तुम लोग, इन दो छोकरों से भय खाकर भाग रहे हो ? तुम लोग ज़रा स्थिर होकर मेरी तरफ़ देखो। मेरे रहते तुम लोगों का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ। मैं इन यादवों को मेरे बाणों का शिकार बना दूँगा।"

जरासन्ध की ये सान्त्वनापूर्ण बातें सुनकर भागनेवाले राजा लौट आये और अपनी अपनी सेना को वापस मोड़कर बलराम को घेर लिया।

अनेक राजा एक साथ कृष्ण-बलराम पर अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगे। तिसपर भी वे दोनों ज़रा भी विचलित हुए बगैर अपनी चारों



ओर व्याप्त सेना को काट काटकर उसकी लाशों के ढेर लगाने लगे। इस बीभत्स को देखकर राजा भयभीत हो गये और क्रमशः एक एक पीछे हटने लगे। अब कृष्ण ने उन लोगों से कहा, "तुम सब लोग अपने अपने वाहनों पर सवार हो। अनेक युद्ध करके तुम सब युद्धविद्या में प्रवीण बन चुके हो। ऐसे तुम सभी योद्धाओं को ज़मीनपर खड़े होकर युद्ध करनेवाले हम से डरकर युद्धभूमि से भाग खड़े होना शोभा नहीं देता! तुम लोगों की आड़ लेकर जरासन्ध दूर हटता जा रहा है। उस के लिये तुम लोग ख़्वाहमख़्वाह अपनी जान क्यों दे रहे हो। उसको पकड़ लाओ, तब मैं अपना युद्ध-कौशल दिखाऊँगा।"

यह चुनौती सुनकर जरासन्ध का पौरुष जाग उठा और वह उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ कृष्ण एक रथ पर अकेला खड़ा था। कृष्ण को ललकार कर उसने कहा, "मेरे सामने तुम इन राजाओं का अपमान क्यों कर रहे हो? युद्ध के माने वन में गायों को चराना नहीं होता। कहते हैं कि तुम महान् पराक्रमी और बलवान हो। पर तुम जब अपने बल और पराक्रम मेरे साथ प्रदर्शित करोगे, तभी वे सार्थक होंगे। अब तुम मेरे सामने खड़े होकर मुझसे लड़ो। मैं तुम को क़ाल के हाथों सौंप देता हूँ।"

"तुम मेरा पराक्रम देखना चाहते हो? देखो, मैं तुम्हारे सामने ही हूँ। शूर वीर कभी प्रलाप नहीं करते। तुम अपने शस्त्र और अस्त्रों की शक्ति दिखाओ।" यह कहकर कृष्ण ने जरासन्ध पर आठ और उसके सारथी पर पाँच बाणों का प्रहार किया। उसी समय बलराम ने जरासन्ध के हाथ के धनुष को अपने बाणों से तोड़ डाला। इसपर जरासन्ध के सेनापति कौशिक और चित्रसेन बलराम तथा कृष्ण पर टूट पड़े। उनके बीच घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में घायल होकर सेनापति तथा जरासन्ध एक के बाद एक बेहोश हो गये। आखिर जरासन्ध टिक न सका। वह और उसकी सेना हार कर भाग गये। कृष्ण ने अपनी विजय से खुश हो पांचजन्य को फूँका।

अब बलराम और कृष्ण ने थोड़े समय के लिये गोमंत गिरिपर ही विश्राम करने का निश्चय किया। लेकिन इस बीच एक विचित्र घटना घटी। जरासन्ध के साथ सभी राजा चले गये।


Sankar

लेकिन चेदी देश के राजा दमघोष याने शिशुपाल के पिता अपनी सेना के साथ पुनः गोमंत को लौट आया और उसने कृष्ण से मिलकर निवेदन किया, "वत्स, मैं तम्हारी फूफी का पति हूँ। मेरा नाम दमघोष है। यह जरासन्ध जो है, वह बड़ा ही धूत है। मैंने उस को बहुत बार समझाया कि तुम कृष्ण के साथ बैर मत मोल लो। मगर उसने मेरी बात अनसुनी कर दी। मैं उस से डरता हूँ, वरना मैं उसका साथ कभी का छोड़ देता। आज उसकी पराजय देखकर मैं अपने हितैषी व मित्रों के साथ तुम्हारे पक्ष में आ गया हूँ। मगर मेरी बात याद रखो—जरासन्ध बलवान है। यह मत सोचो कि उससे तुम्हारा पिंड छूट गया है। लड़ाई के लिये वह फिर कोई न कोई बहाना ढूँढ़ लेगा। तुम इन लाशों के बीच अभी तक क्यों रह रहे हो ? चलो, यहाँ से चले चलो। यहाँ समीप ही करवीरपुर नगर है। उसका शासक सृभाग वासुदेव तुमसे शत्रुता और ईर्ष्या रखता है। उसका दमन करना अत्यावश्यक है। लो, ये दो उत्तम रथ हैं। इन्हें तुम दोनों भाई ग्रहण करो।"

कृष्ण ने स्नेह और प्रेमपूर्ण भावना से दमघोष की ओर अपना हाथ बढ़ाया और कहा— "रिश्तेदारी से पूर्ण प्यार हो, तो ऐसा हो। आप की बातों से मुझे अपार संतोष हुआ है। आप जैसे व्यक्ति का हमें सहारा मिल गया है, इसलिये हम धन्ये हो गये। आप ने जिस आत्मीयता से हमें मार्गदर्शन किया, उसके लिए हम आप के अत्यन्त ऋणी हैं। आप का स्नेह पाकर हमें अतीव प्रसन्नता हुई। संकट के समय जो रिशतेदार मदद का हाथ आगे बढ़ाते हैं, वे ही सच्चे रिशतेदार हैं हम आप को बार बार धन्यवाद देते हैं। इस समय जो युद्ध हुआ, उसे आप ने देखा न ? इसी पद्धति से हम असंख्य युद्ध कर सकते हैं।"

इसके बाद बलराम और कृष्ण दमघोष के रथोंपर सवार होकर, दमघोष की सेना के साथ चल पड़े। रास्ते में दो पड़ाव डालकर तीसरे दिन प्रातःकाल वे करवीरपुर पहुँचे और वहाँपर उन्होंने अपना शिबिर बनाया।





करवीरपुर पहुँचते ही कृष्ण ने वहाँ के पहरेदारों को अपना परिचय देकर सूचित किया कि हम सब शृगाल वासुदेव के साथ युद्ध करने के लिये आये हुए हैं। इसलिये तुरन्त आकर वह हमारे साथ युद्ध करे।

पहरेदारों से यह संदेश पाकर शृगाल वासुदेव की आँखें क्रोध से लालपीली हो गयी। वह तुरन्त अपने सूर्य से प्राप्त रथ पर सवार हुआ। स्वर्णकवच धारण कर अपने अपूर्व धनुष-बाण, खड्ग और कुछ आयुध लेकर अपनी सेना को बिना बुलाये वह अकेला ही चल पड़ा। उसे अपने बल-पराक्रम पर पूरा भरोसा था। सेना के अभाव में भी वह अकेला लड़ सकता था। अतः बिना सेना के कृष्ण के साथ लड़ने के लिए सन्नद्ध हुआ।

कालयम के समान आनेवाले शृगाल वासुदेव को देखकर कृष्ण व बलराम संभ्रम में आ गये। दमघोष ने उन दोनों को उत्साहित किया। इस के बाद कृष्ण अपने रथ को हाँकते हुए शत्रु के रथ की ओर चल पड़ा। दोनों के बीच भयंकर द्वंद्व युद्ध छिड़ा।

थोड़ी देर बाद दोनों ने एक दूसरे पर बाणों की वर्षा की। मगर उन के अस्त्रही एक दूसरे से टकराकर टूट पड़ने लगे। कृष्ण ने बाद में शत्रु के धनुष को तोड़कर उसके सारथी को मार डाला। मगर शृगाल वासुदेव ने तनिक भी विचलित न होकर दूसरा धनुष हाथ में उठाया। वह स्वयं ही अपना रथ हाँकते हुए कृष्ण के सामने जाकर बोला, "तुमने गोमंतक के पास कुछ राजाओं को परास्त किया और उसी कारण विजय-गर्व से



प्रेरित होकर यहाँ भी आये हो। वहाँ के राजा मूर्ख और नीच थे। यहाँ तुम अकेले मेरे सामने आये हो, मैं भी अकेला ही हूँ। इसी को धर्मयुद्ध कहते हैं। इस विश्व में दो वासुदेवों का रहना असंभव है। इसलिये तुम्हारा संहार करके मैं खुद को अकेला वासुदेव कहलाऊँगा। अब ज़्यादा बात क्या करनी है? तुम आ जाओ मेरे सामने और मैं देखता हूँ तुम्हारी युद्ध-कुशलता को। आज या तो तुम मर जाओ, नहीं तो मैं !

कृष्ण ने परिहासपूर्ण स्वर में कहा, "यदि तुम्हारे मन में अब भी युद्ध करने की कामना है, तो तुम अपने प्रताप का परिचय दो। मैं भी देखना चाहता हूँ। इसके लिए जो भी मुझे करना होगा, करूँगा। उस बारे में अभी कुछ कहने की मुझे ज़रूरत नहीं है।"

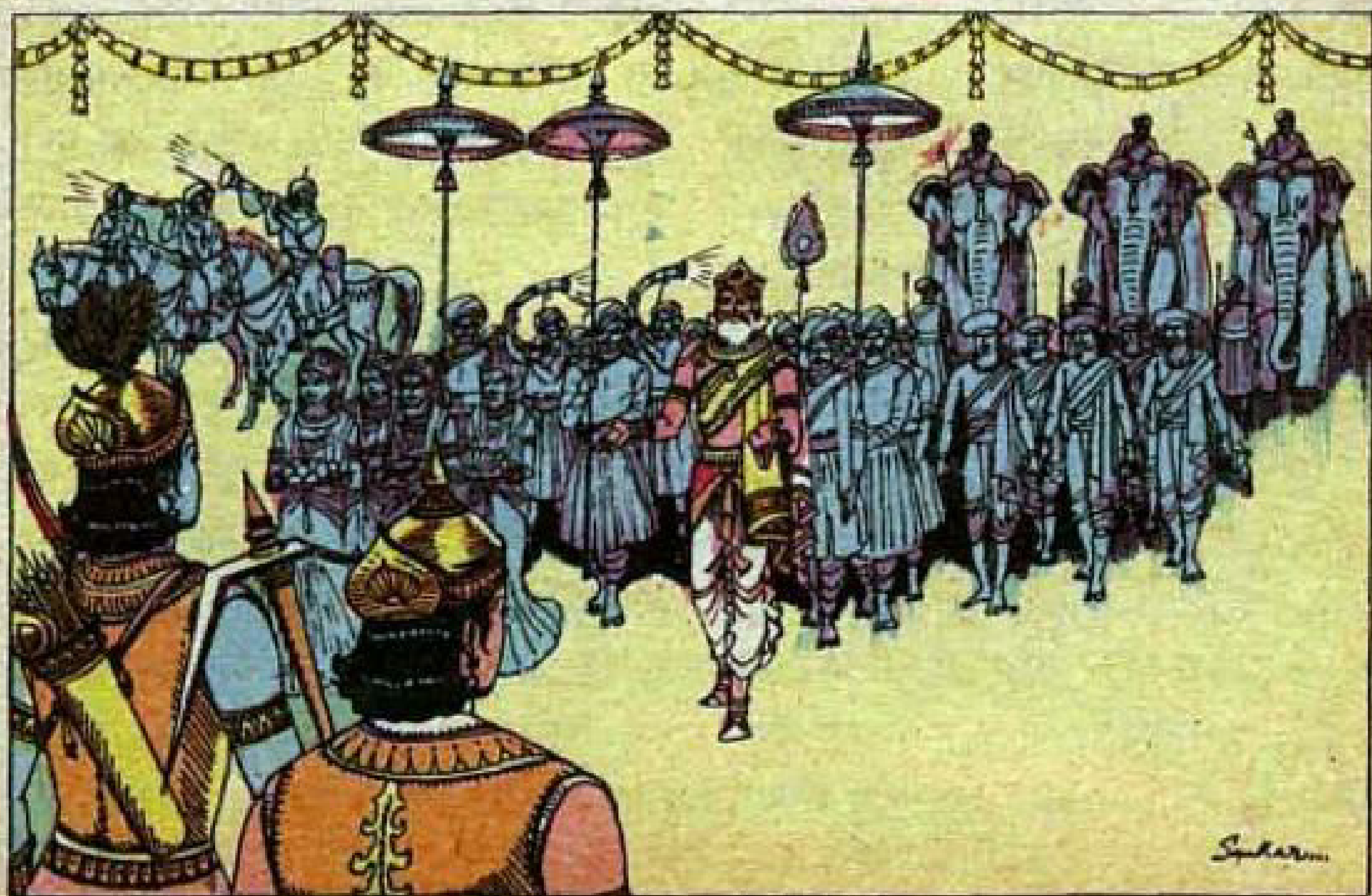
इस पर शृगाल वासुदेव ने अत्यंत शीघ्रता के साथ कृष्ण पर बाण, तोमर, चक्र, कुल्हाड़ियाँ, खड्ग आदि फेंककर उस प्रदेश को अंधकारमय बनाया। कृष्ण ने यह देखकर उस से कहा, "तुम ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और मैं ने उसे प्रत्यक्ष देखा। अब मेरा करिश्मा देखो। तुम्हारे पास कई प्रकार के शस्त्र हैं। पर मैं भी कुछ कम नहीं हूँ। तुम्हारी शस्त्रों की बौछार मैंने देखी। अब मेरे अस्त्र को भी तुम देखो।" यह कहकर कृष्ण ने उसपर चक्रायुध का प्रयोग किया। चक्र अत्यंत शीघ्र गति से और भयंकर रूप में परिभ्रमण करता हुआ बिजली की भाँति आया और शृगाल वासुदेव की गर्दन काटकर सिर और बाकी शरीर अलग-अलग किया। शृगाल वासुदेव को ऐसे अस्त्र की कल्पना तक न थी। उसका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। एक क्षण शृगाल वासुदेव बढ़ बढ़कर बातें कर रहा था। अब उसका सर शरीर से अलग हो गया! उसके बाद चक्र कृष्ण के हाथ लौट आया।

युद्ध में शृगाल वासुदेव की मृत्यु का समाचार पाकर अंतःपुर की नारियाँ रोती-कलपती अपने पति के शव के पास पहुँची। पट्टमहिषी अपने पुत्र शक्रदेव को अपने साथ ले आयी और उसको कृष्ण के पैरों में लिटाकर रो पड़ी। कृष्ण ने उसको सान्त्वना दी और उस राज्य के मन्त्री, सामन्त तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलवाकर उसने शक्रदेव का राज्याभिषेक करवाया।

इस के बाद कृष्ण ने मथुरा लौटने की बात की; तब उसके मामा दमघोष उस से बिदा ले अपनी सेना सहित चेदि-राज्य को लौट गये। कृष्ण और बलराम पांच दिन की यात्रा करके छठे दिन मथुरा-नगर पहुँचे। नगर सीमा तक पहुँचते ही कृष्ण ने अपने पांचजन्य का शंखनाद किया। शंखनाद सुनते ही उग्रसेन, यादवों तथा प्रमुख पुरोहितों को साथ लेकर कृष्ण-बलराम की अगुवानी करने निकला। उसने हाथी, घोडे, सैनिक, छत्र और मंगलवाद्य भी साथ रखे थे। बंदीजनों के स्तोत्रपाठ और ब्राह्मणों के आशीर्वाद के बाद बलराम और कृष्ण ने अत्यंत वैभव और सम्मान पूर्वक नगर में प्रवेश किया। कृष्ण के बल-पराक्रम को देख सारे मथुरावासी परमानन्दित हो गये। उन्होंने कृष्ण और बलराम को घेर लिया और सन्तोषपूर्वक नाचना प्रारंभ किया। उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा।

उधर कृष्ण-बलराम से पराजित होकर जरासंध मगध को लौट तो गया था; लेकिन वह अपमान की अग्नि में झुलस रहा था। बड़ी भारी सेना और अनेक राजाओंको साथ ले जाकर भी दो यादव-कुमारों के हाथों परास्त होकर उसे भाग जाना पड़ा था। इससे बढ़कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है ? इस अपमान की चिन्ता में वह अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठा था।

आख़िर जरासन्ध ने फिर से सभी राजाओं को सम्मिलित किया और उन्हें समझाया, "पापी भगवान ने पिछली बार हमारा साथ नहीं दिया। इसलिये हम अत्यंत बल और पराक्रम रखने के बावजूद भी दो गोप बालकों के हाथों मार खा





गये । हमारा जो अपयश हो गया, वह शाश्वत रूप में रह जाएगा। हम यदि इस कलंक को धो डालना चाहते हैं, तो उसके लिये अब एक ही उपाय है कि किसी प्रकार उन दो यादव कुमारों का हम संहार करें । आप सब अपनी अपनी सेनाओं समेत मथुरा के लिये प्रस्थान कर वहाँ पहुँच जाइये । हमारी शक्ति के सामने यादवों का ठहरना असंभव है ।"

जरासन्ध के इस सुझाव का सब ने स्वीकार किया; क्योंकि ये सब के सब गोमंतक के पास अपमानित होकर भाग गये थे ! इसके अलावा उन में से अधिकांश लोग जरासंध के समधी, सगोत्रीय, रिश्तेदार और निकट मित्र ही थे । पौंड्र, कलिंग, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, शालव, रुक्मि, गंधार, त्रिगर्त, भगदत्त तथा कृष्ण के कुछ अन्य शत्रु; और अंग, वंग, विदेह, काश, करुश, मद्र, पांड्य इत्यादि देशों के राजा भी जरासन्ध के पक्ष में लड़ने को तैयार थे । इस प्रकार पुनः इक्कीस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई ! वे सब अपनी मंज़िल तय करते हुए शीघ्र ही मथुरा पहुँचे । और उन्होंने नगर के चारों तरफ़ फैले बगीचों में और यमुना नदी के किनारे अपने डेरे डाल दिये। अब की बार जरासंध ने पूरी तैयारियाँ की थीं । अधिक-से-अधिक सेना जुटाने में वह समर्थ हो सका था । सब राजाओं में बड़ा जोश था और सब कृष्ण को युद्ध में पराजित करने का निश्चय किये हुए थे । जरासंध को लगा, इस समय जीत उसी की होगी ।

कृष्ण आदि ने दुर्ग के प्राचीरों पर चढ़ कर देखा— जरासन्ध की सेना प्रलय कालीन समुद्र की भाँति दृष्टिगोचर हुई ! इस पर कृष्ण बलराम की ओर देख हँसकर बोला, "ऐसा प्रतीत होता है, कि पृथ्वी का भार घटाने के लिये खुद भगवान ने ही यह इन्तज़ाम किया है ।"

दोनों ने मिलकर अपनी सेना के साथ शत्रु का सामना करने का निश्चय कर लिया ।

जरासन्ध ने अपने आये हुए राजाओं को युद्धतंत्र का इस प्रकार परिचय दिया—"सुनिये, हमारी सेनाओं को तत्काल मथुरा नगर को घेरना चाहिये । कुदालों से जहाँ-तहाँ दुर्ग के प्राचीरों को तोड़ना होगा । नगर को एकदम ध्वस्त बनाना होगा ।" गोमन्त पर्वत को घेरते समय जो जो

लोग जहाँ खड़े थे, उसी प्रकार उन स्थानों पर उन लोगों को खड़ा किया ।

इस बार जरासन्ध से युद्ध करने में यादव ज़रा भी विचलित नहीं हुए । वास्तवतः जरासंध के दल-बल के सामने उन की सेना न के बराबर थी । मगर कृष्ण उनके साथ था— यही उनका सहारा था ! गरुड केतनवाले रथ पर चक्र आदि आयुध लेकर कृष्ण और हल, मूसल आदि आयुध लेकर बलराम जब युद्ध के लिये निकल पड़े, तब सब को वह दृश्य बड़ा ही शोभायमान प्रतीत हुआ । वे दोनों उग्रसेन को साथ लेकर अपनी सेना के आगे रहकर चलते हुए जरासन्ध की सेना के समीप पहुँचे । अपनी सेना के आगे खड़े जरासन्ध ने सब से पहले उनका सामना किया । कृष्ण के पार्श्व में खड़े उग्रसेन को लक्ष्य करके वह कहने लगा, "भोजवंशी लोग राज्य करते हैं, तो यादव उनकी सेवा करते हैं । आजतक तो यही परिपाटी चली । ऐसे भोजवंश में जन्म लेकर तुमने मात्र अपने वंश की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया । तुम से बढ़कर कोई मूर्ख हो सकता है भला ? इस कृष्ण ने तुम्हारे पुत्र का संहार करके उसका राज्य हड़प लिया; तुम सिर्फ नामधारी राजा हो । तुम कंस के श्राद्ध का भोजन करते हो ! तुम्हारे बाल भी पक गये, पर फायदा क्या ? अपनी लज्जा को तिलांजली देकर इस राज्य का उपभोग कैसे करते हो ? तुम कृष्ण के सेवक हो; राजा नहीं हो और न कभी हो भी सकते हो ।"

ये शब्द सुनकर कृष्ण ने क्रोध में आकर कहा, "आदरणीय उग्रसेन की निन्दा करने में ही तुम





अपने पौरुष का परिचय दे रहे हो ? निन्दा ही करना चाहते हो, तो मेरी निन्दा करो न। दरअसल मैं ही तो तुम्हारा शत्रु हूँ न ? कुछ समय पूर्व तुमसे ही गोमंतक के पास मेरे साथ युद्ध किया था न ? भूल गये ? इसलिये अब तुम केवल ऐसे हास्यास्पद शब्द मुँह से न निकालो। इस बार बिना पीठ दिखाये स्थिर खड़े होकर युद्ध करो। मेरा प्रताप इस बार पूर्ण रूप से देखो।" यह कहकर कृष्ण ने जरासन्ध और उसके सारथी पर बाण छोड़े और उसका धनुष तोड़ डाला।

दोनों पक्षों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में उग्रसेन ने भी असाधारण पराक्रम का परिचय दिया। एक बार कृष्ण और रुक्मि के बीच द्वंद्वयुद्ध छिड़ा। उस में रुक्मि बुरी तरह से हार कर हट गया।

बलराम भी बौखलाये हुए जरासन्ध की सेनापर टूट पड़ा। इसे देख जरासन्ध ने बलराम को रोका। दोनों ने एक दूसरे के रथों को तोड़ डाला; और वे गदायुद्ध करने लगे। उन का युद्ध बहुत ही देखनेलायक था। उसको देखने के लिये अन्य लोगों ने कुछ समय के लिये युद्ध बन्द किया। जरासन्ध और बलराम एक दूसरे के प्रहारों से खुद को बचाते हुए एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए दो शेरों की भाँति लड़ रहे थे। उनकी देहों से खून की धाराएँ बहने लगीं। पृथ्वी काँप उठी ! आखिर कोई भी किसी का संहार न कर पाया। और गदायुद्ध समाप्त हुआ !

इस के बाद कई दिन तक युद्ध चलता रहा। लेकिन अपनी कामना के अनुसार जरासन्ध को विजय प्राप्त नहीं हुई। दिन-ब-दिन उसके दल घटते गये। आखिर वह थक गया। उसने सोचा कि इस बार भी दैव उसके अनुकूल नहीं है। फिर वह अपने साथ आये हुए राजाओं और सैनिकों को साथ लेकर मगध को लौट गया।

लेकिन जरासन्ध इससे भी निराश नहीं हुआ। इसी प्रकार उसने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किये। कृष्ण का संहार करना उसे संभव नहीं हुआ। और इसी प्रकार कृष्ण भी जरासंध का वध नहीं कर पाया; क्योंकि उस का वध किसी और के हाथों होना था !

दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। बलराम को अपने बचपन के दिन याद आये। एक बार


Sankar

गोकुल देखने की इच्छा उसके मनमें पैदा हुई। उसने अपनी इच्छा कृष्ण के सामने प्रकट की। कृष्ण ने उसे एक बार वहाँ हो आने को कहा। कृष्ण खुद वहाँ जाना नहीं चाहता था। बलराम जंगल के प्रदेशों के योग्य वेष धारण कर गोकुल चला गया। उस को दूर से ही देखकर गोकुलवासी परमानन्दित हो उसका स्वागत करने निकल पड़े। बलराम ने उनमें से कुछ लोगों को प्रणाम किया, और कुछ लोगों से प्रणाम स्वीकार किये; कुछ के साथ आलिंगन किया। सारी गोपिकाओं ने उसे घेर लिया। बलराम ने उन सबका प्रेमपूर्वक परामर्श किया।

वृद्ध गोपकों ने उसे अपने मध्य बिठाकर उसके साथ चर्चा की। वे लोग बोले, "वत्स, तुम्हारा आगमन हमारे लिये अत्यंत हर्ष की बात है। यही एक मात्र उदाहरण काफ़ी है कि हरएक व्यक्ति के मन में अपनी जन्मभूमि के प्रति ममता होती है, प्यार होता है; कार्यवश कोई कहीं भी क्यों न रहे! तुम लोगों ने चाणूर और मुष्टिक को मार डाला, कंस का वध किया। गोमंतक के पास महासेना को पराजित किया; शृगाल वासुदेव का संहार किया—इस प्रकार तुम दोनों ने अपार यश प्राप्त किया। हम गाँववालों को इसके किये तुम दोनों पर बड़ा नाज़ है। इतने पराक्रमी होने पर भी तुमने जहाँ गायें चरायी हैं, उस स्थान को याद कर के यहाँ चले आये हो।"

"आप लोगों ने ही तो हम को पाल पोस कर बड़ा किया—और इसी से हम को ख्याति प्राप्त हुई। आप लोगों के जैसे रिश्तेदार और बन्धु किसी को बड़े भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। मेरे छोटे भाई कृष्ण का मन भी राजभोगों में नहीं रमता। यहाँ हम ने अपने बचपन के जो दिन गुज़ारे उन्हें हम कभी भी भूल नहीं पायेंगे।" बलराम ने कहा।

बलराम के मुँह से ये बातें सुनकर सब लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। इस के बाद सब ने बलराम को खाने-पीने के उत्तम पदार्थ और पेय वगैरह देकर उसके प्रति अपना अपार प्रेम व्यक्त किया।





जो वस्त्र धारण कर बलराम गोकुल गया था, उन्हीं वस्त्रों के साथ मथुरा लौटकर सीधे कृष्ण के पास पहुँचा। कृष्ण ने बलराम के चरणों में प्रणाम किया। बलराम ने कृष्ण का स्वागत किया और फिर दोनों भाई वसुदेव के घर गये। वसुदेव ने बलराम को आलिंगन किया और कुशल-क्षेम पूछा। बलराम और कृष्ण के अचानक दर्शन करके वसुदेव को अत्यन्त आनन्द हुआ। इतने में कुछ गोप और गोपियाँ भी वहाँ उपस्थित हुईं। बलराम और कृष्ण से सभी बातें करना चाहते थे। दोनों के सामने दूध की प्यालियाँ पहुँच गईं। कृष्ण और बलराम ने बड़े संतोष के साथ दुग्धपान किया। बलराम ने गोकुल में जो महान् कार्य किया उसका सारा वृत्त कह सुनाया।

एक दिन बलराम किसी जगह बैठा था, उसने कालिन्दी को पुकारकर आदेश दिया कि वह जहाँ बैठा है, वहीं पहुँचकर उसे नहला दे। पर कालिन्दी आने से रही, इस लिए बलराम क्रुद्ध हो उठा। कालिन्दी में इतना साहस कि वह बलराम की आज्ञा का उल्लंघन करे! उसके आदेश की अवहेलना करनेवाले को उचित दण्ड मिलना ही चाहिए। बलराम ने थोड़ी देर के लिए चिन्तन किया। कालिन्दी को कैसा दण्ड दिया जाए। उस पर उसने अपने हल को कालिन्दी की ओर इस तरह बढ़ाया कि वृन्दावन तक कालिन्दी की एक नहर बन गई। उससे गोपकों का बड़ा ही उपकार हुआ।

यों कुछ और दिन बीत गये। एक दिन कृष्ण ने यादवों की सभा में एक प्रस्ताव रखा—



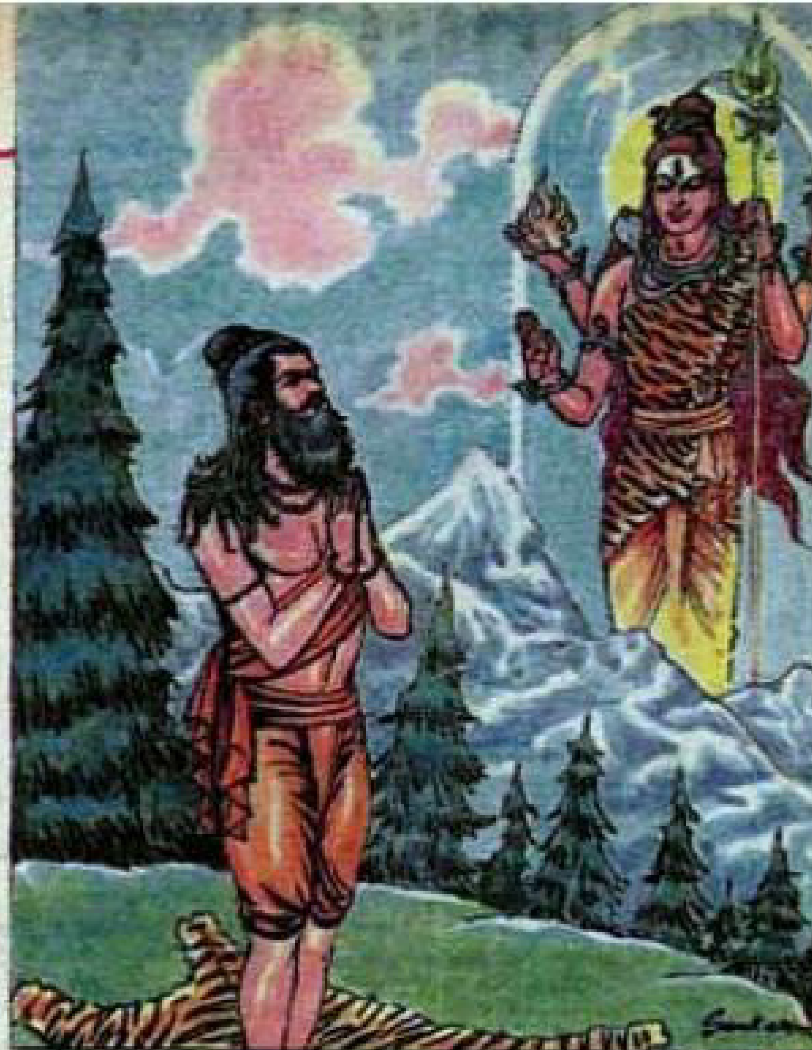
"हम जिस मथुरा नगरी में रहते हैं, ऐसी सुंदर नगरी विश्व में और कहीं नहीं है। मथुरा जैसा क्षेत्र अन्यत्र नहीं है। वैसे हमारा पाल-पोस गोकुल में हुआ है अवश्य, पर हमारी जन्म भूमि यही नगरी है। यहाँ लौटकर ही हमने सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं। पर यहाँ शत्रुओं का आतंक दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। आप लोगों ने स्वयं देखा है, विश्व भर के सारे राजा जरासंध से मिलकर किस प्रकार अत्याचार कर बैठे हैं? जब शत्रु हम पर अचानक आक्रमण करता है तो हमारा बड़ा नुकसान होता है। इस लिए क्या यह उत्तम नहीं होगा कि हम इस स्थान को छोड़कर कहीं और चले जाएं ? मैं इस संबंध में पिछले कुछ दिन बराबर सोच रहा हूँ। अगर हम पश्चिम की ओर समुद्री तट पर कोई अच्छा-सा स्थान [illegible] सकें, तो एक नई नगरी वहाँ बसा सकते हैं [illegible] हमारे नये निवास के लिए मैं एक अच्छे प्रदेश [illegible] चुनाव करता हूँ, वहाँ जाकर हम लोग सुख [illegible] संतोष के साथ अपने दिन बिताएँगे। इस के [illegible] में आप लोगों के विचार मैं जानता चाहता हूँ। [illegible]

कृष्ण का प्रस्ताव यादव लोगों को उचित [illegible] लगा। जरासंध का वध करना सहज संभव न[illegible] है, उसके साथ अपार सेना है। जरासंध के सा[illegible] युद्ध किया जा सकता है, परंतु उसका अंत कर[illegible] उतना ही कठीन है। युद्ध में दोनों दलों के लो[illegible] का सर्वनाश अवश्यंभावी है। पिछली [illegible] जरासंध ने जो उत्पात मचाया था, उसे सब दे[illegible] चुके थे। कितने ही योद्धाओं को अंतिम साँ[illegible] लेनी पड़ी थी। आखिर युद्ध के द्वारा किसी [illegible] लाभ तो हुआ नहीं। फिर क्यों न उसे रोकने [illegible] कुछ उपाय करें ? हो सकता है, जरासंध वहाँ [illegible] पहुँच सकता है। पर कहा नहीं जा सकता [illegible] ऐसा ही होगा। कृष्ण का प्रस्ताव बड़ा समयोचि[illegible] है। इस लिए यादवों के नेताओं को लगा [illegible] अगर कृष्ण कोई सुरक्षित स्थान बनाता है तो [illegible] पर जाकर बसना हितकर होगा।

कृष्ण ने अपने मन में वह स्थान निश्चित कि[illegible] जहाँ पर सभी यादवों को ले जाना है। तब जा[illegible] सब को यात्रा की तैयारियाँ शुरू करनेका आदे[illegible] दिया।

इसी समय एक समाचार मिला कि कालय[illegible] अपनी सेना के साथ मथुरा नगरी पर आक्रम[illegible]

करने निकल पड़ा है और जरासंध भी ऐसी ही कुछ योजना बना रहा है। यह खबर पाकर कृष्ण ने यादवों को समझाया— "अब हम लोग आज ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे। यही समय अधिक शुभप्रद है! अगर हम देर करते हैं तो और एक युद्ध होगा। युद्ध करने से हम डरते तो हैं नहीं। पर क्यों बेगुनाहों का नाश होता रहे? कालयवन के यहाँ पहुँचने से पहले ही हम इस नगरी को छोड़ चले। अब यहाँ अधिक समय तक रहना किसी के लिए कल्याणप्रद नहीं है। अगर नया स्थान बनाने का विचार आपको ठीक लगता है तो आज ही यहाँ से निकलना उचित होगा।"



वसुदेव, अग्रसेन, बलराम और कृष्ण तथा उनके साथ वृष्टि एवं अंधक वीर, और उनके परिवार असंख्य हाथी, घोड़े और रथों के साथ अपनी अपनी संपत्ति लेकर मथुरा छोड़ पश्चिम की दिशा में निकल पड़े। कई दिनों की यात्रा के बाद वे पश्चिम समुद्र के तट पर पहुँचे। वह अनेक वनों से पूर्ण रेतीला प्रदेश था। वहाँ की प्राकृतिक सुंदरता देखते ही बनती थी। शाम को सूरज जब पश्चिमी समुद्र में डूबने को होता, तो बड़े ही रंगबिरंगे दृश्यों का निर्माण होता। समुद्री तट की जलवायु भी बड़ी सुहावनी थी। समुद्र की लहरें जब किनारे पर आकर टकराती तो एक मनोहारी संगीत उमड़ पड़ता। सुबह-शाम समुद्र के तट पर ही रहने को जी करता। उस स्थान का एक और भी खास आकर्षण था। उसी प्रदेश में प्राचीन काल में एकलव्य ने द्रोणाचार्य की पूजा की थी।

स्थान के संबंध में निर्णय करनेके बाद भवन बनाये गये, मार्गों की रचना हुई, उद्यानों का निर्माण किया गया और उस नगरी का नाम द्वारवती रखा गया। सब लोगों के लिए नगर के निवास के योग्य सारे प्रबंध किये गये। सभी को अब शत्रु का भय न रहा। वे चिन्तारहित सुखपूर्ण जीवन बिताने लगे। इधर द्वारवती का निर्माण हुआ और उधर कुछ और घटनाएँ घटीं। उनकी कहानी यों है—

एक समय वृष्टि और अंधक वंशों का एक गुरु था, जिसका नाम था गर्ग। वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था। एक बार गर्ग यादवों की नगरी में पहुँचा, तो उसका उपहास किया— 'गर्ग पुरुष नहीं, नारी है।' यह उपहास सुनकर यादव



मौन रहे, किसी ने अपना आक्षेप प्रकट नहीं किया ।

इस पर गर्ग आग-बबूला हो गया, उसने जंगल में जाकर लोह-चूर्ण का सेवन करते हुए बारह वर्ष पर्यंत कठोर तपस्या की, शिवजी को प्रसन्न किया और वृष्टि तथा अंधक वंशों को निर्मूल करनेवाले पुत्र का वरदान माँग लिया। वर-प्राप्ति का समाचार पाते ही पुत्रहीन यवनेश्वर ने उसको बुला लिया और अपनी गायों के रेवड़ के बीच उसके रहने का प्रबंध किया। गर्ग को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इस लिए उसको सारी सुविधाएँ दी गईं। उसके लिए एक उत्तम भवन बना दिया गया, जिसके चारों ओर उद्यान और गोशालाएँ निर्मित हुई। गार्ग को प्राप्त वरदान को माँगने का अवसर ही न आए ऐसी सब व्यव की गई ।

इस प्रकार गर्ग गायों के बीच आराम ज़िंदगी काटने लगा। एक समय की बात है, अप्सरा गोपी के रूप में उसके पास आन पहुँच ईश्वर के आदेशानुसार वह गर्भवती बनी उसने काल-यवन को जन्म दिया। यवन राजा उस् बालक को अपने पुत्र के रूप में पाल-प कर बड़ा किया। कालयवन एक अत्यन्त तेज तथा पराक्रमी युवक के रूप में विकसित हुअ वह किसी की परवाह नहीं किया करता था

एक बार नारद यवन राजा के पास आय कालयवन ने उस से पूछा— "संसार में सब महान पराक्रमी वीर कौन है ?"

"आजकल यादवों से बढ़कर और महान वीर मुझे तो विश्व में दिखाई नहीं देते अपना अभिप्राय बताते हुए नारद ने यादवों भारी प्रशंसा की । नारद की ये बातें सुन कालयवन के मन में यादवों के प्रति अत्यन्त ई पैदा हुई। शकवंशी राजा तथा हिमालय में निव करनेवाले दस्यु तो उसकी उंगलियों पर नाचते उन सब को एकत्रित कर कालयवन ने एक का संगठन किया । हाथी, घोड़े और गधों बड़ी संख्या में साथ लिये कालयवन अपनी के साथ मथुरा पर आक्रमण करने निकल पड़

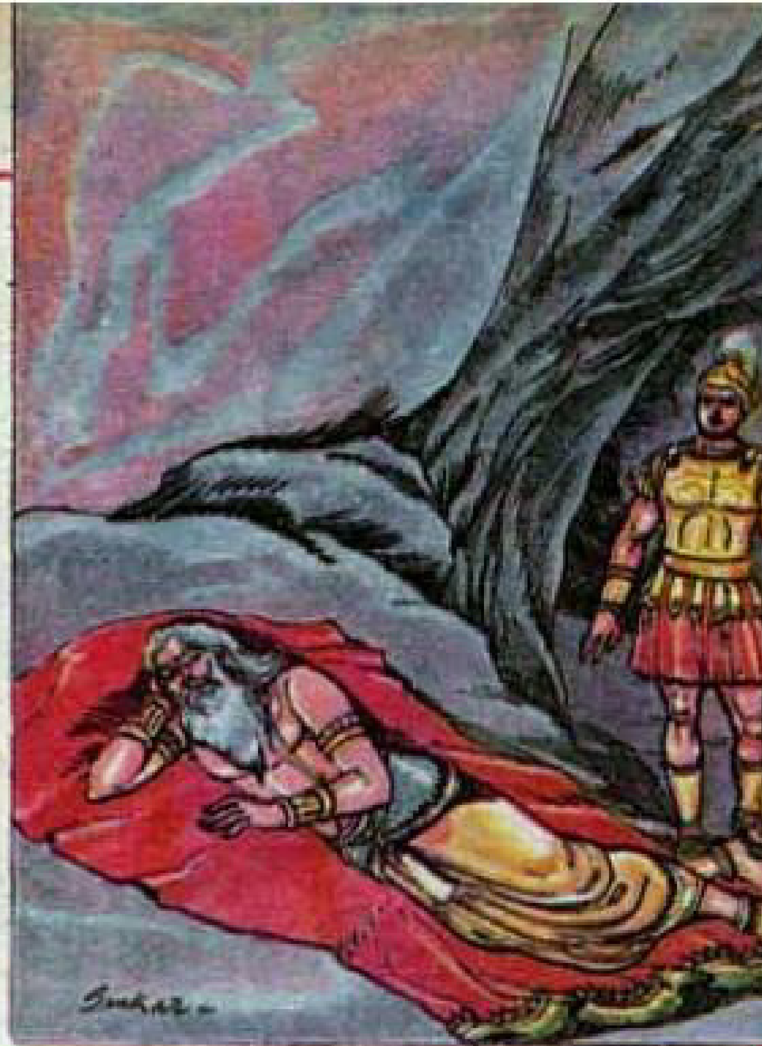
नारद के मुँह से यह सारा वृत्त कृष्ण ने लिया था । तत्कालीन स्थिति पर सम्यक् वि करके ही मथुरा छोड़नेका निश्चय हुआ था। कृ

ने इसकी सूचना पहले ही यादवों को दे रखी थी।

इसके बाद कृष्ण ने एक और कार्य भी संपन्न किया। उसने एक पात्र में कालसर्प को रखवा दिया और उस पर कपड़ा बाँध दिया। अपने एक दूतके साथ यह पात्र संदेश के साथ कालयवन के पास भेज दिया— "कृष्ण का पराक्रम इस पात्र में रखे काल सर्प-सा है !"

यह संदेश सुनकर कालयवन ने तत्काल तो कुछ उत्तर न दिया। कालसर्प वाले पात्र में उसने कुछ चींटों को डालकर फिर उस को कपड़े से लपेटा और उसे फिर कृष्ण को वापस देनेके लिए कहा। अर्थात् कालयवन ने कृष्ण को यह संदेश भेजा कि 'तुम चाहे कितने ही बलवान क्यों न हो, अनेकों के बीच तुम अकेले फँस जाओगे तो तुम्हारा पराक्रम निरर्थक सिद्ध होगा।' उसके इसी भाव को समझकर कृष्ण यादवों के साथ मथुरा छोड़कर चल पड़ा था।

इसके बाद कृष्ण अकेला निःशस्त्र हो द्वारवती से निकला और अपने शत्रु के नगर में पहुँचा। वहाँ कृष्ण को सब ने पहचान लिया और एक ही हो हल्ला मचाया—" इस कृष्ण को पकड़ लो, घेर लो इसे।" कालयवन को भी कृष्ण के आगमन का समाचार मिला। वह भी निःशस्त्र हो पैदल चलकर कृष्ण के समीप आया। कृष्ण ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, पर तत्क्षण उसे वापस खींच लिया, और द्रुत गति से एक गुफा के भीतर प्रवेश किया। उस गुफा में मुचिकुन्द नामक एक व्यक्ति सो रहा था। मुचिकुन्द मांधाता का पुत्र



था। उसने देवासुरों के संग्राम में बहुत समय तक युद्ध करके देवताओं को विजय दिलाई थी, और उसके बाद अपनी थकावट मिटाने के लिए वह सो रहा था। सोने के पहले उसने एक वर प्राप्त किया था—जो व्यक्ति उसकी निद्रा का भंग करेगा, उसको मुचिकुंद की दृष्टि ही भस्म कर देगी। कृष्ण यह सब जानता था। गुफ़ा में प्रवेश करते ही कृष्ण मुचिकुन्द केसिरहाने की ओर छिप गया।

कालयवन कृष्ण के पीछे गुफ़ा में घुस गया। सोनेवाले मुचिकुन्द को उसने इस भ्रम में देखा कि वही कृष्ण है। उस पर लात मार कर बोला— "तुम इस प्रकार अपनी मौत से बचना चाहते हो ? उठो, तुम्हारे बल-पराक्रम का पता हमें चल



गया है ।" यों कहते हुए उसका बहुत उपहास किया और और दो-चार लातें जमा दीं ।

नींद से जागकर मुचिकुन्द उठ बैठा तो उसने कालयवन की ओर अपनी क्रोधभरी दृष्टि दौड़ाई । दूसरे ही क्षण कालयवन वज्रपात से भस्म होनेवाले वृक्ष की भाँति जलकर राख हो गया ।

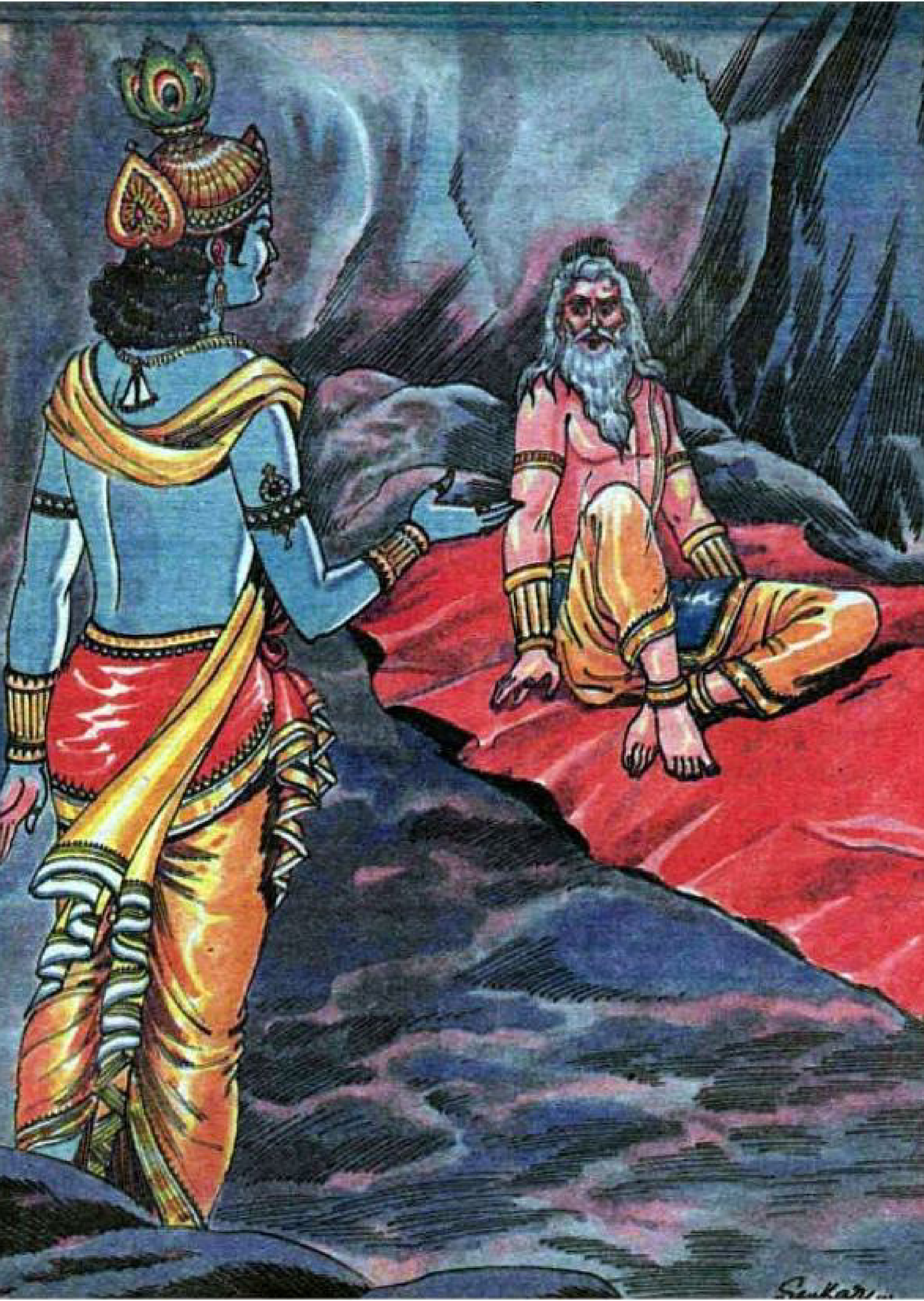
तब कृष्ण मुचिकुन्द के सामने आकर बोला— "मित्र, नारद के द्वारा मुझे यह समाचार मिला कि आप यहाँ पर विश्राम कर रहे हैं । मुझे संतोष है कि आप के द्वारा मेरा कार्य अच्छी तरह संपन्न हुआ । अब आप मुझे यहाँ से चले जानेकी अनुमति दे देंगे ?"

कृष्ण को दखते हुए मुचिकुन्द ने प्रश्न किया— "मैं पूछ सकता हूँ, आप कौन हैं ? किस काम से आप यहाँ पधारे हैं ? मेरी निद्रा में भंग डालनेवाला वह व्यक्ति कौन था ? मैं यहाँ कब से सो रहा हूँ ? अगर आप को कुछ पता हो तो मुझे बता सकेंगे ?"

कृष्ण ने कहा— "नहुष चन्द्र की समता करनेवाले व्यक्ति हैं । उनका पुत्र है ययाती । ययाती के पांच पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र हैं यदु । यदु की संतानों में एक वसुदेव हुआ । वसुदेव के एक देवकी नाम की पत्नी थी, उनका पुत्र मैं । वसुदेव के एक दूसरी रोहिणी नाम की पत्नी थी, उससे बलराम का जन्म हुआ । मैं बलराम का छोटा भाई हूँ । मुझे कृष्ण कहते हैं । आपकी क्रोधाग्नि में जो जल गया, वह व्यक्ति था सुप्रसिद्ध कालयवन । उसका जन्म वरदान से हुआ था और किसी प्रकार उसकी मृत्यु असंभव थी । वह मेरा शत्रु था । मैंने सुना है कि आपका जन्म त्रेता युग में हुआ था । अभी तो कलि युग आने को है ।"

मुचिकुन्द गुफा से बाहर निकला तो उसके मन में पुनः राज्य-शासन करने की बात आयी । परंतु पृथ्वी पर निवास करनेवाले मनुष्यों की अल्पायु, दुर्बुद्धि एवं अन्य साहस देखकर उसने राज्य करने की कामना छोड़ दी । तपस्या करनेके इरादे से वह हिमालय चला गया ।

अपने प्रमुख शत्रु कालयवन की मृत्यु के पश्चात कृष्ण ने शत्रु-पक्ष के प्रमुख वीरों का अपने दिव्यास्त्रों से संहार किया और अन्य सेनाओं को अपने अधीन कर लिया । फिर कृष्ण अपने वंशवालों से मिलने वहाँ से चला गया ।



इस घटना के बाद ही द्वारवती का निर्माण हुआ ।

द्वारवती के निर्माण के लिए कृष्ण ने विश्वकर्मा की सहायता पाने का निश्चय किया और उसका स्मरण किया । तुरन्त ही विश्वकर्मा प्रत्यक्ष हुआ और उसने कृष्ण से पूछा—"आप ने कैसे मेरा स्मरण किया ? मैं आप की क्या सहायता कर सकता हूँ ? मुझ से जो बनेगा, मैं अवश्य करूँगा ।"

कृष्ण ने निवेदन किया— "स्वर्ग में जैसे इन्द नगरी श्रेष्ठ है, उसी के समान एक श्रेष्ठ नगरी पृथ्वी पर बनाकर उसे मुझे सौंप सकेंगे ?"

"इस सारी जनता को बसाने लायक नगर का निर्माण करने के लिए यह भूमि पर्याप्त नहीं है । हाँ, समुद्र थोड़ा पीछे हट गया तो यहीं एक विशाल और सुन्दर नगरी बनाना संभव है ।" विश्वकर्मा ने कहा ।

इस पर कृष्ण ने समुद्र की प्रार्थना की । समुद्र प्रत्यक्ष अवतीर्ण हुआ और चारों तरफ़ बारह योजनों की भूमि छोड़कर स्वयं पीछे हट गया ।

तब विश्वकर्मा ने उस स्थान पर एक दिव्य नगरी का निर्माण किया । स्वर्णिम दुर्ग, गगनचुंबी मणिमय गोपुर, ऊँचे ऊँचे महलों की पंक्तियाँ, अद्भुत भवन, प्रशस्त राजपथ, चैत्य, सभा-भवन, मण्डप, तोरण, बुर्ज़, कुएँ, सरोवर, शिलोद्यान आदि की रचना की गई । नगर के मध्य में एक विशाल राजप्रासाद का निर्माण किया गया । उस राजप्रासाद की चारों ओर बढ़िया उद्यान बनाए गये । उद्यानों में बने फुआरों से जब निर्मल पानी की धाराएँ फूट निकलती तो ऐसा दृश्य दिखाई देता कि बस देखते ही रहें । चाँदनी रातों में इन उद्यानों में अवर्णनीय शोभा दिखाई देती । कृष्ण के बैठने के लिए एक सुवर्ण-सिंहासन बनाया गया । ऐसा सिंहासन आज तक किसी ने और कहीं नहीं देखा था । फिर राजभवन में कृष्ण एक ऊँचे आसन पर विराजमान हुए । प्रमुख यादवों की एक सभा आयोजित की गई । उस सभा में कृष्ण ने विश्वकर्मा का समुचित रूप में सत्कार किया और उन्हें इन्द्रलोक भेज दिया ।





अपने पिता के घर रहते हुए एक रात श्रीकृष्ण ने किसी समस्या पर गंभीर विचार किया। अपने वंश के लोगों के लिये वैभवपूर्ण द्वारका नगर का निर्माण तो हो गया, परन्तु सुखपूर्वक जीवन बिताने के लिये किसी स्थायी आजीविका का प्रबंध अभी तक नहीं हो पाया है। इसका हल करने के लिये कृष्ण ने शंखनिधि का स्मरण किया। शंखनिधि ने तत्काल प्रत्यक्ष होकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और निवेदन किया–"भगवन्, आप ने मेरा स्मरण क्यों किया? आप का आदेश प्राप्त होते ही मैं उसका पालन करूँगी।"

"हे निधिदेवी! दरिद्र व्यक्ति मृत के समान है। मेरे कुल के अनाथ, और अति दीन-हीन लोगों को देख मेरा मन अशांत है। तुम ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे कि, मेरा सब का सब परिवार सुख-समृद्धि से भरा-पूरा हो।" कृष्ण ने उसे आदेश दिया।

"जो आज्ञा।" कहकर शंखनिधि तत्काल अदृश्य हो गयी और जाकर बाकी अष्ट निधियों से मिलकर उसने उन्हें श्रीकृष्ण की कामना का परिचय दिया। उसी क्षण समस्त द्वारका नगरी नवनिधियों से भर गयी। अब उस नगर में कोई दीन-दरिद्र नहीं रहा।

इसी प्रकार किसी संदर्भ में श्रीकृष्ण ने वायुदेव का स्मरण किया। वायुदेव भी प्रत्यक्ष हो श्रीकृष्ण के सामने खड़े हो गये।



"वायुदेव, बल-पराक्रम में आपका सानी कोई नहीं है। मेरा एक उपकार करो। इन्द्र के लिये विश्वकर्मा ने सुधर्मा नाम के एक सभाभवन का निर्माण किया है। हमारे यादव कुल के सभा-समारोह के लिये भी एक विशाल भवन की आवश्यकता है। इसलिये तुम इन्द्र को मेरी यह इच्छा सुनाकर वह सभा-भवन लाकर यहाँ रख दो।" कृष्ण ने कहा।

वायुदेव ने श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर इन्द्र-लोक में प्रवेश किया। देवताओं को श्रीकृष्ण की कामना का परिचय देकर और उनकी स्वीकृति लेकर वह उस सुधर्मा सभा-भवन को उठाकर द्वारका में ले आया और श्रीकृष्ण को सौंपकर चला गया।

इसी प्रकार समस्त लोकों में स्थित श्रेष्ठतम वस्तुओं को मँगवाकर श्रीकृष्ण ने द्वारका नगर खूब सुशोभित किया। इसी प्रकार शासन का परीक्षण करते हुए श्रीकृष्ण ने प्रमुख पदों पर उचित व्यक्तियों को नियुक्त किया। उस नगर का राज-पद उग्रसेन को दिया गया। इसके बाद राजपुरोहित-पद पर काश्यप नामक ब्राह्मण को, मंत्री-पद विकद्र को और अन्य विविध शासन विभाग दस प्रमुख यादवों को सौंपे गये। दारुक श्रीकृष्ण का सारथी बना। अस्त्र-शस्त्र विद्याओं में द्रोणाचार्य की समता कर सकनेवाले सात्यकी को श्रीकृष्ण ने सेनापति-पद पर नियुक्त किया।

इस प्रकार जनता के जीवन को सुव्यवस्थित रूप देने पर द्वारका नगरी भूलोक के स्वर्ग जैसी सुसंपन्न व सुशोभित लगने लगी।

रैवत नामक व्यक्ति के रेवती नाम की एक सुन्दर कन्या थी। उसके साथ बलराम का विवाह हो गया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण का भी विवाह संपन्न हुआ। उस विवाह की अपनी एक कहानी है।

विन्ध्याचल के दक्षिण में विदर्भ नामक एक देश था। इस में कुंडिन राज्य पर

राजा भीष्मक शासन करते थे। उनके रुक्मि नामक एक पुत्र था। यह रुक्मि एक असाधारण वीर था। उसने द्रुम नाम के गुरु से अनेक शस्त्र, तथा परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था। वह प्रारम्भ से ही कृष्ण के बारे में द्वेष-भावना रखता था।

रुक्मि के रुक्मिणी नामक एक बहन थी। वह अपूर्व सुन्दरी और तेजस्विनी थी। उसकी महानता का संक्षेप में परिचय दिया जा सकता है। वह श्रीकृष्ण के प्रेम का पात्र बनी। मन्मथ ने पुन: उसके गर्भ से जन्म धारण किया। मुनियों ने एक देवी के रूप में उसकी आराधना की। इस से अधिक उसका क्या परिचय दिया जाय?



रुक्मिणी के गुणविशेषों की चर्चा श्रीकृष्ण ने अपने कुछ निकट व्यक्तियों के मुँह से सुनी। इसी प्रकार रुक्मिणी ने भी अनेक लोगों से श्रीकृष्ण के बड़प्पन की कथाएँ सुनी थी। दोनों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति अनुराग अंकुरित हुआ। परिणामस्वरूप दोनों एक दूसरे के लिये व्याकुल रहने लगे।

श्रीकृष्ण को पूरा विश्वास था, कि उन्हों ने जिस युवति को अपने मन में वर लिया है उससे वंचित रखने की शक्ति सारे संसार में कोई नहीं रखता। इधर रुक्मिणी भी सदा केवल कृष्ण का ही ध्यान किया करती थी। मगर रुक्मि को वह कतई पसन्द नहीं था। उसका विचार था, कि नन्द गोप के यहाँ गायें चरानेवाले के साथ हमारे वंश का रिश्ता कैसे संभव है?

इसी समय मगध देश के गिरिव्रजपुर के राजा जरासन्ध ने रुक्मि के पास संदेश भेजा, कि वह अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ कर दे। शिशुपाल जरासन्ध का पालित पुत्र था। वास्तव में शिशुपाल का पिता दमघोष; और उसकी माँ श्रुतश्रवा वसुदेव की बहन थी। दमघोष तथा जरासंध ज्ञाती थे,



इसलिये जरासन्ध की माँग पर दमघोष ने अपने चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र शिशुपाल उसको दत्तक दिया था।

शिशुपाल का दूसरा नाम था सुनीथ। जरासन्ध का संदेश पाकर रुक्मिणी के पिता भीष्मक ने शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह संपन्न करने के लिये स्वीकृति दी। वास्तव में राजा भीष्मक रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ करने के पक्ष में थे; मगर वे जानते थे कि उनका पुत्र रुक्मि श्रीकृष्ण से वैमनस्य रखता है। रुक्मि ने अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करा देने की इच्छा प्रकट की। अपने पुत्र को भीष्मक अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे इसलिये उन्हों ने अनिच्छा पूर्वक ही यह स्वीकृति दी थी।

अपनी इच्छा की पूर्ति होते देख प्रसन्न होकर जरासन्ध ने अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों के नाम शुभ-विवाह के निमन्त्रण-पत्र एवं संदेश भेज दिये। अंग, वंग, कलिंग, पौण्ड्र, पांड्य, काश, करुश आदि अनेक राजा विवाह में सम्मिलित होने के लिये चल पड़े। शिशुपाल के साथ चलनेवाले लोगों में करुश राजकुमार, पौण्ड्रक वासुदेव, एकलव्य का पुत्र वीर्यवन्त, दन्तवक्त्र का पुत्र सुवक्र तथा अन्य अनेक राजकुमार भी थे। इस प्रकार सारे दल-बल के साथ जरासन्ध कुंडिन नगर में आ पहुँचे।

रुक्मि ने भी अनेक रथों, हाथियों तथा घोड़ों के साथ अगवानी करके जरासन्ध का स्वागत किया। उसका यथोचित सत्कार करके उसके निवास का प्रबंध किया।

पुरोहितों ने शुभमुहूर्त देखकर अगले दिन के लिये ही लग्न तिथि निश्चित की। तत्काल सारे नगर में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया। समस्त राजाओं ने अपने ओहदे के अनुरूप अपनी सेनाओं को सुसज्जित किया। शिशुपाल वर के वेष में अपने मित्रों के साथ अत्यंत उल्लास का अनुभव कर रहा था।

लगभग इसी समय द्वारका में नारदमुनि आ पहुँचे। गोरा शरीर, स्वर्णिम वर्ण में सुशोभित जटाबंध, देहपर धारण किया गया चर्म, सिरपर मयूर पंखों का छत्र, वायु के आघात से प्रकंपित वीणा–इस आकृति को द्वारकावासियों ने विस्मयपूर्वक देखा। नारद के आने का समाचार सुनकर महाराजा उग्रसेन, वसुदेव, कृष्ण-बलराम तथा अन्य प्रमुख यादवों ने आगे बढ़कर नारद का स्वागत किया और उन्हें सादर लिवा लाकर सुधर्म सभाभवन में एक स्वर्णिम आसन पर बिठाया तथा अर्घ्य-पाद्य आदि से सत्कार किया।

कृष्ण ने सब को उचित आसनों पर बिठाया और खुद भी अपने आसन पर बैठ गये। फिर बोले–"नारद, तुम सकुशल हो न? सारे जगत् के लोग और देवता कुशल हैं न?"

खुश होकर नारद बोले–

"आप के स्मरण मात्र से प्राणियों का शुभ हो जाता है। सभी युगों में सदा सर्वदा आपही की चरण-सेवा में लगे हुए हम जैसे लोगों के कुशल क्षेम पूछने की आवश्यकता ही क्या?"

यों उत्तर देकर नारद ने अपनी वीणा की तंत्रियों को झंकृत कर कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये अत्यन्त मधुर स्वर में आलाप किया। मत्स्य अवतार से लेकर रामावतार तक के सारे अवतारों की गाथाओं का सुमधुर गायन उसने किया। इसके बाद





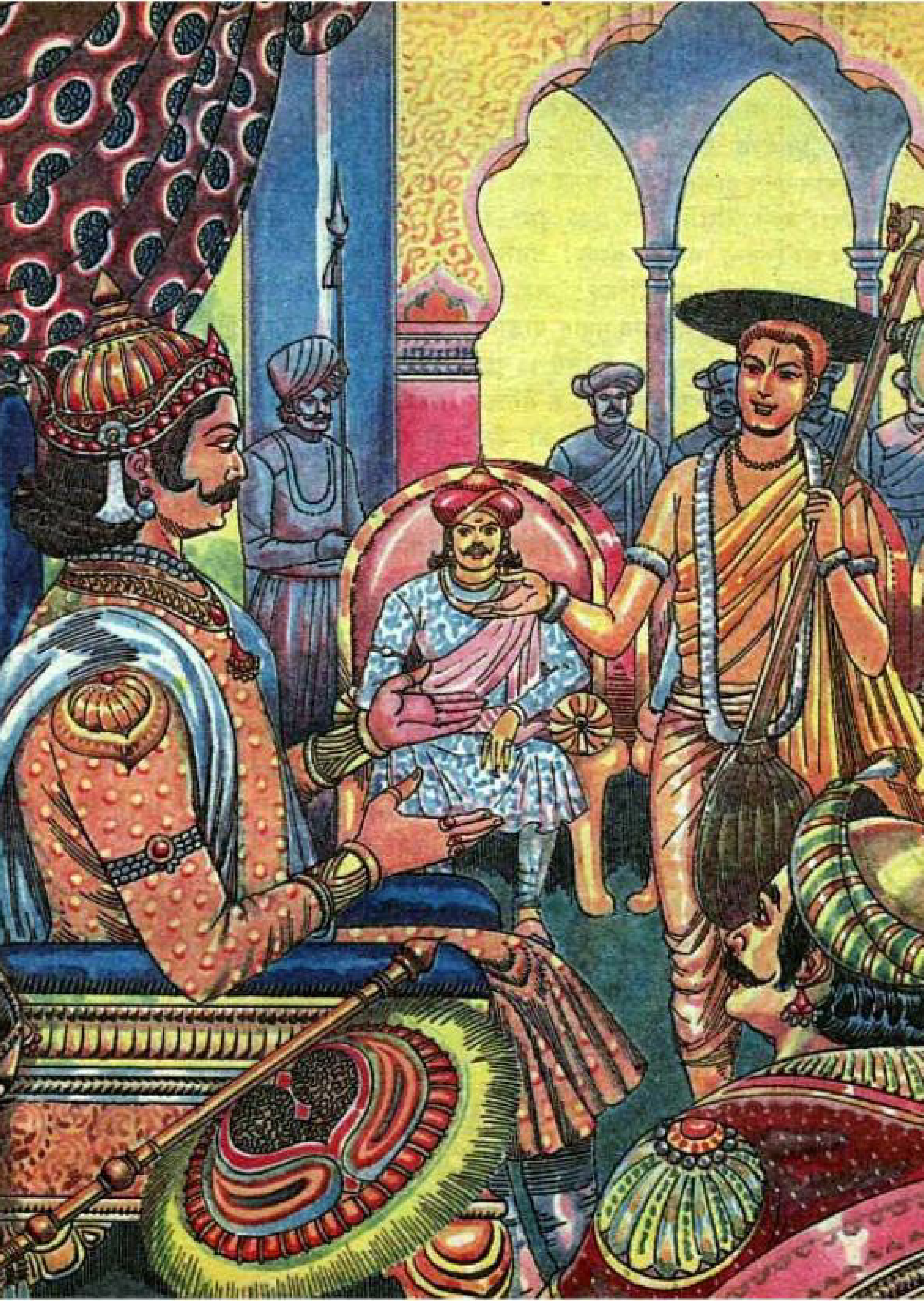
कृष्ण की बाल-लीलाओं, उसकी साहस-पराक्रम की विविध कथाएँ, गोवर्धनोद्धारण, कंसवध इत्यादि कृत्यों की प्रस्तुति में गायन किया। नारद के गीत सुनकर सब द्वारकावासी तन्मय हो उठे। नारद के गीतों के आराध्यदेव श्रीकृष्ण द्वारकावासियों के सखा-मित्र व प्रियतम नेता बने इस बात पर उन्हें आनन्द हुआ। गीत समाप्त कर नारद ने वीणा एक तरफ रख दी और इसके बाद उसके मुंह से सुख-संवाद सुनने के लिये लोग आतुर हो उठे।

श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर नारद की ओर दृष्टि दौड़ायी और कहा–"नारद, तुम ने मेरी समस्त लीलाओं का परिचय दिया। बस, अब बताओ, तुम्हारे यहाँ आने का कारण क्या है। तुम अकारण तो कहीं जाते नहीं, यह बात सर्व-विदित है।"

इसपर नारद ने अपने आने का कारण इस तरह कहा–

"दक्षिणी समुद्रतट पर गोकर्ण नामक एक दिव्य पुण्यतीर्थ है। वहाँ शिवशंकर दिव्य लिंगाकृति में विद्यमान हैं। उस ईश्वर के समक्ष मैं ने वीणा-वादन किया, उसका संकीर्तन किया, भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चा की और वहाँ से कुबेर के दर्शन के लिये चल पड़ा। बीच मार्ग में मैं ने कुंडिनपुर के राजा भीष्मक के दर्शन किये। भीष्मक ने मेरा समुचित स्वागत-सत्कार किया और मुझे संतुष्ट किया। वहाँ मैं ने जरासन्ध से लेकर पृथ्वी पर निवास करने-वाले सभी राजाओं को देखा। मैं ने भीष्मक से पूछा–"ये सब लोग यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हुए हैं?" भीष्मक ने उत्तर में कहा–"मै अपनी पुत्री रुक्मिणी का विवाह चेदि-राजा शिशुपालके साथ संपन्न कर रहा हूँ। कल प्रातःकाल ही विवाह का मुहूर्त निश्चित है।" मैं यह समाचार आप को देने के लिये ही यहाँ आया हूँ।"

नारद ने आगे कहा–"आपने अपने मन में रुक्मिणी की कामना की है। परन्तु



ीष्मक ने तो उसका विवाह आप के शत्रु के ाथ निश्चित किया है। यह विवाह निर्विघ्न संपन्न हो सकता है। मगर आप ही वचार करके देखिये, अगर ऐसा हुआ तो ाप का कितना अपयश होगा! इसलिये ब आप एक काम कीजिये! महाराज ग्रसेन, सात्यकी तथा अन्य महान् योद्धाओं ो साथ लेकर प्रस्थान कीजिये। वहाँ पस्थित सभी राजाओं और उन के सैनिकों ो मार भगाकर उस कन्या को उठा ाइये। आप के हाथ सुदर्शन चक्र के ीते आप के लिये कोई भी कार्य असंभव हीं है। एक बात और सुनिये, मैं ने दृश्य रूप में गगन-मार्ग से प्रयाण करते ए देखा कि, रुक्मिणी राजोद्यान में अपनी खियों के बीच बैठकर आंसू बहा रही ी। मुझे तो ऐसे लगा कि वह सदा ाप ही का स्मरण करती है, आपके र्शनों के लिये लालायित है और आप को ाने के लिये अत्यंत आतुर है। आप के यान-स्मरण के बिना उसके मन में और कोई विचार ही नहीं है। बेचारी उस कन्या की स्थिति का वर्णन ही मैं नहीं कर सकता! उसके चिकने कपोल आँसुओं से तर हैं; उसकी माँग छितरी हुई व बाल बिखरे हुए हैं! ऐसा प्रतीत होता है कि किसी निश्वास के साथ उसके प्राण न निकल जायें। उसकी देह कंपित है और उसकी सखियाँ उसके उपचार में लगी हुई हैं। मगर उनके उपचारों का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। रुक्मिणी कह रही थी कि उसकी सखियाँ आप का नाम छोड़कर किसी और का नाम मुंह में लाये तो वह मर जायेगी। उसकी यह हालत देखकर कठोर से कठोर व्यक्ति का दिल भी पिघल जाएगा। आप तो स्वभाव से ही करुणा-सिन्धु हैं। आप अब चुप नहीं रहिये, उस रुक्मिणी के प्राण किसी तरह से बचाइये। आप का यह प्रमुख कर्तव्य है। अब मैं बिदा लेता हूँ, आज्ञा दीजिये।"

इतना वृत्तान्त सुनाकर नारद अपने रास्ते चल पड़ा।





नारद ने श्रीकृष्ण को यह समाचार सुनाया कि दूसरे ही दिन रुक्मिणी का विवाह संपन्न होनेवाला है । फिर वे चले गये । अब श्रीकृष्ण ने अपने आप्त-जनों से कहा – "नारद मुनि ने हमारे हितैषि बनकर जो बातें कहीं, उनको आप सब ने अच्छी तरह सुन लिया है । अब विलंब क्यों करें ? हम अपना कार्य आरंभ करेंगे । रुक्मिणी का विवाह कल ही संपन्न होने जा रहा है । अगर हम अभी प्रस्थान न करें, तो विवाह-मुहूर्त से पहले वहाँ पहुँच नहीं पाएँगे । और ऐसे में विवाह संपन्न हो गया, तो रुक्मिणी का क्या हाल होगा । अत एव अब विलंब करना समीचीन न होगा । हम इसी समय कुंडिनपुर की ओर रवाना हो जायेंगे । आप लोग अपने वाहन तथा सेनाओं को तैयार रखिए । प्रस्थान के समय ध्यान में रहे कि सब से आगे सात्यकी, मध्य भाग में बलराम और अंत में महाराजा उग्रसेन रहें । मैं दारक को साथ लेकर सब प्रकार के शस्त्रों के साथ सब से पहले आगे बढ़ूँगा; और शिशुपाल, रुक्मि और जरासंध आदि को उचित पाठ पढ़ाकर रुक्मिणी को प्राप्त करूँगा ।"

इसके बाद सेनाओं के प्रस्थान की सूचक दुंदुभि बजाई गई । सारे यादवों ने यात्रा की यथोचित तैयारियाँ की । इन सब तैयारियों को देख श्रीकृष्ण के मन में अत्यन्त संतोष हुआ । ऐसा अपूर्व उत्साह श्रीकृष्ण ने पहले कभी नहीं देखा था । सब की तीव्र इच्छा थी कि श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के साथ ही विवाह करना चाहिए । अतः इसी समय अब द्वारका से कूच करना चाहते थे । सब में भरपूर



आलोचना की । कुछ लोगों ने कहा - "शिशुपाल तो कृष्ण का फुफेरा भाई है । इसलिए उसका विवाह देखने वे यहाँ पधारे हैं । "

तो कुछ और लोगों से शंका प्रदर्शित की - "यह नहीं हो सकता । श्रीकृष्ण तो जरासंध और शिशुपाल के प्रबल शत्रु हैं ।इस विवाह में संमिलित होने वे कैसे आएँगे ?"

कुछ औरों ने तर्क किया - "रुक्मिणी के विवाह जैसा समारोह फिर कोई कब और कहाँ देखेगा ? इस लिए अपनी आँखों को संतोष और तृप्ति देने के लिए कृष्ण का आज यहाँ आगमन हुआ है । "

रुक्मिणी को जब समाचार मिला कि श्रीकृष्ण समस्त यादवों के साथ पहुँच गये हैं, तो उसे लगा मानों ग्रीष्म ऋतु में तप्त पृथ्वी पर शीतल वर्षा हुई हो । वह अत्यन्त हर्षित हो उठी । वह मन में सोचने लगी - "मेरे इस दुर्भाग्य के दिन मेरा उद्धार करने ही श्रीकृष्ण पधारे हैं । सचमुच मेरा जन्म सार्थक हो गया । मेरी कामना पूरी हो गई । जाने कब मैं उनके दर्शन कर सकूँगी ?"

रुक्मिणी कृष्ण के बारे में तहर तरह की कल्पनाएँ करने लगी । उसने अपनी सखियों को कृष्ण की रोचक कथाएँ बार बार सुनायीं । अब उसके मन में दीनता के स्थान पर उत्साह उमड़ने लगा । कुछ समय पहले पूरी निराशा में डूबी रुक्मिणी अब अपने प्रिय श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आतुर हो उठी ।

उत्साह था । फिर सज-सँवर कर वे रथ पर आरूढ हुए और प्रस्थान किया ।

श्रीकृष्ण वर की भाँति वैभवपूर्ण यात्रा संपन्न करके विदर्भ देश में पहुँच गये । जब वे कुंडिनपुर नगरी के समीप आये तब रुक्मिणी के पिता भीष्मक ने आगे आकर उनका स्वागत किया और उन्हें एक विश्रामगृह में ले गये । वहाँ पर श्रीकृष्ण का यथोचित अतिथि-सत्कार किया । भीष्मक को श्रीकृष्ण के आगमन पर अतीव संतोष था । ऐसे अतिथि को पाकर वे फूला न समाये । उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने कुछ प्रिय सेवकों को नियुक्त किया ।

विवाह-समारोह में पधारे समस्त राजाओं ने श्रीकृष्ण के आगमन की अपने अपने ढंग से

रुक्मिणी का ऐसा उल्लास सखियों ने इससे पहले कभी नहीं देखा था ।

उधर श्रीकृष्ण भी अन्य सभी बातों का विचार छोड़ कर रुक्मिणी की स्मृति में डूब गये । वे सोचने लगे कि रुक्मिणी को कैसे देख पाएँगे ? उसका अपहरण कैसे करेंगे ? सामना करनेवाले शत्रुओं को कैसे पराजित करेंगे ? इस बात को कैसे मालूम कर लें कि रूक्मिणी ने सचमुच मन-ही-मन उनको वर लिया है ?

श्रीकृष्ण ने मन में और सोचा - "चाहे जो हो, अगर रुक्मिणी ने प्रणय की दृष्टि प्रसारित करके देखा तो देवताओं के रोकने पर भी मैं निश्चित ही उसको प्राप्त कर लूँगा । "

पूरब में पौ फटी । भँवरे कमलों पर गूँजने लगे । चक्रवालों का अंधापन जाता रहा, सरोवरों में हंस तैरने लगे । सूर्योदय हुआ । प्रातःकालीन क्रिया-कलाप समाप्त कर श्रीकृष्ण ने अपने को खूब अलंकृत किया । फिर बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने परिवार को लेकर विश्रामगृह से रथ पर आरूढ हो निकले । उनके मन में अत्यन्त बलवती थी रुक्मिणी को देखने की इच्छा ! उनका निश्चय था आज रुक्मिणी को यहाँ से द्वारका ले ही जाना है । दुष्ट रुक्मि की इच्छा को कभी पूरी नहीं होने देना है ।

उधर राजमहल में रुक्मिणी की सखियों ने उसका भली भाँति साज-सिंगार किया । श्रृंगार-प्रसाधन समाप्त होने पर रुक्मिणी एक सोने की पालकी पर सवार हो सखियों के साथ



चल पड़ी । नगरी के बाहर गौरी देवी का मंदिर बना था, उस गौरी की पूजा करनेके लिये वह पालकी में बैठी थी । मंदिर के निकट आते ही रुक्मिणी पालकी से उतर पड़ी और सखियों के साथ उसने मंदिर में प्रवेश किया । देवी को प्रणाम करके रुक्मिणी ने प्रार्थना की - "माते, मुझ पर अनुग्रह करके ऐसा कुछ कीजिए कि श्रीकृष्ण ही मुझे पति के रूप में प्राप्त हो । "

रुक्मिणी गौरी के मंदिर में पूजा समाप्त कर जब बाहर आई, ठीक उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित हुए और तब उन्होंने पहली बार रुक्मिणी को देखा । उन्हें ऐसा लगा मानो अभी अभी क्षीरसागर से लक्ष्मी देवी ऊपर



उठी हो । उन्हें ऐसा भी लगा कि ब्रह्मा की सृष्टि में ऐसा अलौकिक लावण्य अन्यत्र दुर्लभ है । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के बारे में जो कुछ सुना था, उसके आधार पर अब तक वे किसी प्रकार अपने ऊपर नियंत्रण रख सके थे; परंतु अब जब प्रत्यक्ष उसे देखा तो वे अपने प्रणय-उद्वेग पर नियंत्रण नहीं कर पाये ।

श्रीकृष्ण सोचने लगे, रुक्मिणी को अपना बनाने के लिए सौभाग्य से उचित स्थान और समय अभी प्राप्त है । इस अवसर को गँवाना मूर्खता होगी ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को इस समय पहली बार देखा । सखियों ने उसको बताया कि ये ही श्रीकृष्ण हैं । रुक्मिणी ने आँख भरकर श्रीकृष्ण को देख लिया । आज तक वह जिनके चिंतन और ध्यान में लगी थी, वे अचानक उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गये । वह एकदम आश्चर्य और आनन्द में डूब गयी । उसकी काया रोमांचित हो उठी । उसकी आँखों से आनंदाश्रू झर निकले । समाधिस्थ योगी की भाँति वह अपने आप में तन्मय हो गयी । उसकी इस हालत को देख सखियाँ भयभीत हो उठीं ।

इधर बलराम श्रीकृष्ण से आकर मिले । श्रीकृष्ण ने बलराम को अपनी योजना संक्षेप में बता दी । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को आलिंगन किया और उसको अपने रथ पर बिठा दिया । अब रुक्मिणी की सखियाँ घबड़ा गयीं । पासवाले सैनिक श्रीकृष्ण पर टूट पड़े । यह देख बलराम ने एक वृक्ष उठा लिया और आगे बढ़नेवाले रथों, हाथियों, घोड़ों और सैनिकों को मार-मार कर भगा दिया ।

यह हो-हल्ला सुनकर उग्रसेन, सात्यकी, शतद्युम्न, विदूरथ, प्रसेनजित्, वृष्णि, भोजाण्डक वीर इत्यादि अपने दल-बल के साथ आकर बलराम की सहायता करने लगे । उन सब लोगों ने श्रीकृष्ण को सलाह दी - "हे श्रीकृष्ण, आप रुक्मिणी को लेकर द्वारका की राह पकड़िए । इन सब लोगों को हम देख लेंगे । "

एक तरफ दोनों दलों के बीच संग्राम चल रहा था, दूसरी तरफ रुक्मिणी के बचे हुए अंगरक्षकों ने जाकर रुक्मिणी के अपहरण की कथा भीष्मक, जरासंध, शिशुपाल तथा उनके





साथ आये हुए राजाओं को सुनायी । यह समाचार पाकर सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ । वे सोचने लगे - "इतने सारे अतिरथी महारथियों के होते हुए कृष्ण ने यह कैसा दुस्साहस किया । कैसा है यह उसका अहंकार ! "

जरासंध की आँखें क्रोधवश लाल-पीली हो गईं और वह गरज उठा - "एक गोपक का पुत्र जगत्-विजेता के रूप में आया और उसने मेरा सब किया-कराया चौपट कर दिया । मैं अपनी समस्त सेना के साथ जाकर उस पर हमला करनेवाला हूँ । जो लोग मेरी मदद करने के लिए आना चाहते हैं, तैयार हो जाइए । "

आगे चल कर उसने घोषित किया - "द्वारका के लिए समुद्र ही दुर्ग बना हुआ है । अगर श्रीकृष्ण उसके अंदर भी प्रवेश करें, तो भी मैं उसको तथा उसके रिश्तेदारों को मार कर द्वारका को ध्वस्त करके रुक्मिणी को वापस ले आऊँगा । "

अब पौंड्रक वासुदेव ने जरासंध को रोक और बोल उठा - "आपके इस सेवक के होते हुए आप क्यों यह श्रम उठाना चाहते हैं ? मैं खुद जाकर उस चोर कृष्ण के टुकड़े-टुकड़े करूँगा और जंगली पक्षियों को स्वादिष्ट आहार दूँगा । इस पृथ्वी पर दो वासुदेव एक साथ नहीं रह सकते । इस भूल को सुधारने तथा आपको आनन्द प्रदान करने के लिए मुझे अच्छा अवसर मिल रहा है । मुझे और क्या चाहिए ? "

इस बीच एक भारी अस्त्र हाथ में लि[illegible] शिशुपाल उठ खड़ा हुआ और उच्च स्वर [illegible] बोला - "आप सब लोग रुक जाइए, को[illegible] आगे न बढ़े । जो कुछ हुआ, उसमें अपमान तो मेरा है । विवाह करने के उत्साह में आकर मैं ही इस प्रकार अपमानित हुआ हूँ । मेरे इस अस्त्र से मैं उस कृष्ण का तथा शेष समस्त यादवों का संहार करूँगा । इस प्रकार जरासंध का यह सेवक अपार यश प्राप्त करेगा । कोई सच्चा क्षत्रिय क्या पराये स्त्री की कामना करता है ? इस श्रीकृष्ण ने कैसा दुर्व्यवहार और अत्याचार किया है ? रिश्ते-ना[illegible] न रखनेवाले पशुओं के बीच पलकर बड़े हु[illegible] से क्या अपेक्षा कोई करे ? अतः कृष्ण [illegible]

वध करके रुक्मिणी को वापस ले आना इस क्षण मेरा प्रथम कर्तव्य है । "

जरासंध आदि राजा कवच धारण कर रथों पर सवार हो युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये । सारी सेना शंखनाद के साथ विविध वाद्य बजाते हुए ठाठ से द्वारका की ओर चल पड़ी । ये सब लोग शीघ्र ही रथ पर रुक्मिणी को ले जानेवाले कृष्ण और उनके पीछे जानेवाली यादव सेना के पास जा पहुँचे ।

बलराम तथा यादव वीरों ने अपनी सेनाओं को रोका और जरासंध के सैनिकों के साथ युद्ध करना शुरू किया । यादव सेना की तुलना में जरासंध की सेना बहुत बड़ी थी, फिर भी जरासंध की सेना के कतिपय योध्दा मारे गये । दोनों पक्षों के वीरों ने द्वंद्व-युद्ध किये । सात्यकी तथा जरासंध के बीच भयंकर युद्ध हुआ । चक्रदेव तथा अक्रूर ने मिलकर दंतवक्त्र से युद्ध किया । शिशुपाल ने एक साथ तीन यादव वीरों का सामना किया । कृतवर्मा तथा पौंड्रक वासुदेव के बीच दारुण युद्ध हुआ ।

बलराम ने सब से अधिक शत्रुओं का संहार किया । शत्रुदल से जरासंध ने भी भयंकर युद्ध किया । अंत में बलराम और जरासंध ने गदायुद्ध किया, जिसमें जरासंध बेहोश हो गया । यह दृश्य देख उसकी सेनाएँ भागने लगीं । भागनेवाली सेना का सात्यकी ने पीछा किया । सात्यकी ने जब शंख-ध्वनि करना शुरू किया तो श्रीकृष्ण ने



जान लिया कि जरासंध भाग गया है । तब श्रीकृष्ण ने पांचजन्य बजाया ।

कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के अपहरण का समाचार पाकर जरासंध आदि राजा जब अपने पड़ावों से निकल पड़े, तब राजमहल में रुक्मि को भी यह समाचार प्राप्त हुआ । उसको बड़ा क्रोध आया और अपने पिता तथा रिश्तेदारों के समक्ष उसने शपथ ली - "युद्ध में कृष्ण का वध करके रुक्मिणी को वापस लाये बगैर मैं इस नगरी में कदम नहीं रखूँगा । फिर गद, कैशिक आदि वीरों को साथ लिये युद्ध के लिए तैयार हो वह निकल पड़ा । दक्षिण देश के कई राजा उसके साथ निकले ।

जब वे नर्मदा के तट पर पहुँचे जो उनको

श्रीकृष्ण का रथ आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया । तब रुक्मि ने तेज़ गति से अपना रथ आगे बढ़वाया । श्रीकृष्ण के रथ के सामने जाकर उसने ललकारा - "अरे, पराये पुरुष की पत्नि का अपहरण करनेवाला तू कहाँ जाएगा ? मैं हूँ विदर्भ का राजपुत्र रुक्मि ! अगर तू अपने प्राण बचाना चाहता है तो शीघ्र रुक्मिणी को छोड़ दे । नहीं तो मेरे साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ।" भरे विवाह-मंडप से किसी की वाग्दत्त वधु को उठा ले आना तुम्हारे जैसे वीर को शोभा नहीं देता । लेकिन तुम से कोई और क्या उम्मीद करे ? ऊधम मचाना ही तुम्हारा धर्म है । जाने यह कुबुद्धि तुम कब छोड़ दोगे ? अभी सजग हो जाओ, और रुक्मिणी को मुक्त करो । दूसरे की होनेवाली पत्नी को उठा ले जाने से तुम्हारी जो दुष्कीर्ति होगी, उससे बचने का अभी समय है । इस ललकार के साथ रुक्मि ने कृष्ण पर बाणों की बौछार शुरू की ।

श्रीकृष्ण ने उसी क्षण रुक्मि के सारथि को मार डाला और रुक्मि पर बाण छोड़े ।

रुक्मि का बुरा हाल देख दक्षिण देश के राजाओं ने अपने मित्र को घेर लिया और श्रीकृष्ण से लड़ने भिड़े । दक्षिण देश के राजा और श्रीकृष्ण के बीच भयानक युद्ध हुआ । रुक्मि ने थोड़ी देर में अपने को सम्हाला और दूसरे रथ पर सवार हो कृष्ण से जूझने आया । श्रीकृष्ण ने उसके वक्ष पर तीन बाण छोड़े और उसे घायल कर दिया । रण-भूमि पर बेहोश पड़े अपने भाई की दुर्गति देख कर श्रीकृष्ण के रथ पर बैठी रुक्मिणी विलाप करने लगी । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को समझाया - "प्रिय, यह विलाप करनेका समय नहीं है । कोई भाई अपनी बहन का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी से कर सकता है ? रुक्मि तुम्हारा भाई अवश्य है । पर उसने तुम्हारे प्रति जो अन्याय किया है, उसका उसे दंड देना आज मेरा पवित्र कर्तव्य है ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सान्त्वना दी और फिर रथ को द्वारका नगरी की ओर मोड़ लिया ।

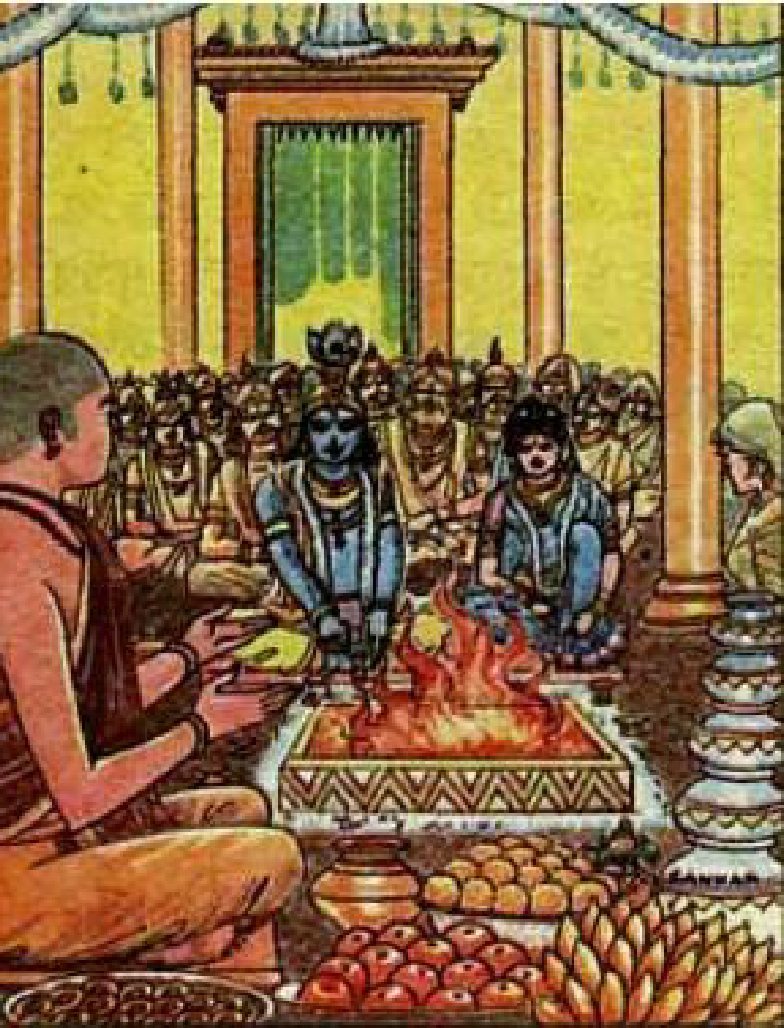




यादवों ने जरासंध आदि राजाओं की सेनाओं को पराजित कर दिया । विजय के उत्साह में उन्होंने सिंहनाद किया और विजय-दुंदुभियाँ बजाईं । फिर बलराम और सात्यकी के साथ सभी यादव द्वारका के लिए चल पड़े । द्वारका के पथ पर चलते चलते वे विजय-गीत गाते चले । आगे मंगल-वाद्य की ध्वनियाँ सब का जोश बढ़ाती थीं । उत्साह के आवेश में यादव-युवकों ने बलराम को अपने सर पर लिया । ऐसा अपूर्व उत्साह पहले कभी देखा नहीं गया था ।

जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर चले गये, तब श्रुतपर्व ने रुक्मि को अपने रथ पर बिठा लिया और चल निकले । पर रुक्मि ने प्रतिज्ञा की थी कि वह अपनी बहन रुक्मिणी को साथ लिये बगैर कुंडिनपुर में प्रवेश नहीं करेगा । अब उसकी प्रतिज्ञा विफल हो गई थी, इसलि उसने भोजकटक नाम की नगरी का निम किया और वहीं पर रहने लगा । अप पराजय की व्यथा उसे खाये जा रही थी श्रीकृष्ण को पराभूत करना अपने बाएँ हाथ खेल है यह उसका विचार ग़लत निकला युद्ध-भूमि से लज्जित होकर लौटे रुक्मि अपने जनों में उठना-बैठना मुश्किल हुआ किसी को मुँह दिखाते उसे शर्म लगती थी इसलिए भोजकटक में अपने महल में अके बैठकर दुख के आँसू पी रहा था । उसव यह दैन्यावस्था आसपास के लोगों से देखी न जा रही थी ।

होश में आने के बाद जरासंघ ने अप बिखरी सेना का पुनः संगठन किया अ अपमानित शिशुपाल को साथ लिये अपने दे



निर्मित ध्वजाएँ सर्वत्र फहरने लगीं । घर घर में युवतियाँ और कुमारियाँ श्रीकृष्ण की यशोगाथा का गान करने लगी । कहीं कहीं इन गीतों ने नृत्य-गीतों का रूप ग्रहण किया । विवाह-समारोह में जाने के लिए सभी ने अपने उत्तमोत्तम वस्त्र पहन लिये । विविध पुष्पों व अलंकारों से अपने शरीरों को सजाया । द्वारका की वीथियों पर सज-धज के साथ विवाह-मंडप की ओर जानेवाले महिलाओं के गुट दिखाई दे रहे थे ।

आज की घड़ी उन सब के जीवन में एक अभूतपूर्व समय था । ऐसा दिन न कभी आया था, न आएगा । सब के अंतःकरण एक अद्वितीय आनन्द से आप्लावित थे । आज द्वारका का समग्र रूप ही बदल गया था ।

को लौट गया ।

यादव-कुल के बुजुर्गों ने श्रीकृष्ण के विवाह का मुहूर्त सुनिश्चित किया और सभी रिश्तेदारों तथा देश-देश के राजाओं को निमंत्रण-पत्रिकाएँ रवाना कीं । द्वारका नगरी को भली भाँति सुशोभित और अलंकृत किया गया । मणि-जडित वस्त्रों को कुंकुम-पुष्पों से साफ करके उन्हें खूब चमका दिया । सुवर्ण-स्तंभों पर लपेटे वस्त्र हटा दिये गये । अब उन पर अंकित कारीगरी स्पष्ट दिखाई देने लगी । सर्वत्र फर्श पर कस्तूरी का सुगंधित जल छिड़क कर उनको चमकीला बना दिया गया । विविध प्रकार की मोतियों की रंगोलियाँ अत्र-तत्र अंकित की गई । स्थान-स्थान पर सुपारी के पत्रों के तोरण बाँध दिये गये । चीनांबरों से

श्रीकृष्ण के विवाह-समारोह में संमिलित होने के लिए कई देशों के राजा अपने रथ, हाथी तथा घोड़ों के साथ बड़े आदर व स्नेह-भाव से वैभवपूर्ण ढंग से आ पहुँचे । उसी प्रकार सारे रिश्तेदार भी आ गये । ऐसी शुभ घड़ी में श्रीकृष्ण के दर्शन करके अपनी तपस्या को सफल बनाने के हेतु मुनिवृन्द द्वारका पहुँच गये । इनके अतिरिक्त अनेक देशों से चतुर्विध वर्णों के प्रमुख विवाह-समारोह में पधारे । सात्यकी ने अभ्यागतों का उचित आतिथ्य किया तथा उनके निवास का अच्छा प्रबंध किया ।

विवाह के दिन ब्राह्मणों का वेद-पठण, सेवकों के द्वारा राजाओं का किया गया गुणगान, स्त्रियों के चलते उनके आभूषणों की

मधुर ध्वनि, घोडों की हिनहिनाहटें, विवाह के मंगल वाद्य और आसमान में देवों की दुंदुभियाँ - सब के मिले-जुले स्वर एक अभूतपूर्व मिश्र संगीत का निर्माण करते थे, जिसे सुनते ही बनता था ।

चार सुवर्ण-स्तंभों पर एक विवाह-मंडप की रचना की गई और उसे रंगबिरंगे रत्नों और सुगंछित पुष्पों से सजाया गया । उसके मध्य में मणि-जडित वेदी के चारों तरफ चित्र-विचित्र रंगोलियाँ आरेखित की गईं । फिर यों अलंकृत वेदी पर श्रीकृष्ण विराजमान हुए । श्रीकृष्ण के चारों तरफ उग्रसेन, वसुदेव, बलराम, बुज़ुर्ग यादव और मुनि-वृन्द आसनस्थ हुए । पुरोहितों ने विवाह का अग्नि-कुंड प्रज्वलित किया । उनकी पत्नियाँ आवश्यक सभी सामग्री उनके पास पहुँचाते में दत्त-चित थीं । हवन की सामग्री में सुगंधित वनस्पतियाँ भी पर्याप्त मात्रा में थी । विवाह-स्थान पर अग्नि-कुंड से निकलनेवाला धुआँ सर्वत्र सुगंधि फैला रहा था । इधर पुरोहितों ने समयोचित संस्कृत ऋचाओं व मंत्रों का पाठ शुरू किया

मुहूर्त का समय आ गया । तब कोमलता, सुशीलता, सौंदर्य और सौभाग्य की मानो प्रतिमूर्ति रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण ने पाणिग्रहण किया । उस वक्त सुमंगलियों ने श्रीकृष्ण पर अक्षत छिड़के तथा आकाश से देवियों ने पुष्प-वृष्टि की । श्रीकृष्ण ने अपने माता-पिता तथा समस्त ज्येष्ठ व्यक्तियों को प्रणाम किया और उनसे शुभाशीर्वाद प्राप्त किये । इसके बाद श्रीकृष्ण ने अनेक ब्राह्मण-पुरोहितों को आठ हज़ार रथ, ग्यारह हज़ार पाँच सौ हाथी, अनगिनत घोड़े तथा गायों को दान दिया





अनेक दास-दासियों को आभूषण, सोना और चाँदी उपहार-स्वरूप दिये । इसी प्रकार सूत, मागधी, नर्तक, बन्दीजन आदियों को असंख्य पुरस्कार प्रदान किये । अंत में सब को स्वादिष्ट भोजन देकर संतुष्ट किया । विवाह में पधारे सभी लोगों ने श्रीकृष्ण को उपहार दिये और प्रति-उपहार पाये ।

विवाह-समारोह की समाप्ति पर अभ्यागत घर लौटने लगे - संपूर्ण संतोष के साथ । विवाह के पूरे आयोजन की प्रशंसा करते उनके होंठ थकते न थे । विवाह-समय के दृश्यों को कवि-गणों ने अपनी अमर गिरा में काव्य-बद्ध किया ।

बालक-बालिकाओं के मन की अवस्था कुछ ऐसी थी कि वे अपने माता-पिता के साथ अपने घर जाने को तैयार नहीं थे । हठी बालक माँ से कहते थे - "माँ, यहीं रहेंगे न और दो-चार दिन । घर जाने की ऐसी क्या जल्दी है ? जाना ही हो तो कल चलेंगे, आज नहीं । माँ, इतनी बिनती नहीं मानोगी क्या ?"

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ दांपत्य-जीवन बिताते हुए परम सुख का अनुभव किया । श्रीकृष्ण ने मित्रविंदा, जांबवती, सत्यभामा, कालिंदी, सुदंता के साथ भी विवाह कर लिया ।

विवाह के कुछ समय बाद श्रीकृष्ण की ज्येष्ठ पत्नी रुक्मिणी गर्भवती हो गई । श्रीकृष्ण ने अपनी वंशगत प्रथा के अनुसार पुंसवन, सीमंत आदि संस्कार व उत्सव वैभवपूर्वक मनाये । यथासमय रुक्मिणी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया । प्राचीन काल में शिवजी के तृतीय नेत्र की ज्वाला में भस्मीभूत मन्मथ ने ही रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया था । बड़े ठाठ से पुत्र का नामकरण किया गया । नाम रखा गया प्रद्युम्न ।

क्रूर राक्षस शंबर को पहले से ही मालूम था कि रुक्मिणी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु निश्चित है । इसलिए उसने एक चाल चली । रुक्मिणी की बगल में सोये शिशु प्रद्युम्न को आधी रात बीते वह चुरा लाया और उसे समुद्र में फेंक दिया । उस शिशु को एक बड़ी मछली ने निगल लिया । एक मछुए ने उस मछली को अपने जाल में पकड़ा । इतनी बड़ी मछली हाथ आने पर मछुआ फूला न समाया और उसने उस भारी मछली को रानी मायावती को उपहार-स्वरूप दे दिया । शंबर इक्षुमती का राजा था और





मछुआ इक्षुमतीपुर का एक नागरिक । रानी मायावती शंबर की पत्नी थी ।

मछुए की दी मछली को मायावती ने स्वयं काटा, मछली के पेट से निकले सुंदर शिशु को पाकर वह बहुत खुश हुई । उसने शिशु को पाल-पोसकर बड़ा किया । शंबर के अपनी कोई संतान न थी, उस शिशु को देखकर शंबर भी मुग्ध हो गया ।

मायावती की देख-रेख में पलकर प्रद्युम्न ने सारी राक्षस-मायाएँ सीख लीं । साथ साथ अन्य सभी विद्याओं का अध्ययन कर प्रद्युम्न बड़ा सुयोग्य युवक बन गया । युवावस्था प्राप्त होने पर वह अतीव सुंदर और आकर्षक लगने लगा । जिस मायावती ने बचपन से ही प्रद्युम्न का पालन-पोषण किया था, उसने एक दिन अनुरोध किया कि प्रद्युम्न उसके साथ विवाह करे । इस अनुरोध पर प्रद्युम्न ने मायावती को समझाया - "तुम मेरी माँ हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ । आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति यह अनुचित लालसा पैदा हुई । इसके पीछे ज़रूर कोई रहस्य है । खोलकर बताओगी माँ ?"

मायावती ने रहस्य का उद्घाटन किया - "सुनो वत्स, यादव वंश के उद्धारक श्रीकृष्ण तुम्हारे पिता है और तुम्हारी माँ है रुक्मिणी । तुम्हारे जन्म के कुछ ही दिनों बाद शंबर ने तुम्हें चुरा लिया और समुद्र में फेंक दिया । संयोग की बात है कि तुम यहाँ पहुँच गये । आज तक मैंने तुम्हारी रक्षा की । तुम्हारी माँ रुक्मिणी पुत्र-वियोग से बहुत ही व्याकुल है । तुम शीघ्र ही उससे मिलो । मेरे प्रस्ताव को ठुकराना नहीं । शंबर को माया-मोह में डालकर मैं आज तक अभिनय करती आयी हूँ कि मैं उसकी पत्नी हूँ । वास्तव में वह हमारा शत्रु है, इस का वध करना ही तुम्हारा धर्म है । "

मायावती से सारा वृत्तान्त जानकर प्रद्युम्न ने शंबर को युद्ध के लिए ललकारा । दोनों के बीच घमासान लड़ाई हुई । इस युद्ध में प्रद्युम्न ने शंबर पर सात प्रकार की मायाओं का प्रयोग किया, पर उसकी एक न चली । अंत में उसने आठवीं माया का प्रयोग किया, तब उसे सफलता मिली । उसने शंबर का संहार किया ।

अब प्रद्युम्न मायावती को साथ लिये माया के प्रभाव से आकाश-पथ से होकर श्रीकृष्ण के

अंतःपुर में उतर पड़ा । अकस्मात उतरे प्रद्युम्न को देख श्रीकृष्ण की पत्नियाँ भयभीत हुईं । साथ ही उसकी अनुपम रूप-संपदा पर प्रसन्न भी हुईं । उस लावण्य-संपन्न युवक को देख रुक्मिणी ने मन-ही-मन सोचा कि यदि उसका पुत्र जीवित होता, तो वह भी इसी आयु का होता । श्रीकृष्ण ने उस युवक को देखा तो वे भी अतीव प्रसन्न हो गये ।

इतने में नारद ने वहाँ प्रवेश किया और श्रीकृष्ण को प्रद्युम्न की सारी कहानी सुनायी । तब सब बात स्पष्ट हो गई कि यह प्रद्युम्न रुक्मिणी का ही पुत्र है । मायावती भी अपने पिछले जन्म में मन्मथ की पत्नी रति थी । वह इस जन्म में भी पुनः उसकी पत्नी हो गई । मन्मथ के भस्म होने पर वह शंबर के हाथ में फँस गई थी । माया-रूप धारण कर शंबर को चकमा देते हुए वह अपने पातिव्रत्य की सुरक्षा कर सकी थी ।

अपने पुत्र प्रद्युम्न को पाकर रुक्मिणी को अपार हर्ष हुआ । श्रीकृष्ण की सभी पत्नियाँ परमानंदित हो गईं । उन्होंने अंतःपुर में अनेक उत्सव मनाये ।

प्रद्युम्न के बाद रुक्मिणी ने क्रमशः नौ पुत्रों को जन्म दिया और अंत में एक पुत्री को । प्रद्युम्न के बादवाले रुक्मिणी के पुत्रों के नाम हैं - चारुधेष्ण, सुधेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारुवाहन, चारुविंद, चारुभद्र, चारुगर्भ तथा चारु । अंतिम पुत्री का नाम है चारुमती । श्रीकृष्ण के अन्य पत्नियों ने भासु, भानुविंद, संग्रामजित.



दीप्तिमंत, वृक आदि अनेक पुत्रों को और मित्रवती आदि अनेक पुत्रियों को जन्म दिया ।

प्रद्युम्न के जन्म के एक महीने बाद जांबवती के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम है सांब । सांब अत्यन्त विख्यात था । उसको बचपन से ही बलराम ने अपने आश्रय में लिया और अपने पुत्र की तरह उसका लालन-पालन किया । उसको सभी अस्त्र-शस्त्र विद्याएँ सिखा दीं । बलराम के रेवती द्वारा निशात और उल्मक नाम के दो पुत्र हुए । इस प्रकार बलराम तथा श्रीकृष्ण अनेक पुत्रों को जन्म देकर सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगे ।

विदर्भ देश में रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मि के एक पुत्री थी, जिसका नाम था शुभांगी । शुभांगी विवाह के योग्य हो गई थी । उसके

विवाह के लिए रुक्मि ने स्वयंवर का आयोजन किया और पृथ्वी के सभी राजाओं के पास निमंत्रण-पत्र भेजे । उस स्वयंवर में संमिलित होने के लिए कई राजा आ पहुँचे । अपने माता-पिता की अनुमति से प्रद्युम्न भी सदलबल उस समारोह में उपस्थित रहा । बड़ी धूमधाम से स्वयंवर संपन्न हुआ । शुभांगी ने पहले ही प्रद्युम्न के रूप-गुणों के बारे में जान लिया था, और उसीको वरने का अपने मन में निश्चय कर लिया था । इस लिए स्वयंवर मंडप में उसने प्रद्युम्न के गले में वरमाला डाली । स्वयंवर में पधारे सभी राजाओं ने शुभांगी के निर्णय की प्रशंसा की । सब ने कहा - अनुरूप वधू और वर का ऐसा जोड़ा दुर्लभ है ।

शुभांगी के साथ विवाह करके प्रद्युम्न घर लौट आया । यथासमय इस दंपति के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अनिरुद्ध रखा गया । धीरे धीरे अनिरुद्ध ने सभी शास्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र विद्याओं का अध्ययन किया । अब वह विवाह करने की अवस्था में पहुँचा ।

रुक्मि के पुत्र की एक लड़की थी, उसका नाम था रुक्मवती । श्रीकृष्ण ने सोचा - रुक्मवती अनिरुद्ध के लिए सुयोग्य वधु है । उसने प्रद्युम्न को सुझाया कि वह इस संबंध में रुक्मि से संपर्क स्थापित कर बातचीत करे । श्रीकृष्ण की इच्छा जानकर प्रद्युम्न ने रुक्मि के पास अपने दूत द्वारा संदेश भेजा ।

अपनी पुरानी शत्रुता भूलकर रुक्मि ने भी इस विवाह को संमति दी । विवाह का मुहूर्त निश्चित हुआ । इस विवाह में संमिलित होने बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, उनके सभी पुत्र, रुक्मिणी, तथा यादव परिवार के प्रमुख सदस्य चल पड़े । यह विवाह अत्यन्त वैभवपूर्वक संपन्न हुआ ।

सर्वत्र अपूर्व उत्साह छाया हुआ था । उस वक्त वेणुधारी, श्रुतपर्व, अंशुमंत, जयत्सेन इत्यादि दक्षिण के वीरों ने रुक्मि को समझाया - "तुम तो जुआ खेलने में कुशल हो, बलराम को जुआ खेलने के लिए प्रेरित करो । उसको जुए का बड़ा शौक़ है । जुए में उसको हराकर हम यश प्राप्त करेंगे ।"





कृष्णावतार

दक्षिण देशों के अपने मित्रों के उकसाने पर रुक्मि का अहंकार जागृत हो उठा । सुचारु रूप से अलंकारित एक सभा-भवन में सुवर्ण-पट, मोहरें, पाँसे आदि सामग्री से जुआ खेलने की सारी तैयारियाँ हो गईं । बलराम के पास समाचार भेजा गया – "थोड़ी देर जुआ खेलने का शौक हो रहा है । अवश्य पधारिए । आप भी द्यूत के अच्छे खिलाड़ी है । बहुत दिन हुए आप को खेलने का अवसर नहीं मिला है । आइए, आज थोड़ा खेलकर मन बहलाएँगे । देखेंगे कौन अच्छा खिलाड़ी है । " बलराम वैसे भी द्यूत के बड़े प्रेमी थे, इसलिए उत्साह में आकर सभा-भवन में जुआ खेलने पहुँच गये ।

दक्षिण देश के राजाओं ने सुझाया बलराम के साथ रुक्मि ही सब से योग्य खिलाड़ी है । मोती, रत्न और सुवर्ण के ढेर दाँव पर लगाये गये । खेल शुरू हुआ । दस हज़ार सुवर्ण-मुद्राएँ दाँव पर रख कर बलराम हार गये । दूसरी बार उतनी ही मुद्राएँ दाँव पर लगाकर हार गये । यों बलराम बार-बार खेल में हारते ही रहे । बलराम मन-ही-मन सोचने लगे, जाने क्यों आज हार पर हार हो रही है । क्या हो गया है मेरी द्यूत की कुशलता को । अब तक तो हारता ही आया, अब जीत कर दिखा दूँगा ।

अंत में बलराम एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ दाँव पर लगाकर जीत गये । लेकिन रुक्मि ने गरजकर कहा – "इस बार भी जीत मेरी ही है । बलराम पाँसे खेलना जानता ही नहीं । मैंने एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ जीत ली हैं । "

रुक्मि के मित्र कलिंग राजा ने परिहास करते

१९. नरकासुर का हौसला



हुए हँस कर कहा – "हाँ हाँ, रुक्मि का कहना सच है ।" इस असत्य क़थन पर बलराम का क्रोध उबल पड़ा, पर अपने को काबू में रखते हुए वहाँ पर उपस्थित लोगों से उसने पूछा – "आप ही लोग बताइए । आपने देखा मैंने दाँव जीत लिया है, और अब यह अपने को विजयी बता रहा हैं । यह कैसा न्याय है ?"

सब ने अपने सिर झुका लिये । किसी ने भी बलराम के पक्ष में कुछ नहीं कहा ।

रुक्मि ने बलराम से फिर कहा – "मेरी विजय पर कोई क्या संदेह करेगा ? मोह में पड़कर आप क्यों यों झूठ बोल रहे हैं ?"

बलराम समझ न पाया कि ऐसे सफेद झूठ का क्या जवाब दिया जाए । इतने में आकाशवाणी हुई – "बलराम का कहना सत्य है । रुक्मि झूठ बोल रहा है । तुम सब लोग बुद्धू की तरह मौन धारण किये क्यों यों चुपचाप बैठ रहे हो ? सत्य का पक्ष लेने में तुम को डर लग रहा है ? ऐसे झूठ का साथ देते रहेंगे तो उसका परिणाम कभी न कभी भुगतना पड़ेगा । जीत हमेशा सत्य की ही होती है इसे भूलना नहीं ।"

तब भी किसीने मुँह नहीं खोला । बलराम अब आपे से बाहर हो गये । वे तैश में आ गये और रुक्मि पर मुक्के का ज़ोरदार प्रहार करने लगे । फिर जुए का फलक लेकर कलिंग के राजा के सिर पर दे मारा, जिससे उसका सिर फूट गया ।अन्य उपस्थित राजा उन पर टूट पड़े । तब बलराम ने अपनी तलवार खींच ली और उन सब के सिर काट दिये । बाक़ी लोग भय के मारे भाग गये ।

इस बीभत्स कांड के बाद बलराम अपने निवास-स्थान पर गये और श्रीकृष्ण को सारा समाचार कह सुनाया । श्रीकृष्ण ने न उस पर कोई आक्षेप किया, न ही उसकी प्रशंसा की । बलराम को श्रीकृष्ण के इस व्यवहार के बारे में आश्चर्य लगा । जो कुछ हुआ उसके बारे में वे यों मौन क्यों ? अगर कुछ ग़लती हुई तो समझाना चाहिए । अगर अच्छा काम किया तो तारीफ़ करनी चाहिए । खैर ..... । पर अन्य प्रमुख यादवों ने बलराम की प्रशंसा कर उन्हें संतुष्ट किया ।

इसके उपरान्त वे सब वधू-वरों को साथ लिये द्वारका लौट आये ।

बलराम असामान्य बल और पराक्रम, तथा

शक्ति और सामर्थ्य रखनेवाले हैं । दस हज़ार हाथियों की ताकत रखनेवाले प्रसिद्ध भीमसेन ने बलराम के पास ही शास्त्र-विद्या सीख ली है । सब लोग सोचते हैं कि यदि इन दोनों के बीच में लड़ाई हो जाए तो विजय भीम की ही होगी ।

एक बार कृष्ण के पुत्र सांबु ने दुर्योधन की पुत्री लक्षणा से प्रेम किया और उसे लेकर भाग निकले । इस पर कौरवों ने उसका पीछा किया और उसको बंदी बनाकर हस्तिनापुर के कारागृह में रखा । यह खबर पाते ही बलराम क्रोध में आ गये । वे हस्तिनापुर पहुँचे और सांबु को कारागार से छोड़ देने का अनुरोध किया । पर कौरवों ने बलराम की बात नहीं मानी । उनका कहना था कि सांबु को अगर लक्षणा से विवाह करना था तो दुर्योथन के पास जाकर बातचीत करते । किसी को यों भगा ले जाता अनुचित है । उसको जो दंड दिया है, वह उचित ही है । उसे कारगृह से मुक्त नहीं किया जा सकता । बलराम का यह प्रस्ताव भी कितनी मूर्खता का है ? हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते ।

इस पर बलराम ने प्रतिज्ञा की कि वे हस्तिनापुर के लोगों को उनके घरों के साथ गंगा में ढकेल देंगे । फिर दुर्ग के नीचे अपना हल घुसेड़ कर उसे उठाने को तैयार हुए ।

बलराम का साहस कार्य देख दुर्योधन और उसके साथी घबरा गये और सांबु को लाकर बलराम के सामने पेश किया । बलराम प्रसन्न हुए । इसी समय दुर्योधन ने बलराम का शिष्य बनने का अपना निर्णय घोषित किया और



उनकी गुरु-पूजा की । दुर्योधन ने गुरु को उच्चासन पर बिठाया । रंगबिरंगे फूलों की माला उनके गले में पहनायी । उनको सुस्वादु भोजन दिया । और अनेक कीमती वस्तुओं को गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्हें समर्पित किया । बलराम के इस कृत्य के कारण हस्तिनापुर शाश्वत रूप में एक तरफ उठा रह गया और दूसरी तरफ ढलानवाला ! बलराम का शिष्य बनकर दुर्योधन ने गदा-युद्ध में अपार सुयश संपादन किया ।

इसी समय राक्षसों की दुनिया में नरकासुर बहुत ही बलिष्ठ बन बैठा । वह भूदेवी का पुत्र था और उसकी राजधानी थी प्राग्ज्योतिषपुर । ब्रह्मा से उसने अनेक वर प्राप्त कर किये थे । वह किसी भी देवता के हाथ हारता न था ।



उसके बल-पराक्रम के कारण सारे लोग थरथराते थे । वह यह भूल गया था कि ब्रह्म ने वर इसलिए दिये थे कि उनका उपयोग धर्म और सत्कर्म के लिए किया जाय । पाप और अधर्माचरण के लिए उनका उपयोग करें तो वह सर्वनाश का कारण होगा । चूँकि नरकासुर इस बात को समझा नहीं, अपनी दुर्बुद्धि के कारण पापाचरण ही करता रहा ।

नरकासुर ने सब से पहले इन्द्रपुरी पर आक्रमण किया । नगर के सभी द्वारों को उसने अपनी मुट्ठी के प्रहारों से तोड़ दिया, और तब अपने सिंह-नाद से इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा । इन्द्र ऐरावत पर सवार हो अपने हाथ में वज्र लिये युद्ध के लिए आ पहुँचा । नरक ज़रा भी नहीं डगमगाया और इन्द्र के साथ लड़ पड़ा । इन्द्र की सहायता करने यम, वरुण, कुबेर आदि अपनी सेनाओं के साथ आये । सब ने एक साथ युद्ध में भाग लिया । दोनों तरफ की सेनाओं ने एक दूसरों पर तरह तरह के अस्त्र फेंके । पास में आने पर शस्त्रों का भी उपयोग किया गया । घंटों तक युद्ध चलता रहा । किसी की जीत नहीं हो रही थी । कई सैनिक मारे गये, बहुत अधिक ज़ख्मी हुए । नरकासुर अपनी सभी युद्ध-कुशलता का प्रदर्शन कर रहा था । फिर भी इन्द्र पर विजय पाना कुछ समय तक उसे कठिन मालूम हुआ ।

नरकासुर की मदद के लिए भी हयग्रीव, निशुंभ तथा मुरासुर तीन राक्षस-नेता आ गये । हयग्रीव के साथ वरुण ने युद्ध किया, तब वरुण का सिर फूट गया । खून उगलने से वे बेहोश हो गये, फिर होश में आते ही युद्ध-भूमि से भाग गये । वरुण के साथ उसकी सेना भी भाग खड़ी हो गई । इसी प्रकार निशुंभ के हाथों यम ने और मुरासुर के हाथों कुबेर ने मार खाया और वे अपनी सेना के साथ भाग खड़े हुए । अंत में नरकासुर के प्रहारों से स्वयं इन्द्र भी घबराकर भाग गये । इस तरह विजय प्राप्त करने पर नरकासुर ने देव-लोक में प्रवेश किया और सर्वत्र अपनी विजय का डंका बजाया ।

अब नरकासुर इन्द्र के आसन पर विराजमान हो गया । ऊर्वशी को बुलाकर उसने आदेश दिया – "सुनो, मैंने समस्त दिक्पालों पर विजय पायी है । इस समय सारी देवताओं का राजा


Sankar



मैं ही हूँ । आज से तुम अपने नृत्य और गीतों द्वारा मेरा मनोरंजन करो । ''

''ओह, यह बात है ! जब समस्त मुनि अपने यज्ञों में आपकी पूजा करें तो मैं अवश्य आप के आदेश का पालन करूँगी । '' ऊर्वशी ने कहा ।

नरक ने ऊर्वशी की शर्त मान ली । इसके बाद नरकासुर ने अमरावती को लूटा, सुमेरु पर्वत से रत्नों की राशियों को खुदवाया । उसने आठ हज़ार देव कन्याओं को बन्दी बनाया और विश्वकर्म की पुत्री को अपने अधिकार में ले लिया । अदिति के कुण्डलों का अपहरण करके वह अपने नगर लौट आया ।

नरकासुर का आदेश पाकर उसके सेवक-राक्षस चौदहों लोकों की अनमोल वस्तुओं को लूट कर ले आते और उन्हें नरकासुर को सौंपते । वे जहाँ जाते वहाँ लोगों को सताते और वहाँ की अप्सराओं को भगा कर ले आते । वे राक्षस सोलह हज़ार एक गंधर्व-कन्याओं को, लाखों यक्ष-नारियों को तथा अनगिनत किन्नर, सिद्ध, साध्य तथा विद्याधर स्त्रियों को बन्दी बनाकर ले आये ।

प्रागज्योतिषपुर की चारों दिशाओं में चार महान् योद्धा - मुरासुर, हयग्रीव, निशुंभ तथा पंचजन नगरी की रक्षा कर रहे थे । मुरासुर के हज़ारों पुत्र थे । उनके कारण उस नगर में प्रवेश करना किसी के लिए संभव न था ।

अब नरकासुर के मन में इच्छा पैदा हुई कि सारे भूलोक पर अधिकार जमाया जाए । सर्वत्र घूम कर वह यज्ञों का ध्वंस करने लगा । उसने मुनियों को सताना शुरू किया, बालकों का संहार किया । भूलोक के सारे राजा त्रस्त हो गये । धर्म का विनाश करना उसने अपना लक्ष्य बनाया ।

नरकासुर एक बार बदरीवन में पहुँचा । उस समय वहाँ अनेक ऋषि अपने यज्ञ-कर्म में निमग्न थे । तब नरकासुर को ऊर्वशी की कही बात याद आ गयी । उसने ऋषियों से पूछा - ''तुम लोग किस की स्मृति में यज्ञ करते हो ? ''

''वेदों के वचनानुसार हम इन्द्र के प्रति यज्ञ करते हैं । '' ऋषियों ने उत्तर दिया ।

इस पर नरकासुर ने क्रोधित होकर कहा - ''मैंने तुम्हारे इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि को युद्ध में हरा दिया है । उनके सभी राज्य मैंने

जीत लिये हैं । अब समस्त विश्व का अधिपति मैं ही हूँ । इस लिए तुम लोग मेरी स्मृति में यज्ञ करो । मुझे प्रणाम करो । अगर तुम लोग मुझे संतुष्ट करोगे तो मैं तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण करूँगा । "

ऋषियों ने स्पष्ट कह दिया - "यह तो सर्वथा अनुचित है । लोकों का शासक तो इन्द्र ही है । तुम दुष्ट राक्षस हो । हम तुम्हारी पूजा कैसे कर सकते हैं ? "

ऋषियों का उत्तर सुनकर नरकासुर आग-बबूला हो गया । उसने अपने सेवकों को आदेश दिया - "ये मुनि बहुत उन्मत्त हो बकवास कर रहे हैं । इनके यज्ञ का ध्वंस कर दो । " सेवकों ने तुरन्त नरक की आज्ञा का पालन किया । राक्षसों ने अग्निकुंड भर दिये, पशुओं की हत्या की, यज्ञ के होता, उद्घाता तथा अन्य सदस्यों को मारा-पीटा, यज्ञ-सामग्री को फेंक दिया, अरणों का जलाया, हविस खा डाले, अन्न के ढेरों को छितराया, सोमरस को राख में डाल दिया, तरह तरह के बीभत्स काम किये । इस कांड के बाद नरकासुर लौट गया ।

इसके बाद वसिष्ठ, वामदेव, जाबाली, धूम्य, भरद्वाज, मंकण आदि महाऋषियों ने एक साथ बैठकर विचार-विमर्श किया कि ऐसे दुष्टों से यज्ञ की रक्षा कैसे करें ? दुष्ट नरकासुर से हमारी सुरक्षा करनेवाला कोई न हो तो हमारा जीवित रहना मुश्किल हो जायगा । अंत में सब ने निश्चय किया कि अवतार-पुरुष श्रीकृष्ण ही उनका उद्धार कर सकते हैं । अतः सब लोग द्वारका के लिए निकल पड़े ।

वे लोग दक्षिणाभिमुखी होकर यात्रा करते



हुए रास्ते में पड़नेवाले तीर्थों में स्नान करते हुए भागीरथी तक पहुँचे । उसमें नहाकर प्रायश्चित कर लिया । फिर स्वर्ग से भी बढ़िया वैभवसंपन्न नगरी द्वारका पहुँचे ।

नगर के राज-पथ से गुज़रने हुए नगरी के ऐश्वर्य को देखकर विस्मित हुए । फिर श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजा कि बदरीवन से कुछ महर्षि-गण पधारे हैं ।

ऋषियों के आगमन का समाचार सुन कर श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न को बुलाया और ऋषियों को आदरपूर्वक बुला लानेका आदेश दिया । प्रद्युम्न ने महल के बाहर आकर ऋषियों का समुचित स्वागत किया और वह उनको श्रीकृष्ण के सभा-भवन में ले गया ।

सभा-भवन में श्रीकृष्ण एक उच्च आसन पर विराजमान थे । मुनि लोग मन में यह विचार करते हुए श्रीकृष्ण के पास पहुँचे - "हमारी सारी कामनाओं की पूर्ति कर सकनेवाले श्रीकृष्ण के रहते हुए आज तक हम लोग इस दुष्ट राक्षस के हाथों क्यों अपमानित होते रहे । शायद इसी को प्रारब्ध कहते हैं । विलम्ब से ही सही, हमने अब श्रीकृष्ण के दर्शन कर लिये । इस दुष्ट राक्षस ने अरण्यों में तपस्या करनेवाले हमें परेशान किया, इसी से हमें यह अनोखा लाभ प्राप्त हुआ । "

ऋषियों को देखते ही श्रीकृष्ण तुरन्त अपने आसन से उठकर आये, अर्घ्य, पाद्य तथा मधुपर्क के द्वारा उनका सत्कार किया । फिर उनकी अनुमति पाकर वे पुनः अपने आसन पर बैठ गये । फिर अन्य प्रमुख यादवों ने मुनियों को प्रणाम किया और अपने अपने आसनों पर बैठ गये ।

अब श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़कर मुनियों से पूछा - "आप लोगों के यज्ञ तो निर्विघ्न संपन्न हो रहे हैं न ? आप के व्रत और तप यथा-प्रकार चल ही रहे होंगे ? आप सब लोग एक साथ यहाँ चले आये इसका क्या कारण है ? मुझ पर अनुग्रह करके मुझे कृतार्थ करने की इच्छा से ही आप सब इस प्रकार पधारे होंगे । आप लोग अगर कोई कार्य मुझे सौंपे तो उसे संपन्न करने के लिए हम एक दम तैयार बैठे हैं । "

(क्रमशः)





श्री कृष्ण ने मुनियों से कुशल-प्रश्न किये और उनका यथोचित आतिथ्य किया। अत्यन्त प्रसन्न होकर मुनियों ने बदरी-फलों का उपहार सेवा में समर्पित करते हुए कहा – "श्री कृष्ण, एक महान् कार्य मन में रखकर ही हम आपके पास पहुँचे हैं। भूदेवी का पुत्र नरक राक्षसों का नेता है। वह महान् पराक्रमी और उद्दंड है। वह समुद्रों को सुखा सकता है, पृथ्वी को कँपा सकता है, पहाड़ों को धँसा सकता है। इस समय सारे लोकों में वह उत्पात मचा रहा है। एक बार वह हमारे बदरीवन में आ धमका। हम यज्ञ-कार्य में दत्तचित्त थे, उसने हमें आदेश दिया हम देवताओं के प्रति यज्ञ न कर उसके प्रति करें। हमने उस आदेश को नहीं माना। इस पर मारे ग़ुस्से के उसने अपने सेवकों के द्वारा हमारी यज्ञाग्नि बुझा दी। सारी यज्ञ-सामग्री को ध्वस्त कर दिया और हमारी स्त्रियों को बन्दी बनाकर ले गया। इस प्रकार हमारा यज्ञ-कर्म भग्न हो गया और हमारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। उसके डर से हम अत्यन्त दुखी हो गये हैं। अब आपको छोड़ कौन हमारी रक्षा कर सकते हैं?"

मुनियों की बातें सुनकर श्रीकृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। नरकासुर का उत्पात जानकर उन्हें बड़ा क्रोध भी आया। श्रीकृष्ण थोड़ी देर के लिए मौन रहकर विचारों में डूब गये। यह देख मुनि कुछ शंकाकुल होते हुए एक दूसरे की ओर देखने लगे।

श्रीकृष्ण ने मुनियों को उद्देश्य करके कहा – "नरक यहाँ तक आगे बढ़ा? उस राक्षस के अत्याचारों की कथा बड़ी भयानक है। आप



लोग चिन्ता मत कीजिए । मैं उस राक्षस का अवश्य अंत करूँगा । आप सारा भय छोड़ कर यहाँ से प्रस्थान कीजिए और अपने नित्य कर्मों का आचरण प्रारंभ कीजिए । आज तक कई राक्षसों का संहार मैंने कैसे किया है आप जानते ही हैं । अब मेरे हाथों नरकासुर का विनाश निश्चय ही है । यह नरकासुर महान् पराक्रमी है अवश्य, उसका संहार करने में कुछ अधिक समय लग सकता है । फिर भी आप चिंता न करें । सब को बुरी तरह परेशान करनेवाले इस अधम का सर्वनाश होकर ही रहेगा । '' यों श्रीकृष्ण ने मुनियों को अभय-दान दिया ।

साक्षात् श्रीकृष्ण के मुँह से अभय-दान पाकर मुनिजन अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने श्रीकृष्ण को शतशः धन्यवाद दिये और उनसे प्रेमपूर्वक विदा लेकर बदरीवन के आश्रम की ओर चल निकले ।

मुनियों के प्रस्थान के बाद इन्द्र, अन्य दिक्पालों के साथ द्वारका नगरी में उतर पड़े । श्रीकृष्ण आगे आये और उन्होंने बड़े प्रेम से इन्द्र का स्वागत किया । इन्द्र अन्य सभी यादव-प्रमुखों से भी मिले, और उनके प्रति अपना आदर भाव प्रकट किया । इसके बाद सभी लोग विचार-विमर्श करने के लिए सुधर्म सभा-भवन में इकट्ठा हुए ।

श्रीकृष्ण का हाथ अपने हाथ में लेते हुए इन्द्र ने निवेदन किया - ''महात्मन्, एक विशेष उद्देश्य से आपके दर्शन करने आया हूँ । मेरा नम्र निवेदन सुनेंगे ? दैत्यों का नेता नरकासुर ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके अत्यन्त विच्छृंखल हो उठा है ।उसने युद्ध में देवताओं को बुरी तरह पराभूत किया । उसके आक्रमण और अत्याचारों से तंग आकर हम लोग अपना घर-द्वारा छोड़ कर मानव लोक में भाग आये हैं । हमारे घरों में घुसकर उसने हमारी सारी संपत्ति लूट ली । हम अपनी विपदा की कथा सुनाएँ तो किसे ? अत्यत्र दुर्लभ ऐसे अदिति देवी के कुण्डल भी उसने हरण कर लिये । मुनियों के आश्रमों का ध्वंस किया । उसने सुना है कि आपने जगत की रक्षा का संकल्प करके अनेकों राक्षसों का संहार किया है । अतः अब वह आपको भी पराजित करने के सपने देख रहा है । हम सोचते हैं अब आप

उसके संहार का पुण्य-कर्म अपने हाथों में ले लें । इससे सब लोकों का कल्याण होगा । आपका वाहन बनने के लिए ये गरुड मेरे साथ आये हुए हैं । " कहते हुए इन्द्र ने श्रीकृष्ण को गरुड के दर्शन कराये ।

श्रीकृष्ण ने अपने आसन से उतरते हुए इन्द्र से निवेदन किया - "ये सारी बातें थोड़ी देर पहले मैंने मुनियों से भी सुन लीं हैं । आपके कथन से मेरा निश्चय और भी दृढ़ हो गया है । हम लोग अभी प्रागज्योतिषपुर रवाना होने की तैयारियाँ कर रहे हैं । आपने बहुत अच्छा किया कि मुझे नरकासुर के समस्त कुकृत्यों से परिचित कराया है । देव और ऋषि नरकासुर की लीलाओं से बहुत दुखी हो गए हैं । उन सब को संकटमुक्त करना अब मेरा प्रथम कर्तव्य है । बाकी सब कार्य छोड़कर बस अब मैं इसी में दत्तचित्त हो जाता हूँ । बहुत अच्छा हुआ वाहन के रूप में गरुड़जी को आप मुझे सौंप रहे हैं ! "

श्रीकृष्ण ने अपने शंख, चक्र आदि आयुधों को सज्ज किया और सत्यभामा के पास अपने जाने का समाचार भेज दिया । श्रीकृष्ण गरुड पर आरूढ हो गये । बुज़ुर्गों ने उनको आशीर्वाद दिये । पुरोहितों ने स्तोत्र-पाठ किये । देवेन्द्र इन्द्र पथ-प्रदर्शक बने और श्रीकृष्ण उनका अनुसरण करने लगे । थोड़ी देर के लिए भूतल पर यात्रा करके अब इन्द्र और श्रीकृष्ण गगन-मार्ग से प्रयाण करने लगे ।

श्रीकृष्ण ने आकाश-मार्ग से प्रागज्योतिषपुर को एक नज़र देख लिया । उस नगर में प्रवेश करना किसी के लिए सहज संभव न था । उस नगर की सुरक्षा-व्यवस्था को श्रीकृष्ण ने भली





भाँति देख लिया । नरकासुर के भवन की सुरक्षा करनेवाले राक्षसों को अच्छी तरह देख लिया । अब श्रीकृष्ण ने इन्द्र को बिदा किया और स्वयं आगे बढ़े । नगर-रक्षक राक्षसों से पहले सामना किया और अनेक राक्षसों का वध किया ।

मुरासुर बड़े हौसले से श्रीकृष्ण से जूझ पड़ा । दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ । श्रीकृष्ण ने अपने एक तीक्ष्ण अस्त्र से मुरासुर का सिर काट दिया । इसके बाद निशुंभु नामक राक्षस श्री कृष्ण से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया । उसने सत्यभामा का हाथ घायल कर दिया, उससे खून बह निकला । अब श्रीकृष्ण क्रोधावेश में आ गये और उन्होंने अपने बाणों से निशुंभु के हाथ और सिर काट डाले । फिर हयग्रीव, अघोरपाल, विरूपाक्ष, प्रापण, पंचजन इत्यादि चौरासी राक्षस-वीर श्रीकृष्ण के हाथों मारे गये ।

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने नगर के द्वार की रक्षा करनेवाले राक्षसों का संहार किया और उस द्वार के समीप पहुँचे ही थे कि राक्षस-सेनाएँ उन पर टूट पड़ी । श्रीकृष्ण ने बड़ी आसानी से उस राक्षस-दल को ध्वस्त कर दिया । इतने कांड के उपरान्त अब नरकासुर स्वयं श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए संन्नद्ध हो गया । अकेले युद्ध करने के लिए आये श्रीकृष्ण को उद्देश करके उसने कहा - "सुनो, मुझे नरक कहते हैं । मैंने इन्द्र आदि देवताओं को पराजित करके तीनों लोकों को थर्रा दिया है । मेरे सामने बड़े बड़े साहसी और पराक्रमी वीर भी किसी काम के न रहे । तुम किस खेत की मूली ? क्या काम लेकर यहाँ आये हो ? यह विशालकाय पक्षी कौन है ? साथ में किस नारी को लाये हो ? सब साफ़ साफ़ बना देना । मैं अभी तुम्हारा वध करके इस नारी को अपने अधीन कर लूँगा । अब तुम भाग न जाना, मेरे साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । समझे ?"

नरकासुर की बक-बक सुनकर श्रीकृष्ण हँस पड़े । उन्होंने उसे समझाया - "मैं भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध हूँ । मैं नहीं जानता हूँ कि तुमने मेरे बारे में सुना है कि नहीं । मुझे वासुदेव कहते हैं । इस स्त्री का नाम सत्यभामा है, वह मेरी पत्नी है । यह पक्षी पक्षी-जाति का राजा गरुड़ है, जो मेरा वाहन है ।





मैं यहाँ एक विशेष उद्देश्य से आया हूँ । वह है तुम्हारा संहार करके जगत् का कल्याण करना । ''

मुस्कुराते हुए नरक ने कहा - ''ओह, यह बात है? तुम्हीं हो वह वासुदेव ? तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए मैं लालायित हूँ । तुम अपनी सारी शक्तियों का युद्ध में प्रयोग करो । अच्छा हुआ मेरे सामने आ गये । अब अपने प्राण बचा कर यहाँ से नहीं जा सकोगे । '' तुरन्त नरकासुर ने कृष्ण के साथ युद्ध प्रारंभ किया । उन दोनों के बीच जो युद्ध हुआ, उसे देख राम-रावण के युद्ध की याद आई । दारुण और अवर्णनीय युद्ध हुआ । इस युद्ध में श्रीकृष्ण बुरी तरह घायल होकर बेहोश हो गये ।

यह देख सत्यभामा घबराई नहीं । उसने श्रीकृष्ण के माथे पर धँसे बाण को अपने हाथों से निकाला, तो खून की धारा बहने लगी । उसने घाव को दबा रखा और श्रीकृष्ण की शुश्रूषा की । गरूड़ ने अपने पंखों से श्रीकृष्ण को पंखा झला और उसकी थकावट दूर की । थोड़ी देर में श्रीकृष्ण होश में आ गये और फिर सत्यभामा की ओर देखकर बोले - ''देखो, मैं थक गया हूँ । थोड़ी देर के लिए तुम युद्ध कर सकोगी ?'' तब सत्यभामा ने श्रीकृष्ण का धनुष्य और बाण अपने हाथ में लिये ।

सत्यभामा ने नरकासुर पर लगातार बाणों की वर्षा की । तब नरक अट्टहास कर बोल उठा - ''छीः छीः ! श्रीकृष्ण ने स्वयं युद्ध करना छोड़ कर एक औरत को मुझे पराजित करने के लिए नियुक्त किया । '' नरकासुर ने अपने तीक्ष्ण बाण सत्यभामा की ओर छोड़ना प्रारंभ किया । वे बाण सत्यभामा के वक्ष, हाथों और पीठ में चुभ गये । उनकी ज़रा भी पर्वाह न करते हुए सत्यभामा ने अत्यन्त क्रोधावेश में आकर नरकासुर की ध्वजा तोड़ दी और उसके रथ में जोड़े घोड़े को मार डाला । फिर उसके सारथी का वध किया । नरकासुर ज्यों ही सत्यभामा पर तीर चलाने के लिए प्रत्यंचा खींचता त्यों ही सत्यभामा उसे तोड़ डालती । यों नरकासुर के तीन बाण लगातार टूट गये । अब उसने अपने हाथ में गदा धारण की और उसे जोर से सत्यभामा पर फेंक दिया । पर सत्यभामा ने उसे बीच में ही चूर्ण कर दिया । इस प्रकार नरकासुर का प्रत्येक आयुध बेकार साबित होता रहा ।

सत्यभामा की यह अद्भुत युद्ध-कुशलता देख श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके माथे पर फूटा पसीना पोंछ डाला । श्री कृष्ण ने कहा - "सत्यभामे, तुम बहुत थकी मालूम हो रही हो, अब युद्ध को समाप्त करो । " इस पर श्रीकृष्ण ने अपना कंठहार निकालकर सत्यभामा के कंठ में पहना दिया । सत्यभामा और रुक्मिणी दोनों के मन में उस हार को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा बहुत दिनों से थी । पर अब तक कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकी थी । सत्यभामा इस हार को प्राप्त कर परम संतुष्ट हुई ।



फिर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के हाथ से धनुष्य लेकर नरकासुर के साथ युद्ध करना प्रारंभ किया । इस बीच नरक किसी और रथ पर सवार हो श्रीकृष्ण, सत्यभामा और गरुड़ पर बाणों की वर्षा करने लगा । श्रीकृष्ण ने नरकासुर का नया रथ, उसके घोड़े और सारथी को निशाना बनाकर उनका संहार किया । अब नरक का क्रोध और तीव्र हो गया और वह हाथ में गदा लेकर युद्ध-भूमि पर उतर पड़ा। श्रीकृष्ण के वक्ष का निशाना बनाकर फेंकी उसकी गदा को कृष्ण ने बड़ी सरलता से चूर-चूर कर दिया । तब नरकासुर ने असंख्य अन्य आयुध, वृक्ष तथा पत्थर फेंकना शुरू किया, पर कोई फ़ायदा न हुआ ।

अंत में श्रीकृष्ण ने नरक पर अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया । सुदर्शन चक्र ने नरकासुर का सिर धड़ से अलग कर दिया । इस प्रकार नरकासुर के संहार से पृथ्वी का एक भारी संकट टल गया । उस समय भूदेवी स्वयं मानव का रूप धारण करके वहाँ उपस्थित हो गई और उसने नरक के शव का आलिंगन किया । उसके कानों में पड़े दिव्य मणि-कुंडल उतार लिये, और सीधे श्रीकृष्ण के पास पहुँची । हाथ जोड़ कर रोते रोते उनसे कहा - "महात्मन्, आप ही ने मुझे यह पुत्र प्रदान किया और अब इसको लोक-कंटक बताकर मार भी डाला । अब देवता तथा मुनि सुखपूर्वक जी सकेंगे, इसमें कोई शक नहीं । ये रत्न-कुंडल इन्द्र को पराजित करके लाये गये थे । इन्हें स्वीकार कीजिए । नरक के पुत्र की रक्षा करके उसका राज्य उसे दीजिए । "

श्रीकृष्ण ने भूदेवी की बात मान ली । तब भूदेवी अदृश्य हो गई । श्रीकृष्ण ने नरकासुर

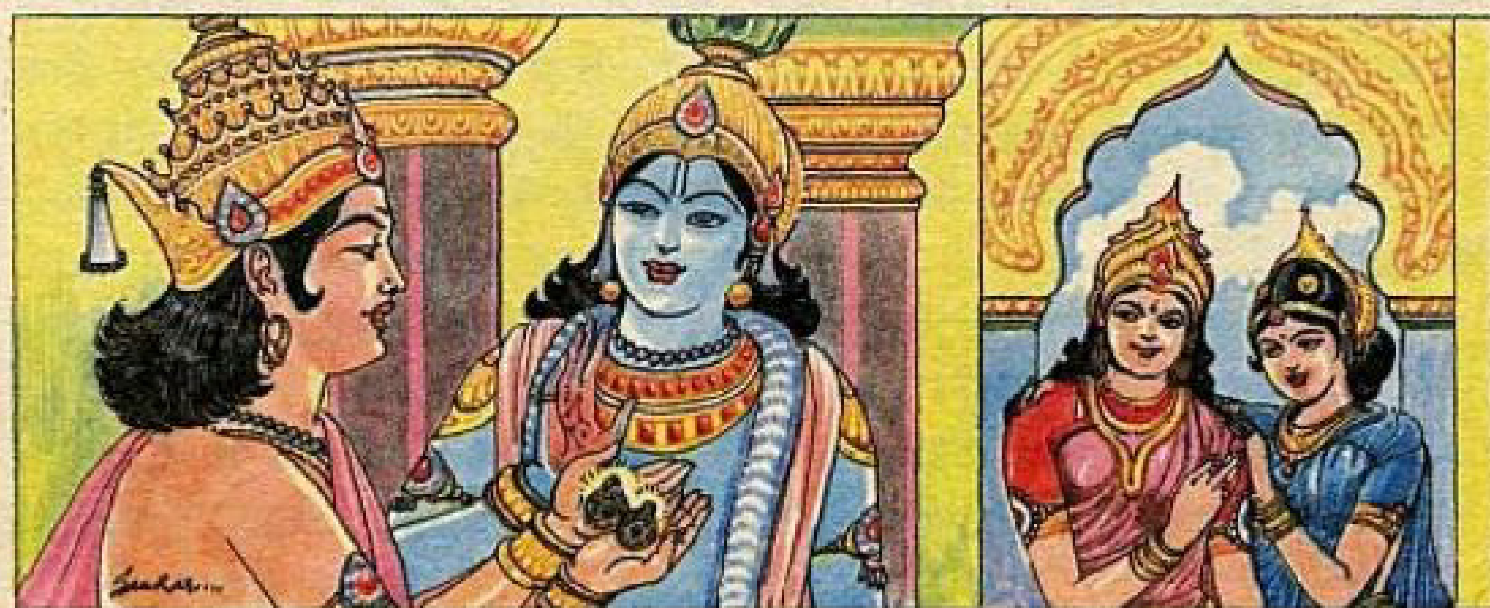
के शव की उत्तर-क्रिया विधिवत् संपन्न की और फिर उसके पुत्र भगदत्त का राज्याभिषेक करवाया ।

नगर के अन्दर अपार निधियाँ पड़ी थीं । नरकासुर के सेवकों ने देव-लोक में लूटपाट मचाकर उन्हें संग्रहित किया था । नरक के अनुचरों ने उन सारी निधियों को लाकर श्रीकृष्ण को सौंप दिया ।

देव लोक की सोलह हज़ार एक सौ नारियों को नरक ने बन्दी बनाकर मणि-शैल के पास रखा था । श्रीकृष्ण सत्यभामा को लेकर वहाँ पहुँचे । उन बन्दी स्त्रियों ने श्रीकृष्ण से कहा - "हम देवता-नारियाँ हैं । नारद ने एक बार हमारा दुख देखकर हमें सान्त्वना दी थी - तुम लोग चिन्ता मत करो । श्रीविष्णु मानव का अवतार ग्रहण कर नरकासुर का वध करेंगे । उनके वचन से आश्वस्त होकर हम आज तक सारे दुखों को झेलती आई हैं । अब हम सब धन्य हो गईं । "

श्रीकृष्ण ने स्नेहभरी दृष्टि से उनकी तरफ देखते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि उनके सभी मनोरथ पूर्ण हों । उनके लिए पालकियाँ लाने का आदेश राक्षस-सेवकों को दिया । अब श्रीकृष्ण ने उस मणि-शैल को चारों तरफ घूमकर देखा । और उसके एक शिखर को वृक्षों और पक्षियों सहित अलग कर उसे गरुड़ पर रख दिया । गरुड़ ने भी बड़ी आसानी से उसे ढोया । पर्वत शिखर सहित श्रीकृष्ण गरुड़ पर सवार हुए और इन्द्र की नगरी में पहुँचे । वहाँ इन्द्र और शचीदेवी से प्रेमपूर्वक मिले । शची और सत्यभामा ने एक दूसरे को आलिंगन दिया। कृष्ण ने अपने साथ लाये कुंडल इन्द्र को प्रदान किये । नरकासुर का नाश करने पर शची ने इन्द्र और सत्यभामा को बधाइयाँ दीं । और पूछा - "सत्यभामे, मैं तुम्हारी मन-पसन्द वस्तु तुम्हें देना चाहती हूँ । बताओ, तुम्हें क्या चाहिए ?"

उत्तर में सत्यभामा ने कहा - "मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है । मुझे केवल तुम्हारा स्नेह मात्र चाहिए । वह तुम दे ही रही हो । "





श्री कृष्ण और इन्द्र परस्पर चर्चा करते रहे और बाद में शचीदेवी तथा सत्यभामा को साथ लिये अदिति से मिलने गये । सब ने अदिति को प्रणाम किया । इन्द्र ने अदिति को उसके कुण्डल वापस दे दिये, फिर श्रीकृष्ण ने नरकासुर को कैसे पराजित किया उसका वर्णन सब को विस्तृत रूप में कथन किया ।

अदिति ने श्रीकृष्ण की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए उसको अनेक आशीर्वाद दिये और प्रेमपूर्वक कहा - "वत्स, तुमने अपने असामान्य बाहु-बल से मेरे सारे कष्ट दूर कर दिये । तुम्हारा जन्म अपूर्व है । तुम ने अब तक कई राक्षसों का संहार किया । दुष्टों का निर्दालन करके पीडितों को सुखी बनाया । शरणागतों का दुख दूर किया । इन्द्र के समान तुम भी देवताओं की सेवा करते रहो । इस पृथ्वी का कोई भी नराधम तुम्हें पराजित नहीं कर सकेगा । सर्वत्र यह मान्यता है कि नारियों में सत्यभामा की समता करनेवाली स्त्री दुर्लभ है । तुम जब तक मानव के अवतार में रहोगे, तब तक सत्यभामा का यौवन बना रहेगा । यही मेरा तुम्हारे लिए आशीर्वाद है । "

फिर अदिति और इन्द्र से विदा लेकर श्रीकृष्ण गरुड़ पर सवार हुए । सत्यभामा के साथ नंदनवन आदि देवलोक के उद्यानों में भ्रमण किया । वहाँ कल्प-वृक्षों के दर्शन किये । उनके फूलों पर भँवरे मंडरा रहे थे । उनकी शाखाओं पर झूले लगाये गये थे, जिन पर देव-कन्याएँ झूल रहीं थीं । उन्होंने रंग-बिरंगे फूलों से अपनी देह-लताओं को अलंकृत किया था । बीच बीच में ये कन्याएँ

२१. पारिजात का अपहरण



अत्यन्त प्रिय है । वह एक विशेष आनन्द व
अनुभव करने लगी । उसको लगा य
पारिजात वृक्ष द्वारका में अपने उद्यान में हो
कितना अच्छा होगा । वह आसपास के स
वातावरण को आनन्दमय बना देगा । उस
श्रीकृष्ण को निवेदन किया कि वह वृक्ष उसे
दें ।

सत्यभामा की इच्छा जानकर श्रीकृष्ण
तुरन्त पारिजात वृक्ष को जड़ सहित उख
लिया और उसे गरूड़ की पीठ पर रख दि
और फिर वहाँ से चल पड़े । इस
देव-लोक के उद्यानों की रक्षा करनेवा
पहरेदारों ने श्रीकृष्ण से युद्ध प्रारंभ किया
उद्यान के उत्तमोत्तम वृक्षों की रक्षा कर
उनका उत्तरदायित्व था । पारिजात
सर्वोत्तम वृक्ष ठहरा । उसके संरक्षण में ज़
भी असावधानी होती तो वह उनकी हिमाल
जैसी भूल होती । श्रीकृष्ण ने बाण चलाक
उन्हें तत्काल पराजित किया । थोड़ी देर
इन्द्र को यह सब समाचार मालूम हुआ ।

सभी लोग जानते ही हैं कि श्रीकृष्ण ती
लोकों के संरक्षक है । अगर वे पारिजात ले
जाते हैं तो उन्हें रोकना नहीं चाहिए । फिर
उस समय इन्द्र अपने ऊपर नियंत्रण नहीं र
सका । अन्य देवताओं के साथ आकर उस
श्रीकृष्ण को रोका और उन पर वज्रायुध
प्रहार करनेको था । श्रीकृष्ण ने उसको बीच
में ही रोक दिया । अब इन्द्र कुछ कर
सका । उसने स्वीकार किया जब तक श्रीकृष्
जीवित रहेंगे, तब तक पारिजात पृथ्वी पर

गाने भी गा रहीं थीं । सब दूर भ्रमण करके लौटे हुए सिद्ध-मिथुन उन वृक्षों की शीतल छाया में आराम कर रहे थे । इन कल्प-वृक्षों के बीच श्रीकृष्ण ने एक पारिजात देखा । उसकी भीनी भीनी खुशबू चित्तवृत्ति को उल्हासित करती थी । उसके पुष्पों की सुंदरता को देख नेत्र संतुष्ट हो जाते । देवतागण उस वृक्ष की पूजा करते थे और शची को वह प्राणों से भी प्रिय था । उसका यश तीनों लोकों में विख्यात था । उसके पास जानेवालों को जाति-स्मृति हो जाती ।

पारिजात के फूलों की भीनी सुगंध से सत्यभामा अत्यन्त प्रसन्न हुई, उसको मालूम हुआ कि देवता-नारियों को पारिजात वृक्ष

रहेगा । इन्द्र ने सोचा, अब तक पारिजात ने देव-लोक की शोभा बढ़ाई, इसके बाद वह द्वारका में रहे तो मुझे आपत्ति करना उचित नहीं । उसने अपने मोह को रोका और स्वीकार किया कि श्रीकृष्ण पारिजात को पृथ्वी पर ले जाएँ । फिर इन्द्र वहाँ से चला गया और श्रीकृष्ण द्वारका के लिए चल पड़े ।



गरूड़ ने पारिजात सहित सत्यभामा तथा श्रीकृष्ण को द्वारका के राजभवन की छत पर उतार दिया । श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य बजाकर अपने आगमन का समाचार सारे नगरवासियों को दिया । सब लोग दौड़ते हुए उनके पास आ पहुँचे । श्रीकृष्ण ने सभी बुजुर्गों को प्रणाम किया और छोटों को आलिंगन देकर उनका कुशल पूछा । श्रीकृष्ण के दर्शन करके सब को अतीव प्रसन्नता हुई

प्रद्युम्न ने आकर पारिजात वृक्ष को अंतःपुर में पहुँचा दिया । जो भी उसके पास गया, उसने आश्चर्य के साथ अपने पूर्व-जन्म का ज्ञान पाया । पारिजात की यह विशेषता देखकर सब को बड़ा विस्मय हुआ । फिर उस वृक्ष को यथोचित स्थान पर रोप दिया गया । पारिजात द्वारका में सभी स्त्रियों में बहुत प्रिय हुआ । रोज़ सुबह द्वारकावासी नारियाँ पारिजात के आसपास की भूमि को साफ करती, फिर उसमें पानी देती । बाद में पारिजात की पूजा कर कुछ फूलों को प्रसाद-स्वरूप ग्रहण करती । पारिजात के फूलों को अपने पास रखकर वे अत्यन्त उल्हासित हो उठती । पारिजात की सेवा के लिए नारियों में होड़-सी लगी रहती ।

नरकासुर के कारागार से मुक्त होकर जो नारियाँ पालकियों में द्वारका पहुँच गई, उन सब के साथ श्रीकृष्ण ने स्वयं विवाह कर लिया ।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने गरुड़ का यथोचित सन्मान किया और उसे देवलोक की ओर प्रस्थान करने को अनुमति दी । गरुड़ ने श्रीकृष्ण को वचन दिया कि वे जब कभी उसका स्मरण करेंगे, तब तुरन्त वह उनकी सेवा में उपस्थित हो जाएगा । फिर गरुड़ ने देव-लोक की ओर प्रस्थान किया ।

गरुड़ के चले जाने के बाद श्रीकृष्ण ने सभी द्वारकावासियों को बुलाया और जिन वस्तुओं को वे अपने साथ लाये थे, उनका वितरण किया । उग्रसेन, उनकी पत्नी तथा अन्य लोगों को



भेंट-वस्तुएँ देने के बाद जो बचीं उनको राजकोश में संमिलित कराया गया ।

सत्याभामा पारिजात के फूलों से प्रति दिन अपने को अलंकृत करने लगी । अपनी सौतों में भी वह इन फूलों का वितरण करती । लेकिन उधर देवलोक में पारिजात की अनुपस्थिति इन्द्र को बहुत खटकती । वह दीनतापूर्वक शची की ओर देखता रहता । पारिजात के अभाव में कुछ दिन शची उदास-सी रहती । फिर धीरे धीरे उसकी व्यथा की तीव्रता कम होती गई ।

एक बार हस्तिनापुर में दुर्योधन ने एक यज्ञ प्रारंभ किया । उसमें संमिलित होने के लिए पृथ्वी के समस्त राजाओं को निमंत्रित किया गया था । यज्ञ की समाप्ति पर कई राजाओं को श्रीकृष्ण का वैभव देखने की इच्छा हुई । उन्होंने श्रीकृष्ण को एक दूत द्वारा संदेश भेज कि वे उनके और द्वारका के दर्शन करना चाह हैं । श्रीकृष्ण ने प्रत्युत्तर में उनको सप्रेम निमंत्रण दिया कि वे अवश्य पधारें । निमंत्रण पाकर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, उनके सामन्त तथ पांडव भी अठारह अक्षौहिणी सेना समेत निकल और रैवतक पर्वत पर उन्होंने डेरा डाला ।

श्रीकृष्ण अपने अतिथियों के स्वागत के लि बलराम, सात्यकि, प्रद्युम्न आदि के साथ अपन विशाल सेना लेकर आ पहुँचे । उन्होंने सब का यथोचित स्वागत किया, वस्त्रों का वितर किया और फिर निवेदन किया - "मैं तथा मे ये सारे बांधव आप लोगों के अपने ही हैं आपकी जो भी इच्छा हो, बिना संकोच के माँ लीजिए । हम उन सभी वस्तुओं का प्रबंध करेंगे । द्वारका में किसी चीज़ का अभाव नही है । आपको जो चाहिए, उसके बारेमें आदेश दीजिए । आपको हर मनचाही वस्तु मिल जाएगी । सभी द्वारकावासी आपकी सेवा के लिए तत्पर रहेंगे । " सब लोग कुछ दिन श्रीकृष्ण के सहवास में रहकर अपने अप स्थान चले गये ।

एक बार अर्जुन युधिष्ठिर की अनुमति पाक श्रीकृष्ण से मिलने के लिए द्वारका पहुँचा औ उसने कुछ दिन श्रीकृष्ण का आतिथ्य ग्रह किया । उन्हीं दिनों में श्रीकृष्ण ने एक यज्ञ प्रारंभ किया । यज्ञ में एक देहाती ब्राह्मण आ पहुँचा और यज्ञ-कार्य में निमग्न श्रीकृष्ण के सामने खड़ा हो गया । बड़ी दीनता के साथ

उसने श्रीकृष्ण से निवेदन किया - "महानुभाव, कृपया मेरी प्रार्थना सुनेंगे ? मेरी पत्नी के प्रसव के तुरन्त पश्चात् कोई उन शिशुओं का अपहरण कर रहा है । अब तक तीन बार ऐसा हुआ है । अब चौथी बार मेरी पत्नी गर्भवती है । प्रसव का समय करीब है । मैं चाहता हूँ कि जो तीन बार हुआ वह चौथी बार न हो । यह मेरा क्या दुर्भाग्य है कुछ समझ में नहीं आता । मैंने कई ज्ञानियों से पूछा । कोई मेरी कुछ मदद न कर सके । इस लिए अब मैं आपकी शरण में आया हूँ । अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं । "

श्रीकृष्ण ने कहा -"कोई भी रक्षा की कामना से मेरी शरण में आता है तो उसकी सहायता करना मेरा कर्तव्य है । पर इस समय मैं अपने यज्ञ-कार्य में व्यस्त हूँ । क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता । "

अर्जुन दोनों का वार्तालाप सुन रहा था । उसने दखल दी - "आप मुझे क्यों नहीं भेजते ? मैं इस ब्राह्मण के साथ जाकर इसकी विपदा को दूर करूँगा और आपको संतोष दे दूँगा । "

कृष्ण ने मुसकुराते हुए पूछा -"तुम्हें लगता है यह कार्य तुम संपन्न कर सकोगे ? कोशिश करना चाहो तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं है । "

अर्जुन ने कुछ अपमान का अनुभव किया और सिर झुका लिया । तब श्रीकृष्ण ने कहा -"एक काम करो । अकेले मत जाना । बलराम, प्रद्युम्न, सात्यकी और कुछ यादव-वीरों तथा सेना को भी साथ लेते जाओ । "

श्रीकृष्ण के सुझाव के अनुसार अर्जुन कई



योद्धा तथा भारी सेना के साथ रथ पर सवार हो ब्राह्मण के गाँव पहुँचा ।

इतने में सियारों की चिल्लाहट सुनाई दी । आसमान में सूर्य का प्रकाश धीमा पड़ गया । ऐसा लगा कि संध्या-समय निकट आ रहा है । एक भयंकर ध्वनि के साथ पृथ्वी पर उल्कापात हुआ । और उसी समय ब्राह्मणी की प्रसव-पीड़ा शुरू हुई । ब्राह्मण ने आकर यह समाचार दिया तो सभी योद्धा धनुष-बाण लिये प्रसूति-ग्रह के समीप आ पहुँचे ।

आधी रात के समय ब्राह्मणी प्रसूत हुई । शिशु के रोने की आवाज़ सुनाई दी । और इतने में औरतें चिल्ला उठीं - "ओह ! चला गया, यह भी चला गया !" नारियों के आर्त नाद के साथ शिशु के रोने की ध्वनि



हुई उसका पाप तुम्हें लगेगा । उसके फल को तुम्हें भोगना पड़ेगा । तुम्हारा गांडीव व्यर्थ है, तुम्हारा पराक्रम वृथा है । अब चुपचाप अपना रास्ता नापो । जाओ । ''

इसके बाद ब्राह्मण पुनः श्रीकृष्ण से मिलने के लिए निकला । उसके पीछे अर्जुन और अन्य योध्दा भी चल पड़े । लज्जा के मारे सिर झुकाकर आँखों में आँसू भरकर सभी श्रीकृष्ण के सामने खड़े हो गये । सांत्वना देते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा - ''इतनी-सी बात के लिए तुम चिंता क्यों करते हो ? तुम्हारी असफलता का एक कारण है । ठीक समय पर मैं उसे तुम्हें समझाऊँगा । '' अब कृष्ण ने दारुक को बुलाया और उसे रथ तैयार करनेका आदेश दिया ।

आसममान की ओर से सुनाई दी ।

अर्जुन तथा अन्य योद्धाओं ने आकाश को बाणों से पाट दिया । पर आसमान में कुछ नहीं दिखाई दिया । सभी बाण व्यर्थ-से गये । विस्मय में सब खड़े ही रह गये ।

बुजुर्गों ने अर्जुन तथा अन्य योध्दाओं की निंदा की । वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधित होकर बोला - ''तुमने महान् पराक्रमी वीर की भाँति श्रीकृष्ण के सामने डींग हांकी थी और यह कार्यभार अपने सिर पर लिया था । जो कार्य केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं, उसे तुम कैसे कर सकते हो ? श्रीकृष्ण के साथ तुमने अपनी तुलना कैसे की ? भविष्य में ऐसा दंभ कभी न करना । रक्षा करनेका आश्वासन देकर उसे निभा न सके । इस प्रकार धर्म की जो हानि

दारुक ने कृष्ण के रथ में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा वलाहाकल नामक चार घोड़ों को जोत लिया, फिर उस पर गरुड़-ध्वज को फहराया । श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना सारथी बनाया और रथ पर सवार हो उत्तर दिशा की ओर चल निकले । जंगल, पहाड़ और नदियों को पार कर रथ समुद्र के तट पर पहुँच गया ।

मानव रूप धर कर समुद्र प्रत्यक्ष उपस्थित हुआ, श्रीकृष्ण को अर्घ्य प्रदान किया और फिर पूछा - ''महाशय, मेरे लिए आपका क्या आदेश है ?''

''और कुछ नहीं, मेरे रथ के लिए रास्ता बना दो । ''

समुद्र ने नम्रता के साथ कहा - ''भगवान्,


Sankar

सेवा का ऐसा अवसर पाकर मैं कृतकृत्य हो गया । मैं आपका कृतज्ञ हूँ । आप ही ने तो मुझे अलंघ्य और अपार स्वरूप दे दिया । "

श्रीकृष्ण के आदेश के अनुसार समुद्र ने रास्ता बना दिया । श्रीकृष्ण का रथ कुरु-भूमियों को पार कर गंधमादन पर्वत की ओर बढ़ने लगा । अब छः पर्वत श्रीकृष्ण के सामने आ उपस्थित हुए - जयंत, वैजयंत, नीलश्वेत, इन्द्रकूट और कैलास । विभिन्न रंगों की धातुओं से उनके देह अलंकृत थे । उन्होंने विनम्र हो पूछा - "भगवन्, क्या आदेश है हमारे लिए? "

श्रीकृष्ण ने कहा -"और कुछ नहीं, हमें आगे जाने के लिए मार्ग चाहिए । "

पर्वतों ने झुक कर श्रीकृष्ण के रथ के लिए तुरन्त मार्ग बना दिया । बादलों के बीच प्रयाण करनेवाले सूर्य की भाँति श्रीकृष्ण का रथ पर्वतों के बीच से दूर निकल गया । अब अत्र-तत्र अंधकार छा गया । इसे देख अर्जुन डर गया । घोड़े ठिठक गये । चारों तरफ शिला के समान घनीभूत अंधकार को श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से ध्वस्त कर दिया । अर्जुन ने अपना रथ आगे बढ़ाया ।

बहुत दूर निकल जाने के बाद एक स्थान पर ऐसी कांति एकत्रित हुई दिखाई दी जैसे कोटि सूर्य एक हो गये हों । कृष्ण अपने रथ से नीचे उतरे और उन्होंने उस घनीभूत कांति में प्रवेश किया ।

अर्जुन तथा ब्राह्मण इस विचार से डरने लगे - "यह अपूर्व कांति कैसी ? श्रीकृष्ण अकेले ही इसके भीतर क्यों चले गये । अब आगे चल कर क्या होगा ?" आश्चर्य, इतने में श्रीकृष्ण उस कांति के बीच में से वापस बाहर आ गये । उनके साथ तीन ब्राह्मण-कुमार भी थे । श्रीकृष्ण के हाथों में एक नवजात शिशु भी था ।

श्रीकृष्ण ने उन चारों को ब्राह्मण के हाथ सौंप दिया । ब्राह्मण के आनन्द की और अर्जुन के आश्चर्य की कोई सीमा न रही ।

श्रीकृष्ण का रथ जिस मार्ग से गया था, उसी मार्ग से घर की तरफ लौटा । श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को अनेक उपहार देकर उसे बिदा किया । फिर उन्होंने अपने यज्ञ की पूर्ति की ।





श्रीकृष्ण द्वारा प्रारंभ किया यज्ञ पूरा हुआ। कई हज़ार ब्राह्मणों को भोजन दिया गया। भोजन में तरह तरह के स्वादिष्ट पकवान बनाये गये। सर्वत्र घी की खुशबू बिखर रही थी। ऐसा सुस्वादु भोजन करके सभी अतीव प्रसन्न हो गये। सब ने भोजन की भूरी भूरी प्रशंसा की। अर्जुन, सात्यकी आदि पचास लोगों के साथ बैठकर श्रीकृष्ण ने भी भोजन किया। इसके बाद सब सभाभवन में पहुँचकर बातें करने लगे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा, "हमें इस बात का कोई पता ही नहीं चला कि आगे चलकर उन ब्राह्मण पुत्रों का क्या हाल हुआ? उन्हें कौन उठा ले गये थे? उनको कहाँ छिपा रखा गया था? आपने कहा था कि वह सब कुछ ठीक समय पर आप बता देंगे। क्या अभी वह उचित समय है?"

"इस पूरी सृष्टि के सृजनकर्ता परमेश्वर मुझे देखना चाहते थे। उन्हें मालूम है कि मैं ब्राह्मणों के कार्य में उपेक्षा नहीं दिखाता। इसी विचार से वे एक एक ब्राह्मण पुत्र को गायब करते गये। मैंने भी उनकी इच्छा को पूर्ण करने के विचार से समुद्र को अलग अलग शाखाओं में चीर कर और पहाड़ों को ढ़केलते हुए रास्ता बनाया और आगे बढ़ा। वे सब दृश्य तो तुमने अपनी आँखों से देखे हैं।" श्रीकृष्ण ने जवाब में कहा।

इसके बाद अर्जुन लौट गया। उसने जो जो अद्भुत देखे थे, उनका सविस्तार वर्णन युधिष्ठिर को सुनाया। युधिष्ठिर यह सब सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"अर्जुन, ब्राह्मण की मदद करने के लिए तो

२२. कृष्ण की कैलास यात्रा



तुम्हें एक पुत्र प्रदान करूँगा । तपस्या के द्वारा असंभव कार्य भी संभव हो जाता है । हिमालय में जाकर महादेव को मैं प्रणाम करूँगा । बदरीवन में तप करनेवाले तपस्वियों को भी रास्ते में मैं देखना चाहता हूँ । इस यात्रा से अनेक शुभ लाभ होंगे । मैं ज़रूर कैलास की यात्रा करूँगा । तब तक तुम यहीं रहो । तुम्हारी इच्छा ज़रूर पूर्ण होकर रहेगी । इसके पहले मुझे अपने शेष काम पूर्ण करने दो ।" श्रीकृष्ण ने कहा ।

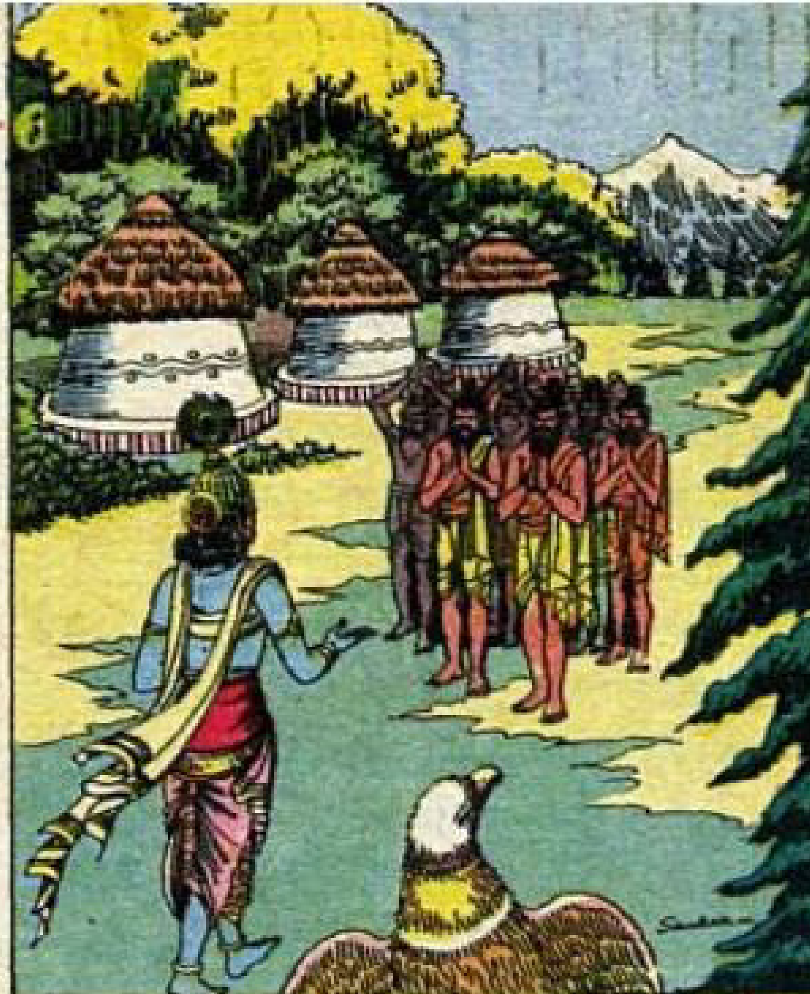
दूसरे दिन प्रात:कृत्यों से निबटकर श्रीकृष्ण ने बलराम, सात्यकी, उग्रसेन, कृतवर्मा, उद्धव तथा अन्य सभी प्रमुख व्यक्तियों के पास सन्देश भिजवाया, कि वे सभाभवन में उपस्थित हो जाएँ । थोड़ी ही देर में सब सभाभवन में उपस्थित हुए । सब को संबोधित कर कृष्ण ने कहा:—

"अपने प्राय: सभी शत्रुओं का मैं ने संहार किया है । फिर भी और एक व्यक्ति बचा हुआ है । वह साधारण व्यक्ति नहीं है; अत्यन्त पराक्रमी और साहसी है वह । उसका नाम है पौण्ड्र । मैं उससे डरता नहीं हूँ । उसका संहार करने पर ही मेरी सच्ची विजय मानी जाएगी । मगर मुझे इस समय कैलास-यात्रा के लिये जाना है । मेरी अनुपस्थिति में पौण्ड्र हमारी नगरी पर ज़रूर हमला करेगा । विश्वभर के यादवों का संहार करने की शक्ति उसमें है । इसलिए मेरे लौटने तक आप लोगों को बड़ी सतर्कता के साथ दिन-रात इस नगरी की रक्षा करनी

तुम भी गये थे । पर तुम्हें सफलता न मिली । ऐसे मुश्किल काम तो श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं । फिर भी श्रीकृष्ण की मदद करने के इरादे से तुम ने प्रस्ताव रखा और स्वीकृत कार्य को सिद्ध करने की कोशिश की इसलिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । पराक्रमी मनुष्य को नये नये आव्हानों का स्वीकार करना चाहिए । सफलता मिले या न मिले— दूसरी बात है?"

एक दिन रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से कहा, "मैं ने प्रद्युम्न को जन्म दिया है, लेकिन और अधिक सन्तान पाने की मेरी इच्छा है । आप जैसा योग्य पत्र मुझे चाहिये । क्या आप मेरी इस इच्छा की पूर्ति नहीं करेंगे?"

"मैं भगवान शंकर की आराधना करके



होगी । नगर के सभी द्वारों की कड़ी सुरक्षा रखिये । बिना अनुमति किसी को भी न बाहर जाने दिया जाय, न अन्दर आने दिया जाय । चतुरंग सेना सुसज्ज रखिये । अस्त्र-शस्त्रों का खूब संग्रह किया जाय । अष्ट दिशाओं की काफ़ी निगरानी रखी जाय । मुझे आशा है कि जो उत्तरदायित्व मैं तुम पर सौंप रहा हूँ, उसे तुम खूब निभाओगे । आज तक कई बार युद्ध तुमने किये ही हैं, इस बार तुम्हारी सच्ची परीक्षा है । मन में किसी प्रकार का भय न रखना । मैं यथासंभव शीघ्र लौटने की कोशिश करूँगा ।"

इसके बाद सात्यकी को लक्ष्य कर उन्हों ने कहा, "सुनो, इस नगर-सुरक्षा का भार मैं तुम पर सौंप रहा हूँ । यादव वंश की सारी संपदा का रक्षक मैं तुम्हीं को नियुक्त कर रहा हूँ ।"

"आप की आज्ञा और बलराम का सहयोग यदि मुझे प्राप्त है, तो ऐसा कोई कार्य न होगा जिसे मैं पूरा न कर सकूँ । एक पौण्ड्र ही क्या, खुद इन्द्र भी सारे दिक्पालों और समस्त देवताओं को साथ लेकर हमारे नगर पर आक्रमण करने आयें, तो भी मैं उनकी परवाह नहीं करूँगा ।" सात्यकी ने इत्मीनान से कहा ।

बाद में कृष्ण ने उद्धव से कहा, "गुरुवर, आप बुद्धि में बृहस्पति के समान हैं । आप से मैं क्या कहूँ? आप अपने बुद्धिबल से हमारे सारे यादव वीरों का संचालन कीजिये । यह दायित्व मैं आप को सौंप रहा हूँ । इसी प्रकार बलराम, उग्रसेन तथा अन्य प्रमुख यादवों को सावधान करके श्रीकृष्ण ने गरुड का स्मरण किया । तत्काल गरुड आकर कृष्ण के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा । कृष्ण ने बताया कि उन्हें कैलास जाना है, और वे गरुड की पीठ पर सवार हुए । गरुड आसमान में उड़कर ईशान्य की ओर रवाना हुआ । गरुड़ ने पूछा– "महाराज, कहाँ जाने की आज्ञा है? सीधे कैलास जाना है कि बीच में और कहीं रुकना है?"

श्रीकृष्ण ने कहा– "बदरीवन के मुनियों का समाचार जानना है । एक बार बड़ी त्रस्त अवस्था में वे द्वारका आये थे । उनके प्रथम दर्शन करके फिर कैलास की ओर बढ़ेंगे ।"

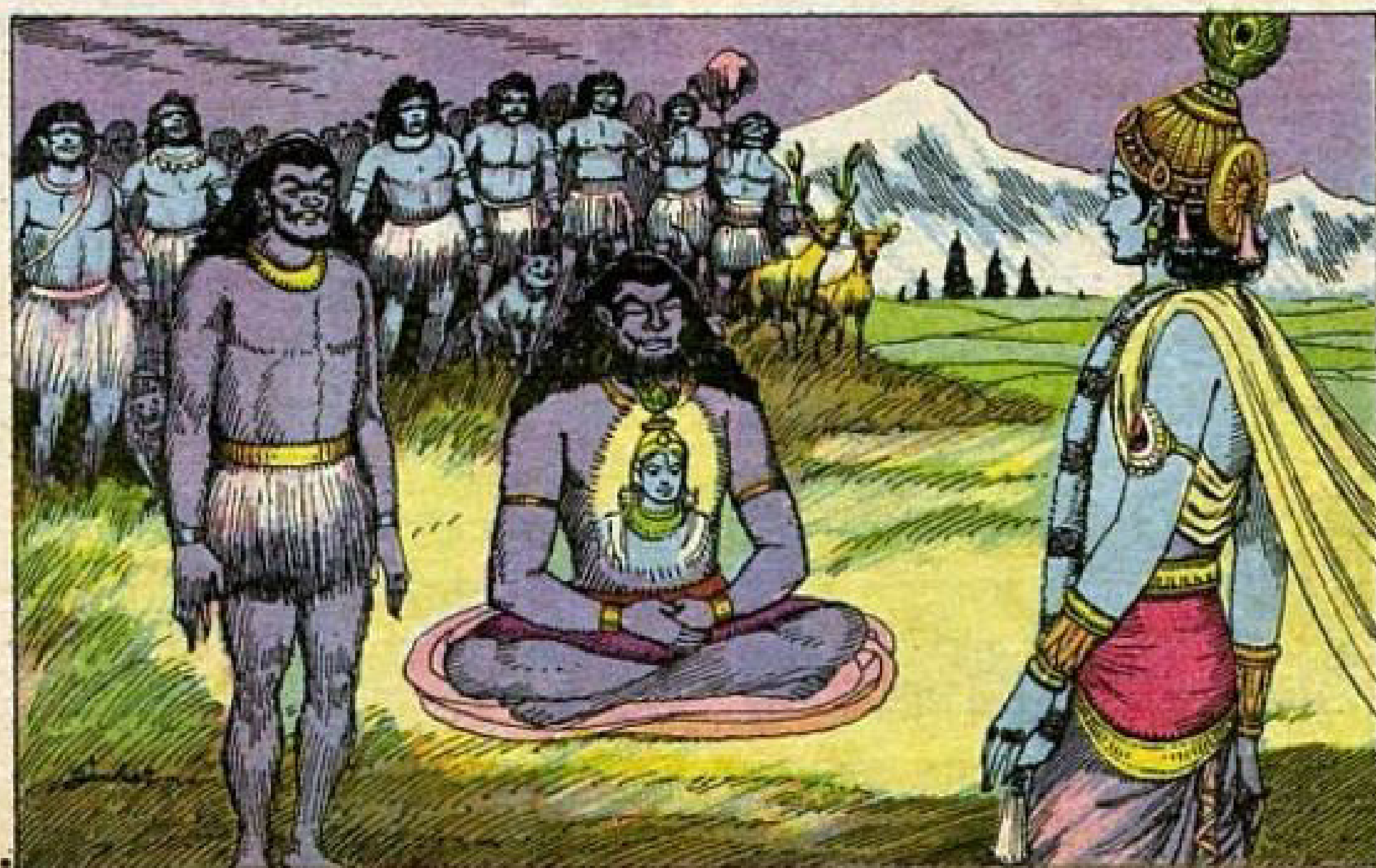
मार्गमध्य में श्रीकृष्ण बदरीवन में उतरे ।

वहाँ मुनियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। कृष्ण ने उनका आतिथ्य ग्रहण कर रात वहीं बितायी। अर्ध रात्रि के समय कृष्ण के मन में उस प्रदेश में संचार करने की इच्छा हुई। बड़ी देर तक वहाँ संचार करने पर वे एक मनोहर प्रदेश में पहुँचे। वहाँ स्वस्तिकासन लगा कर वे समाधि स्थिति में पहुँचे।

उस समय मृगों का पीछा करते हुए हज़ारों पिशाच वहाँ आ निकले। उनके नेता थे घंटाकर्ण नामक राक्षस और उसका छोटा भाई। वे कृष्ण के समीप पहुँचे। उन्होंने पूछा, "महाराज, आप कौन हैं? देखने में तो आप बहुत सुकुमार लगते हैं। इस वन में आप क्यों रह रहे हैं? कौन हैं आप? कोई राक्षस, या देवता? आप कोई भी हो, क्या मेरे लायक कोई सेवा है? क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ। आपकी सेवा का अवसर पाकर कृतार्थ हो जाऊँगा।"

"मैं यदुवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरा काम है–दुष्टों का संहार करना और सज्जनों को प्रसन्न करना। शंकरजी के दर्शनार्थ मैं कैलास जा रहा हूँ। मगर यह बताओ, तुम कौन हो? यह प्रदेश तो साधुओं का निवासस्थान है। यहाँ मृगों की हिंसा वर्जित है। मगर तुम लोग तो मृगों का शिकार करने यहाँ पहुँचे हो। ऐसेमें मैं तुम लोगों को क्षमा नहीं कर सकता।" श्रीकृष्ण ने कहा।

घंटाकर्ण ने अपना परिचय दिया, "मेरा नाम है घंटाकर्ण और यह है मेरा छोटा भाई। यह सारी मेरी सेना है। मैं एक विष्णुभक्त हूँ। उनकी पूजा के लिये ही मैं शिकार कर रहा हूँ; इसलिये मेरे इस कार्य को 'हिंसा' नहीं



कहना चाहिये । और एक बात सुन लीजिये – मेरे इष्ट देवता इस समय वसुदेव के पुत्र के रूप में जन्म धारण कर द्वारका में निवास कर रहे हैं । मैं अभी उनके दर्शन के लिये ही सेनासहित जा रहा हूँ ।"

यह बोलते हुए वह कृष्ण के पास ही बैठ गया और हाथ जोड़कर अपने आराध्य देव का ध्यान करने लगा । उसको देखकर कृष्ण को बड़ा आनंद आया । वह तो खुद अपना ही भक्त है, मगर उसके कार्य पिशाचों के हैं । आखें बन्द कर ध्यान में मग्न घण्टाकर्ण के मनोनेत्रों के सामने कृष्ण ने अपना स्वरूप दर्शाया । उसने जब आँखें खोलकर देखा, तब उसने अपने सामने वही रूप देखा । वह उठ खड़ा हुआ और आनन्द विभोर हो नाचते हुए चिल्ला उठा, "मैं ने कृष्ण को देखा है, विष्णु के दर्शन किये हैं ।" साथ ही उसने अनेक प्रकार से कृष्ण का स्तोत्र पाठ किया । इसके बाद अपने शूल में चुभा रखे एक शव को निकाल कर उसने उसके दो टुकड़े किये और कहा, "यह एक पवित्र ब्राह्मण का शव है । इसे मैं भक्तिपूर्वक समर्पित कर रहा हूँ । ग्रहण कीजिये ।"

कृष्ण के मन में घण्टाकर्ण के प्रति दयाभाव उत्पन्न हुआ । उन्होंने उसे समझाया, "सुनो, वत्स, मुझ जैसे लोग शवों को स्पर्श भी नहीं करते । ऐसी पूजा से मुझे घृणा है । साधारण पिशाचों द्वारा किये जानेवाले ऐसे कार्य तुम्हारे जैसे मेरे भक्त को शोभा नहीं देते । तुम सदा मेरा स्मरण करते हो, इसलिये मैं तुम्हें उत्तम लोक प्रदान करूँगा । यह हिंसा का काम छोड़ दो । एक उत्तम व्यक्ति को





शोभा दे ऐसे कार्य करते रहो । किसी की हत्या करना कभी अच्छा काम नहीं होता । पुण्य-कर्म करते रहो ।" यह कहकर कृष्ण ने उसके शरीर को स्पर्श किया । जिस प्रकार पारस के स्पर्शमात्र से लोहा सोने में परिवर्तित होता है, उसी प्रकार वह भयंकर पिशाच घण्टाकर्ण एक दिव्य पुरुष के रूप में परिवर्तित हो गया ।

शीघ्र ही रात बीत गयी, सूर्योदय हुआ । कृष्ण ने गंगास्नान किया और बदरीवन के मुनियों से बिदा लेकर गरुड पर आरूढ़ हो वे कैलास की ओर निकल पड़े । कैलास के समीप पहुँचते हुए कृष्ण ने उस पर्वत पर अनेक दृश्य देखे । शिवजी के कार्यों का स्मरण करते हुए उन्होंने आनन्द प्राप्त किया ।

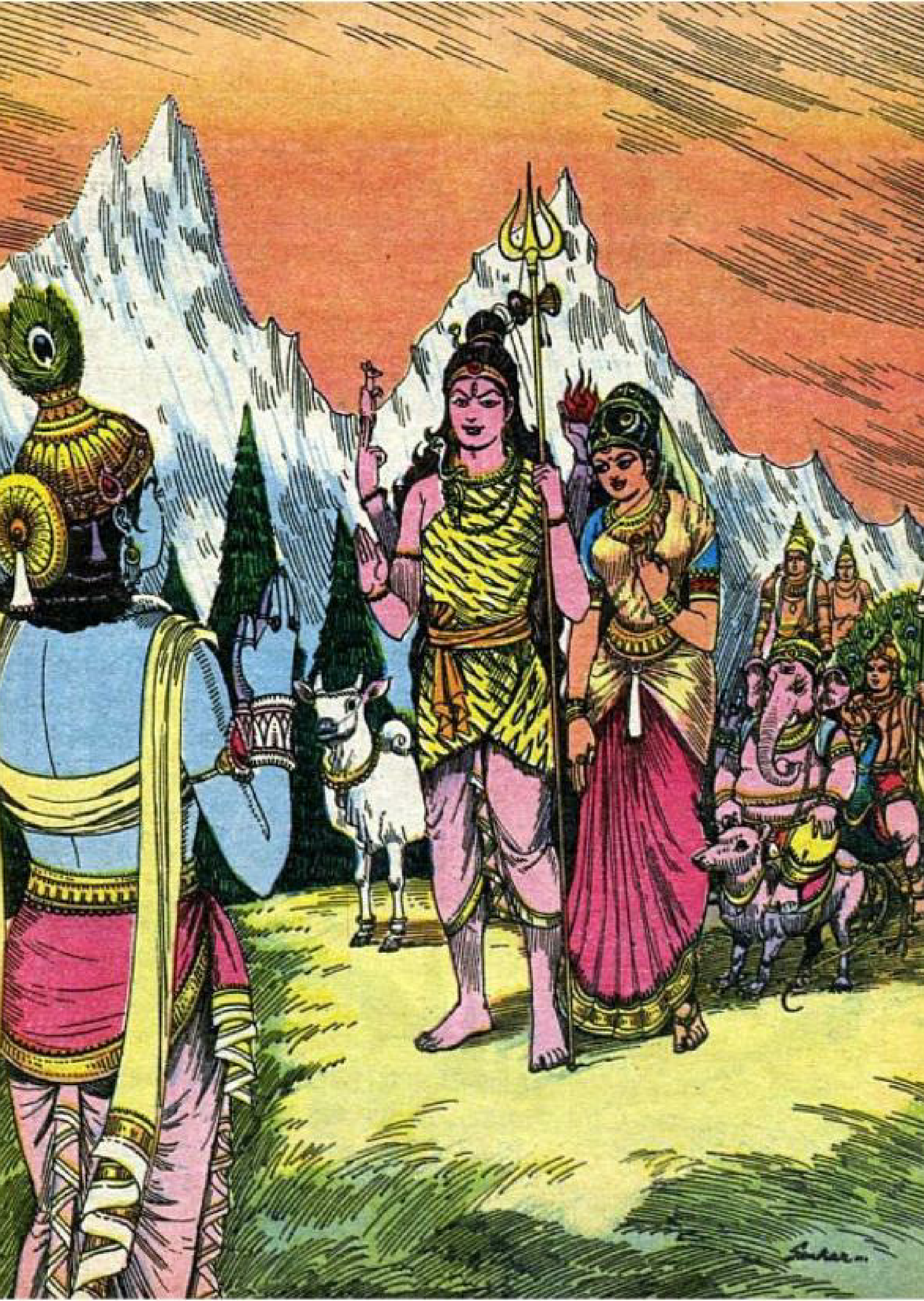
थोड़ी देर बाद वह मानसरोवर के उत्तरी तटपर उतर गये, वहाँ के मुनियों का परिचय प्राप्त किया और बारह साल पर्यंत तप करने के लिये तैयार हो गये । उन्होंने फागुन मास के प्रारंभ में दीक्षा ग्रहण की और कन्दमूलों का सेवन करते हुए बारह वर्ष तप किया । बारह साल जब पूरे हुए, तब अन्तिम दिन इन्द्र तथा अन्य देवता कृष्ण को देखने आये । उनकी समझ में यह बात न आ रही थी, कि किस उद्देश्य से कृष्ण ने यह दीर्घ तपाचरण किया ।

दूसरे दिन स्वयं शिवजी पार्वतीसहित अपने वृषभ वाहन पर सवार होकर कृष्ण से मिलने आये । उनके साथ पुष्पक पर कुबेर तथा विघ्नेश्वर व कुमार स्वामी अपने अपने वाहनों पर चल रहे थे । उनके पीछे भूत गण चले आये । वे सब नाचते, गाते चल रहे थे ।

कृष्ण को दूर से ही देखकर शिवपार्वती वृषभ वाहन से उतर पड़े । कृष्ण भी शिव को देख अपने आसन से उतर पड़े, आगे होकर आदर से झुककर प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये । उस समय वहाँ पहुँचे हुए समस्त देवताओं ने शिव-केशव को एक साथ देखकर अपने अपने जन्म को धन्य माना ।

इसके उपरान्त कृष्ण ने शिव को साष्टांग प्रणाम करके उनका यशोगान किया । इसपर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कृष्ण का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा ।

"कृष्ण, इसके पूर्व ही आपने अपनी तपोसिद्धि द्वारा वरदान के रूप में मुझ से एक



पुत्र को प्राप्त किया है । इस के पूर्व मैंने कृतयुग में किसी संकल्प से प्रेरित होकर सैकड़ों वर्षों तक अत्यन्त निष्ठापूर्वक तपस्या की थी । उस समय मेरी परिचर्या करने के लिये हिमवान ने अपनी उपवर कन्या और उसकी सखियों को मुझे समर्पित किया था । मैंने भी उन्हें स्वीकार किया था । उस संदर्भ में हम दोनों को मिलाने के विचार से इन्द्र ने कामदेव को प्रेरित किया था । कामदेव ने समाधि से बाहर निकलने तक मेरी प्रतीक्षा की और मेरे हृदय पर सम्मोहनास्त्र का प्रयोग किया । तत्काल मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि ऐसे दुष्ट का वध करना चहिये; और अपने आप मेरे भालनेत्र से अग्नि उत्पन्न हुई । तभी आकाशस्थ देवता चिल्लाने लगे, "आप कृपा करके कामदेव को दण्ड न दीजिये, उनपर क्रोध न करे ।" इस बीच ज्वालाओं ने कामदेव को घेर लिया और उसको भस्म कर डाला । इसके बाद ब्रह्मा आदि देवता आ पहुँचे और उन्होंने बताया कि वह तीनों लोकों का कल्याण करनेवाला है । ब्रह्मा के संकल्प के अनुसार उसको आप के पुत्र के रूप में निर्धारित किया । वही आपका प्रद्युम्न है । आप के और रुक्मिणी की प्रथम सन्तान-वही प्रद्युम्न–आप ने इस समय जो तप किया है उसके फल स्वरूप, पहले से ही आप को प्राप्त है ।"

इसके बाद शिवजी ने वहाँ पहुँचे मुनियों का परामर्श किया और उन्हें बताया कि कृष्ण को ही श्रीमन्नारायण मानकर सभी उनकी पूजा करें ।

उन्होंने मुनियों से कहा– "राक्षसों ने आप लोगों के यज्ञ-कर्म में बाधा डाली, उस समय आप श्रीकृष्ण की शरण में गये । यह आपका निर्णय बहुत ही योग्य था । श्रीकृष्ण शरणागत की रक्षा में नित्य दत्तचित्त रहते हैं । उन्हींके कारण आज बदरीवन में आप सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं ।"

बादमें वे खुद अदृश्य हुए । उनके साथ पार्वती, विघ्नेश्वर, कुमारस्वामी, नन्दी और प्रद्युम्न भी अन्तर्धान हुए । तब कृष्ण भी बदरीवन को लौट पड़े ।





पौण्ड्र वासुदेव द्वारका पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, कि इतने में नारद उसके पास पहुँचा । पौंड्र ने आगे बढ़कर नारद का स्वागत किया । उसकी पाद्य-पूजा कर अर्घ्य चढ़ाए और एक सुवर्णासन पर बिठाकर निवेदन किया—"महाशय, आप तो समस्त लोकों में संचार करते हैं । आप को कहीं कोई रोकता नहीं, आप पर कोई प्रतिबंध नहीं । इस लिए आप मेरी एक मदद कर सकते हैं? सभी लोकों में यह समाचार प्रसारित कीजिए कि मैं कृष्ण और उसके सैनिक बल का सर्वनाश करने जा रहा हूँ । वह गोप बालक मेरे नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि पा रहा है । बहुत दिन मैं इसकी उद्दण्डता को देख रहा हूँ । अब मैं इसे बहुत बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा । अब की मेरी ताकत को वह देखेगा, तो दंग रह जाएगा ।

सुन कर नारद ने मुस्कुराते हु कहा—"यह बात ठीक है कि मैं सारे लोकों संचार करता हूँ । मेरी बात पर सब लो विश्वास करते हैं । पर तुम जो करना चाह हो, उसकी सफलता में मुझे संदेह है । कृष् और तुम्हारे बीच समानता ही क्या है? व पहाड़ है, तो तुम कंकड़! तुम श्रीकृष्ण के सा कैसे होड़ कर सकोगे? श्रीकृष्ण अवश्य तुम्हें दण्ड देगा । इस लिए तुम अपना य इरादा छोड़ दो । तुम्हारा नाम वासुदेव और तुम्हारे पास भी शंख, चक्र, गदा आ आयुध हैं, इस लिए तुम श्रीकृष्ण से बराब कभी नहीं कर सकते । तुम्हारे गर्व का हर करने के लिए श्रीकृष्ण भी उचित समय प्रतीक्षा कर रहे हैं । श्रीकृष्ण आप होक

२३. पौंड्र वासुदेव का वध



तुमसे लड़ने नहीं आएँगे, पर तुमने उनसे युध्द छेड़ा तो तुम हार जाओगे । जीत उन्हींकी होगी । अब तक वे कहीं हारे नहीं हैं ।''

पौण्ड्र ठठाकर हँस उठा और बोला–''आप का प्रतिवाद करूँ तो आप नाराज़ हो जाएँगे । मुझे शाप देंगे ।अतः आप से कुछ कहते डर लगता है । ये ही बातें कोई और कहता तो मैं उसे ज़िंदा न छोड़ता । लगता है, मेरे पराक्रम का अन्दाज़ आप को भी ठीक नहीं है । कृष्ण मेरे सामने है ही क्या चीज़? उसे पराभूत करना मेरे बाएँ हाथ का खेल है । आपके साथ बहस करने के लिए मेरे पास समय नहीं है । वह दिन भी दूर नहीं है, जब आप स्वयं आकर मेरी विजय पर मुझे बधाई देंगे । अब आप जा सकते हैं ।''

नारद ने पौंड्र की बातों का जवाब नहीं दिया '। वह सीधे बदरिकाश्रम में पहुँचा और श्रीकृष्ण को पौंड्र की युद्ध की तैयारी का समाचार देकर आगे बढ़ा ।

उसी दिन रात को पौंड्र अपनी प्रचंड सेना के साथ द्वारका को घेरने के लिए चल पड़ा । हज़ारों मशालों के साथ पौंड्र की सेना द्वारका के पूर्वी द्वार पर पहुँच गई । वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने भेरी इत्यादि वाद्यों को यों बजाया कि सारी दिशाएँ उस ध्वनि से निनादित हुईं । यादव-गण पहले से ही सावधान थे । रात होते हुए भी मशालों की रोशनी में सारा द्वारका नगर दिन का-सा प्रकाशमान था । पौंड्र के आने से यादव ज़रा भी विचलित न हुए । उन लोगों ने शीघ्र ही अपनी सेनाओं को तैयार किया । इसके बाद उग्रसेन, बलराम, सात्यकी, कृतवर्मा अपनी सेनाओं का संचालन करते हुए निकले और पौंड्र की सेनाओं के साथ भयंकर युद्ध शुरू किया । दोनों पक्षों के हाथी, घोड़े, रथ और सैनिक शीघ्र गति से नष्ट होने लगे ।

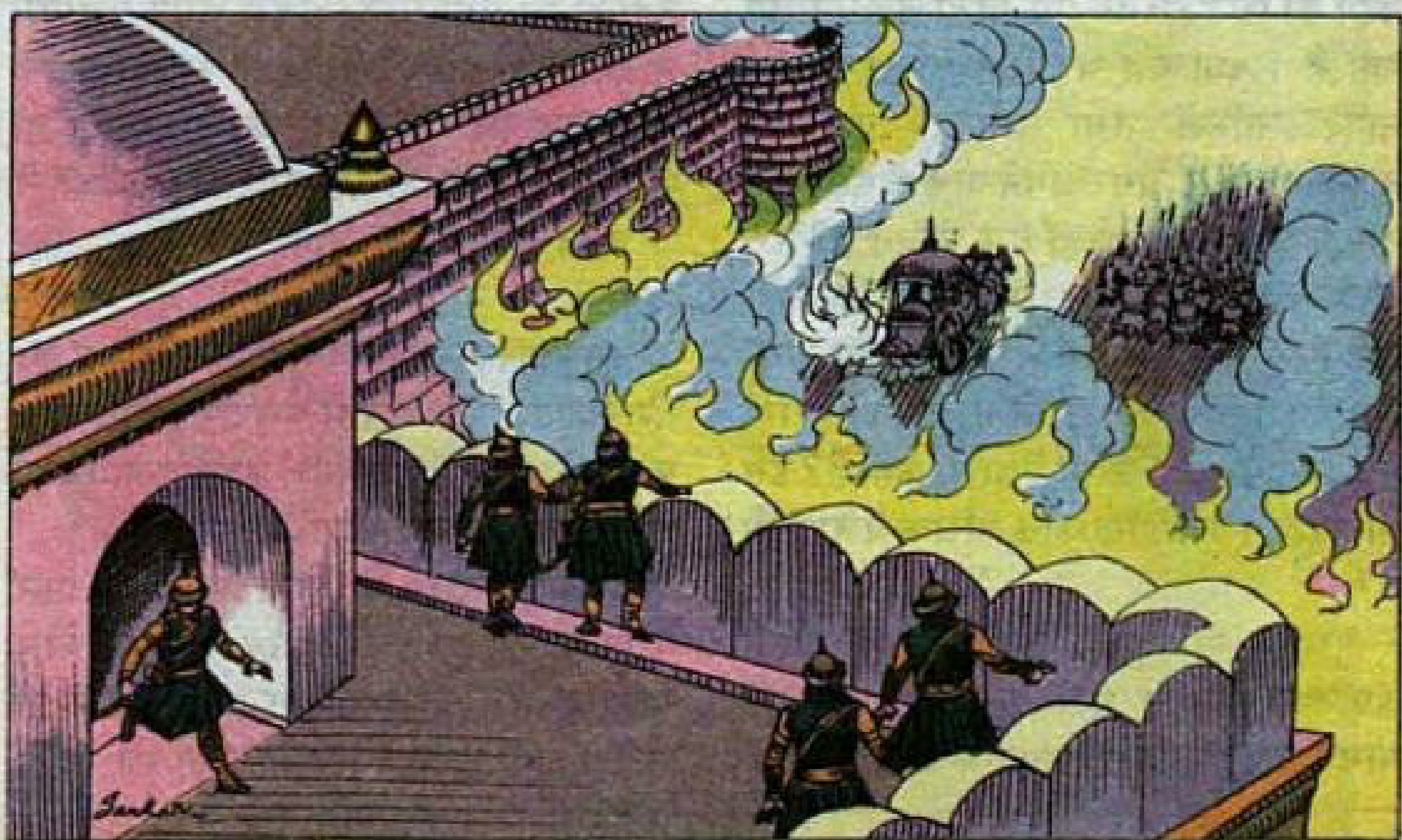
एक ओर दोनों दलों के बीच घमासान युद्ध चल रहा था, तो दूसरी ओर पौंड्र के पक्ष के एकलव्य नामक एक योद्धा ने अपना नाम घोषित करते हुए सात्यकी, कृतवर्मा, बलराम तथा श्रीकृष्ण के नाम पुकार कर उनको युद्ध के लिए ललकारा । यादव वीरों ने उसका खूब सामना किया, उसने भी सब पर अनगिनत बाण छोड़े । मशालची मशालें फेंक कर भाग खड़े हुए । सारी युद्ध-भूमि में

अंधकार फैल गया । पौंड्र ने सोचा, उसकी विजय हो गई है । उसने उच्च स्वर में कहा—"दुर्ग की दीवारों पर चढ़ जाओ । ध्वजाओं को तोड़ दो । और नगर पर अधिकार जमा लो ।" पौंड्र के नारे सुनकर उस की सेना में उत्साह बढ़ा और वे फिर तैश में आ गये ।

यह स्थिति देख सात्यकी का क्रोध भड़क उठा । श्रीकृष्ण ने नगर की सुरक्षा का भार उस पर सौंपा था । उसे यह अपयश प्राप्त होगा कि श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में शत्रु-पक्ष का हौसला बढ़ गया है । यह विचार आते ही उसने अपने दल के योध्दाओं को उत्तेजित करते हुए कहा—"तुम लोग बस देखते रहो मैं किस प्रकार शत्रु को नष्ट कर रहा हूँ । क्या तुम यह बात भूल गये कि नगर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व हम सब पर है?"

यों कहते हुए सात्यकी ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया जिससे दुर्ग के चारों तरफ ज्वालाएँ उठीं । दीवारों पर चढ़ने का प्रयत्न करनेवाले सैनिक युद्ध-भूमि से भाग चले । उनका पीछा करते हुए सात्यकी ने ललकारा—"राजवंश में पैदा होकर राजमर्यादा का उल्लंघन करके आधी रात के समय, जब सब लोग सो रहे हैं, चोर के समान युद्ध करने आया, वह नीच कहाँ है? मैं उसके साथ युद्ध करने आया हूँ?"

यह ललकार सुन कर युद्ध के लिए तैयार पौंड्र आगे बढ़कर आवेश के साथ बोला—"हे सात्यकी, बहुत अच्छा हुआ कि तुम मुझसे लड़ने के लिए आये हो । लेकिन मुझे यह बताओ कि वह कृष्ण कहाँ है? वह कहाँ छिपा





बैठा है? गायों को चराना उसका काम! इस काम को छोड़कर वह एक योद्धा बन कर घूम रहा है । क्या वह मेरे बारेमें कुछ जानता नहीं? नारियों तथा जनवरों का वध करनेवाला कोई अगर अपने नाम के साथ मेरा नाम जोड़ दे तो यह कहाँ तक उचित है? उस कृष्ण ने मेरे मित्र नरक का संहार किया है, इसी लिए मैं इस संग्राम में उसका अंत करने आया हूँ । अब तक उसने बहुतों को हराया है । मेरा पराक्रम उसने देखा ही कहाँ है? इस बार युद्ध में देखेंगे कि कौन अधिक बलशाली है?

तुम्हारे साथ युद्ध करने में मैं अपनी अप्रतिष्ठा मानता हूँ । इस लिए तुम मेरे सामने से हट जाओ, वरना एक क्षण भर में मैं अपने बाणों के प्रहार से तुम्हें परलोक भेज सकता हूँ । बस, तुम देखते ही रहो । इससे तुम्हारे कृष्ण का अहंकार चूर-चूर हो जाएगा । मुझे मालूम है कि यहाँ की सारी ज़िम्मेदारी तुम पर सौंप कर वह कैलाश की यात्रा पर गया है । उसके लौटने पर मैं उसकी खबर ले लूँगा । अभी उसकी प्रसन्नता के लिए अपनी मृत्यु को स्वीकारना ही तुम्हारा धर्म है ।''

थोड़ी देर दोनों में इसी प्रकार प्रलाप होते रहे और अंत में दोनों युद्ध करने लगे । दोनों ने परस्पर बाण चलाकर एक दूसरे को सताया । बारी बारी से दोनों भी बेहोश हुए । दोनों ने एक दूसरे के बाण तोड़ दिये । उन्होंने आपस में गदा-युद्ध एवं मल्ल-युद्ध भी किया । दोनों समान पराक्रमी प्रतीत हुए । दर्शकों को ऐसा लगा कि इस भयंकर संग्राम में दोनों की मृत्यु होगी । यह संभव नहीं कि कोई एक दूसरे का वध करके विजयी हो जाए । आखिर दोनों पक्षों के योद्धाओं ने बीच-बचाव करके दोनों को अलग कर दिया ।

इसके बाद एकलव्य तथा बलराम ने द्वंद्व युद्ध किया । उस युद्ध में बलराम ने एकलव्य को बेहोश कर दिया और अपने हलायुध से शत्रु-सेना को थर्रा दिया ।

इतने में होश में आया एकलव्य फिर बलराम पर टूट पड़ा । उन दोनों के बीच भयानक युद्ध चल रहा था कि पूरब में पौ फटी । पूर्वी क्षितिज पर लालिमा छा गई ।

पौंड्र ने अपनी सेनाओं को युद्ध-विराम का आदेश दिया। उसने कहा – "हम लोग भले ही असंख्य लोगों का संहार करें, पर उससे फ़ायदा ही क्या? हमारा असली शत्रु तो यहाँ पर है नहीं! अत: यह युद्ध निरर्थक है। कृष्ण के आने पर हम अपने शौर्य व पराक्रम का उसे परिचय देंगे। इन क्षुद्र लोगों पर अपने प्रताप को प्रदर्शित करना व्यर्थ है। इस लिए अब इस युद्ध को बन्द करो। उस कृष्ण के लौटने के बाद सच्चा संग्राम तो उसके साथ होगा। इन नाचीजों के साथ लड़कर व्यर्थ ही हमने अपना समय गँवाया है।"

पौंड्र की सेना युद्ध बन्द करके तुरन्त पीछे हटी। पौंड्र अपनी सेना को साथ लिये अपने मित्र काशी-नरेश के पास गया और वहीं कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा।

उधर द्वारका में यादवों ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में दुंदुभियाँ बजायीं और वे नगर के अंदर चले गये। उन्हें इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि वे श्रीकृष्ण के आदेश का पालन कर सकें।

इतने में उन्हें आकाश-मार्ग पर स्वयं श्रीकृष्ण दिखाई दिये। गरुड़ के वाहन से वे नगर के बाहर उतर पड़े और दारुक द्वारा लाये गये रथ पर स्वार हो द्वारका के भीतर पहुँच गये। बारह वर्षों बाद श्रीकृष्ण के दर्शन करके सभी यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण ने अपनी कैलाश यात्रा का वृत्त सब को सुनाया और पौंड्र के युद्ध के समाचार सुने।

श्रीकृष्ण के द्वारका लौट आनेका समाचार पाते ही काशी में रहे पौंड्र ने श्रीकृष्ण के पास





उसकी शरण में आनेकी प्रार्थना उसने की है, इस लिए मैं उसकी शरण (वध) स्वयं देखूँगा । बड़े व्यक्ति के प्रस्ताव का तिरस्कार करना उचित नहीं है ।" इतना कह कर दूत का समुचित सत्कार करके उसे विदा किया ।

अपने दूत के मुँह से संदेशा सुन कर पौंड्र अपने साथी राजाओं तथा उनकी सेनाओं के साथ काशी नगर के बाहर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा ।

श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए निकलते देख सात्यकी, उग्रसेन आदि लोग अपनी सेना के साथ चलने को तैयार हुए । पर श्रीकृष्ण ने उनको रोक कर कहा—"युद्ध में तुम लोगों ने एक बार विजय प्राप्त की है । अब मेरी बारी है!"

इस प्रकार संदेश भेजा—"गायों के बीच पैदा होनेवाले तुम धर्म की बातें क्या जानोगे? नारियों, जानवरों तथा रिश्तेदारों का वध करने पर भी तुम चुप नहीं रहे, तुमने मेरा नाम तथा चिन्हों को भी धारण कर लिया है । तुम्हारी-मेरी क्या बराबरी हो सकती है? अगर तुम जीवित रहना चाहो, तो मेरी शर्तों के अनुसार चक्र आदि आयुधों को छोड़ दो, अपने नाम के साथ मेरा नाम जोड़ना तत्काल छोड़ दो और मेरी शरण में आओ ।"

दूत के मुँह से पौंड्र का संदेश सुन कर श्रीकृष्ण हंस पड़े और बोले—"मैं तुम्हारे राजा की बातों का पालन अवश्य करूँगा । चक्रआदि आयुध छोड़ने के लिए कहा है, इस लिए मैं उसी पर मेरे चक्र का प्रयोग करूँगा ।

इसके बाद वे अपने वाहन गरुड़ पर आरूढ हो पौंड्र से मिलने चले । दोनों वासुदेव आमने-सामने खड़े हो गये । श्रीकृष्ण ने पौंड्र से कहा—"पौंड्र राज! यदि तुम मेरे सारे चिन्ह धारण करने की इच्छा रखते हो, तो मुझे से प्रार्थना करते, मैं उसे स्वीकार करता । तुम ने यों मूर्खता क्यों की? अब भी सही, मेरी शरण में आ जाओ, तो मैं तुम्हें क्षमा करूँगा । मैं शरणागत की सुरक्षा करता हूँ । मेरे चक्र के प्रहार से नरकासुर के समान कई दुष्ट अपने प्राण खो बैठे हैं । यहाँ पर जो लोग उपस्थित हैं, उनमें से कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा । मैं तुम्हारा हितैषि हूँ, इस लिए सच्ची बात तुम्हें बता रहा हूँ ।"



इस पर पौंड्र ने कहा–"वाह, खूब! तुम ने ही खुद मेरे चिन्ह धारण कर लिये । इसी लिए मैं तुम्हें दण्ड देने आया हूँ । मेरे आने का समाचार जानकर तुम कुछ दिन कैलाश में छिप कर रह गये । तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी नगरी को ध्वस्त करना मैंने उचित नहीं समझा । अच्छा हुआ कि तुम आ गये ।

दखो, अब यमराज तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।"

अब दोनों युद्ध के लिए तैयार हो गये । श्रीकृष्ण ने बारी बारी से पौंड्र के सारे आयुधों को तोड़ दिया और अंत में अपने सुदर्शन चक्र द्वारा पौंड्र का संहार कर दिया ।

अपने घनिष्ट मित्र पौंड्रराज की मृत्यु का समाचार पाते ही काशी का राजा श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए तैयार हुआ । श्रीकृष्ण ने एक ही अस्त्र द्वारा काशी राजा का सिर काट दिया । वह सिर जाकर काशी नगर के मध्य में गिर पड़ा ।

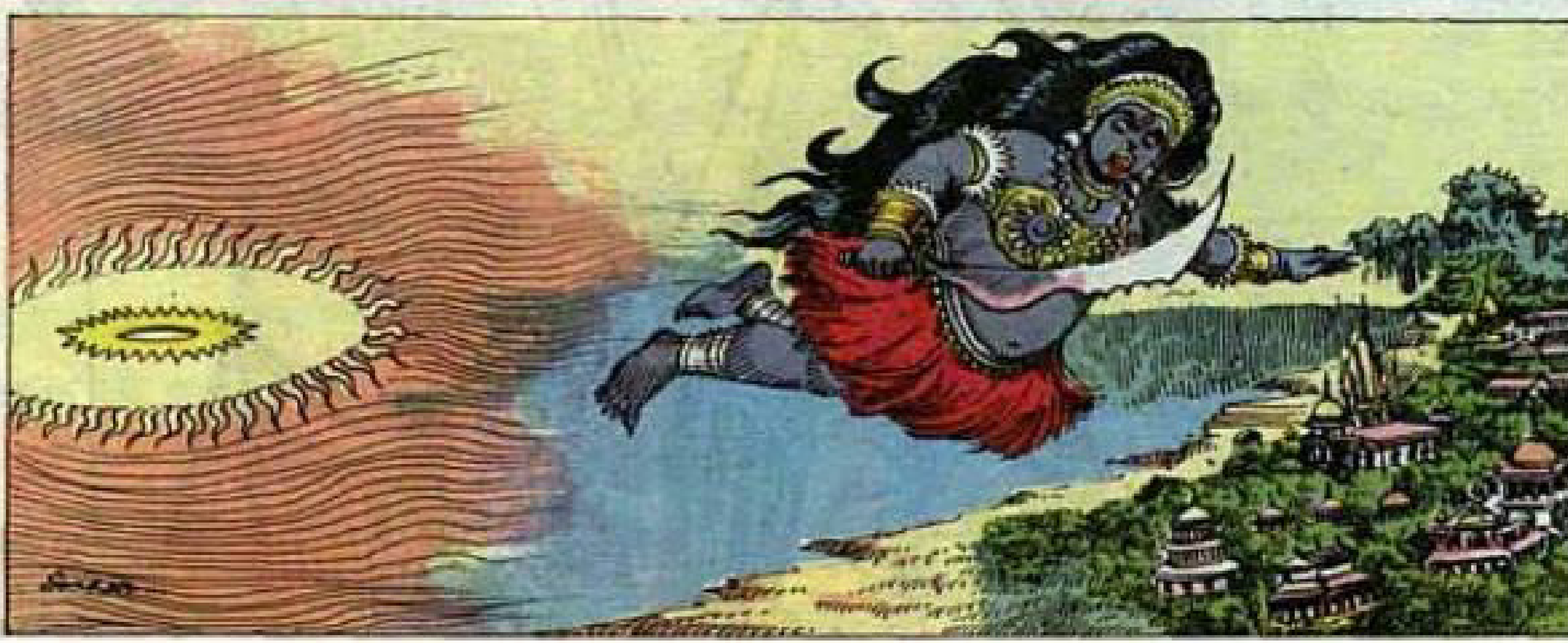
इस प्रकार श्रीकृष्ण अपना उद्दिष्ट कार्य समाप्त कर द्वारका लौट गये ।

काशी-नरेश का पुत्र अपने पिता की मृत्यु पर व्याकुल हुआ और उसने अपने पुरोहित द्वारा अग्निहोत्र करवाया । इस पर दक्षिणाग्नि से कृत्या नामक एक भयंकर पिशाचिनी उत्पन्न हुई और उसने पूछा–"मुझे क्या आदेश है?"

काशी-राजा के लड़के ने कहा–"तुम कृष्ण तथा उसके सगे-संबंधियों का वध करके लौट जाओ ।"

आजकल उनके उत्पात बेशुमार बढ़ रहे हैं । देखते-देखते उस कृष्ण ने मेरे पिताजी की जीवन-लीला समाप्त की! इसकी सज़ा उन द्वारकावासियों को मिलनी चाहिए । तुम शीघ्र चली जाओ ।"

कृत्या द्वारका पहुँची । द्वारकावासी उसे देखकर भयभीत हुए और श्रीकृष्ण को यह समाचार दिया । श्रीकृष्ण ने उस पर भी अपने सुदर्शन-चक्र का प्रयोग किया । कृत्या पुनः काशी की ओर भागने लगी, तब चक्र ने भी काशी में प्रवेश कर नगरी को ध्वस्त कर दिया ।





बाणासुर बलि का पुत्र था । उसकी राजधानी थी शोणपुर नगरी । बाण के एक हज़ार हाथ थे, और वह बचपन से ही बड़ा ही उद्दण्ड और नटखट था । एक दिन उसने देखा, मणि-माणिक तथा सुवर्ण से आलोकित कुबेर पर्वत की एक गुफा में कुमारस्वामी (कार्तिकेय) क्रीडा में निमग्न है और शिव-पार्वती उस बाल-लीला को देख अपना मनोरंजन कर रहे हैं ।

कुमारस्वामी के छे मुख, उसके हाथ, देह की आभा और चमक-दमक देख कर बाण अपने मन में सोचने लगा— "न जाने इस बालक ने किस प्रकार का तप करके शिवजी के पुत्र के रूप में जन्म धारण किया है, क्या मैं भी ऐसा तप करके इस प्रारब्ध को प्राप्त कर सकूँगा ?" यों विचार करके बड़ी निष्ठा के साथ एकाग्रचित्त हो अनेक वर्षों तक शिवजी की आराधना की । उसकी तपस्या देख शिवजी परम प्रसन्न हुए और पार्वती को साथ लिये बाण के सामने उपस्थित हुए और हंसते हुए बोले— "वत्स, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । जो चाहो माँग लो, मैं अवश्य दूँगा ।"

बाण ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ कर निवेदन किया— "भगवन्, मुझे ऐसा वर प्रदान कीजिए, जिससे मैं इस देवी का पुत्र बनकर आपका अनुग्रह नित्य प्राप्त करता रहूँ ।"

शिवजी ने बाण की बात मान ली और पार्वती से कहा— "देवी, यह बाण है, तुम्हारा छोटा पुत्र । कुमारस्वामी का यह अनुज है, इसे इस रूप में स्वीकार कर लो ।" इसके

२४. बाणासुर की कथा



बाद शिवजी ने बाण को राजधानी के रूप में शोणपुर नगरी प्रदान की । शोणपुर में सब प्रकार की संपदाएँ विद्यमान थीं । शिवजी ने बाण से कहा– "मैं तुम्हारी राजधानी की रक्षा करता रहूँगा । तुम्हें कोई भी पराजित नहीं कर सकेगा । तुम निश्चिन्त रहो ।"

कुमारस्वामी ने बाण को एक अद्‌भुत मोर प्रदान किया और कहा– "यही मोर तुम्हारा वाहन और पताका बना रहेगा ।"

अब बाण के लिए किसी का भय न रहा, क्योंकि शिवजी स्वयं उनके रक्षक थे । इस लिए बाण ने अपने राज्य का विस्तार करने के हेतु देवता, गंधर्व, नाग, खेचर, राक्षस इत्यादि को क्रमशः जीत लिया । फिर भी उसकी विजीगीषा पूरी नहीं हुई । वह व्याकुल होने लगा कि उसके साथ युद्ध करनेकी क्षमता रखनेवाला कोई नहीं रहा ।

यों कई वर्ष बीत गये । उसके हाथ की खुजली बढ़ती गई, उसके मन की युद्ध की लालसा दिन-ब-दिन तीव्र होती गई । वह शिवजी के पास गया, उनको साष्टांग प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके निवेदन किया– "भगवान्, अब मेरे साथ युद्ध करनेवाला कोई न रहा । मुझ पर अनुग्रह कीजिए और मुझे युद्ध का अवसर प्रदान कीजिए ।"

बाण की ये बातें सुनकर शिवजी हंस पड़े । उन्होंने कहा– "सुनो, तुम जो वर माँग रहे हो, उसे अस्वीकृत करना उचित नहीं लगता । जब तुम्हारा मयूर-ध्वज बिना किसी कारण से झुक जाएगा, तब समझ लो कि तुम्हारी इच्छानुसार युद्ध का अवसर क़रीब है । उसी समय तुम्हें अपने अनुरूप शत्रु के साथ युद्ध करना पड़ेगा । चिन्ता न करो ।"

बड़े संतोष के साथ बाण ने शिवजी को प्रणाम किया और फिर शिवजी से विदा लेकर अपने महल पहुँचा । अपने मयूरध्वज के समीप बैठकर बाण ने सभा बुलाई और अपने मंत्री कुंभांड से कहा– "देखो, मैं एक शुभ समाचार ले आया हूँ ।"

इस पर कुंभांड ने कहा– "शुभ समाचार तो अनेक प्रकार के होते हैं । यह कैसा समाचार है भला ? क्या शिवजी ने आपको कोई नया वर प्रदान किया है ? अथवा देवेन्द्र

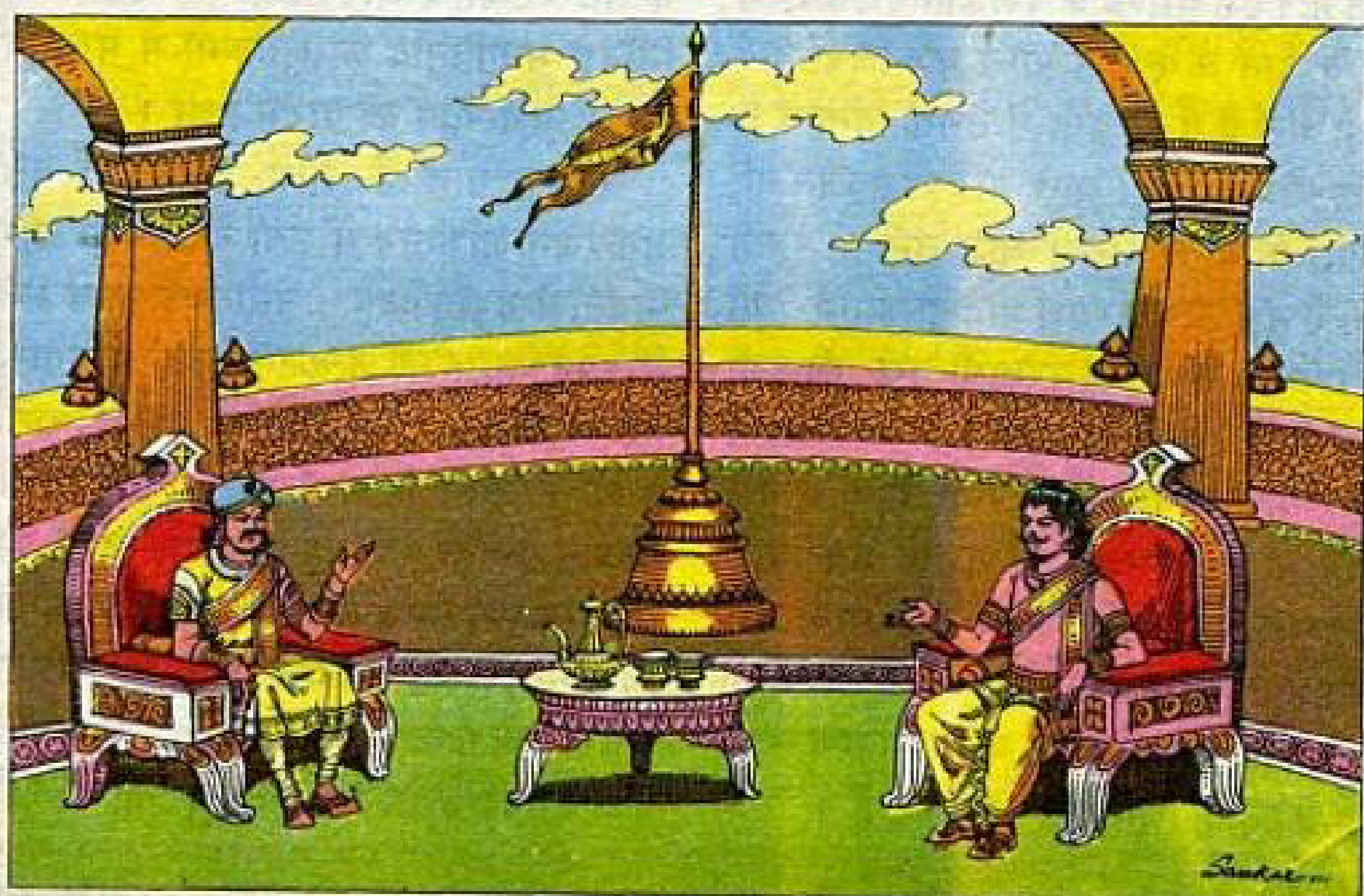
इन्द्र को पाताल में भेजकर देव-लोक में शासन करने का वरदान मिला है ? या श्रीकृष्ण को पराजित करने का कोई उपाय तो नहीं बताया ? यदि ऐसा हुआ हो तो फिर हमको किस बात की कमी है ? विष्णु के द्वारा धोखा खाकर पाताल में पहुँचनेवाले तुम्हारे परम धर्मात्मा पिता को विमुक्ति प्राप्त होगी । उनके पुनः दर्शन करके हम धन्य हो जाएँगे ।"

मुस्कुराते हुए बाण ने कहा– "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है कुंभांड ! युद्ध के अभाव में मेरी भुजाएँ फड़क रही थीं, इस पर मैंने शिवजी से अनुरोध किया कि मेरे इस मयूर-ध्वज के कारण चाहे जब मुझे युद्ध प्राप्त हो सकता है । यही समाचार मैं तुम्हें बताना चाहता था ।"

इस पर कुंभांड का चेहरा एकदम पीला पड़ गया । उसने कहा– "उफ्, यह कैसा प्रारब्ध है ? शिवजी से आप ने यही वर माँगा है ? प्रह्लाद के वंश का कैसा बुरा हाल हो गया है ?"

कुंभांड के मुँह से बस ये बातें निकल ही रही थीं कि मयूर-ध्वज भारी आवाज़ के साथ देखते देखते नीचे गिर पड़ा । जैसे वज्रायुध ने पहाड़ पर प्रहार किया हो । अपनी इच्छा की पूर्ति होते देख बाण को अत्यन्त आनन्द हुआ । उसी क्षण पृथ्वी काँप उठी, आकाश में एक नया तारा उदित हुआ, प्रचण्ड वेग से आँधी का प्रकोप हुआ । शोणपुर पर रक्त की वर्षा हुई और इसी प्रकार अनेक उत्पात मचे ।

इस सब कांड को देख कुंभांड घबरा गया और मन-ही-मन सोचने लगा– "बाण ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करके यह सिद्ध



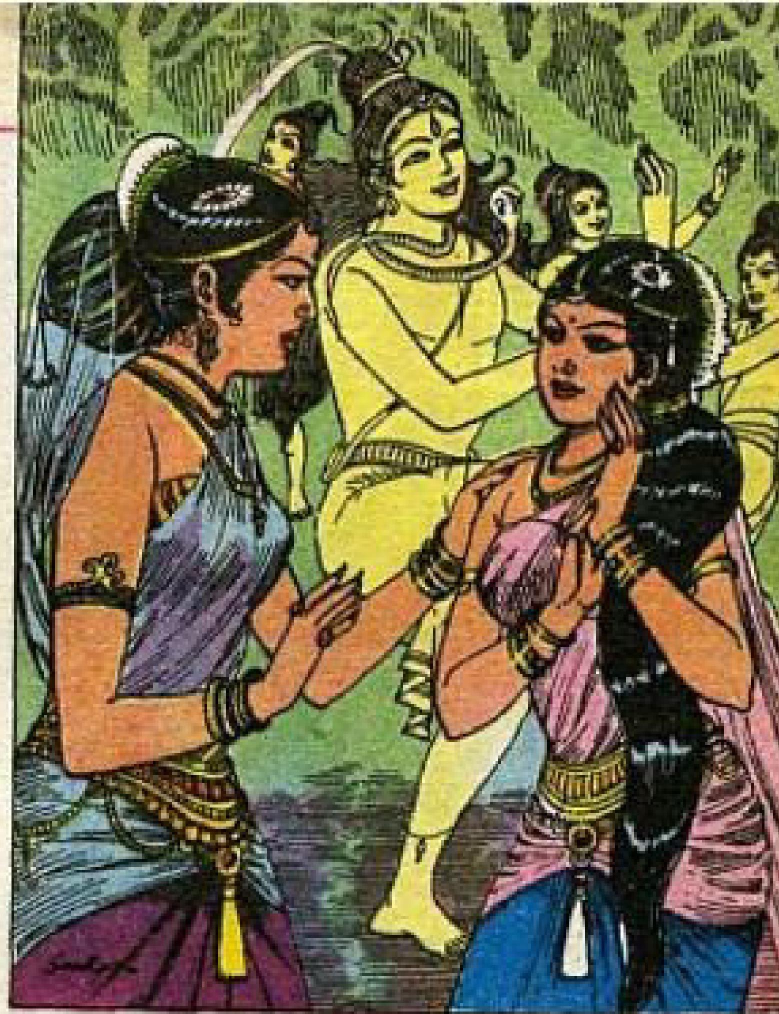


किया कि उसका सामना कर सकनेवाला कोई नहीं है । इस घमण्ड के वश होकर उसने युद्ध को वरदान के रूप में प्राप्त कर लिया है । कैसी भूल है यह ! इसी में उसके विनाश के बीज बोये हुए हैं । बाण भले ही सज्जन हो, राक्षस के भीतर राक्षस-बुद्धि बनी ही रहती है । ये सब उत्पात व्यर्थ थोड़े ही जाएँगे ? यों तो शिवजी तथा कुमारस्वामी नगर की रक्षा कर रहे हैं । फिर भी वरदान के रूप में प्राप्त हुआ युद्ध अनिवार्य हो गया है । लेकिन देवताओं की पराजय को न सह सकनेवाले और बाण को हरानेवाले विष्णु के सिवा और कौन है ? पर यहाँ तो बाण सारे सुखोपभोगों में तल्लीन हो बड़े हौसले के साथ विष्णु से भी युद्ध करने के लिये तैयार बैठे हुए हैं ।"

बाण के एक उषा नाम की पुत्री थी । वह परम सुन्दरी थी, मानो चन्द्रमा की सोलह कलाएँ नारी-रूप धारण कर चुकी हों । उषा की एक सखी थी चित्ररेखा जो कुंभांड की पुत्री थी । उषा अपने पिता के आदेश से सुयोग्य पति की कामना से पार्वती देवी की उपासना करती रही ।

इतने में चैत्र मास आया । शिवजी शोणनगर में थे, उन्होंने पार्वती के साथ बसंत-विहार का आयोजन किया । कई गंधर्व स्त्रियों तथा अप्सराओं को निमंत्रण दिया गया । उन्होंने सभी नारियों को पार्वती का रूप धारण करने का आदेश दिया । सभी युवकों को शिव का रूप धारण करने की सलाह दी । इसके बाद सब लोग मिलकर शोणपुर से सटकर बहनेवाली मंदाकिनी नदी के तट पर पहुँचे और निकटवर्ती उद्यानों में विविध मनोविनोद के कार्यक्रमों में मग्न हो गये । नृत्य-गान का प्रारंभ हुआ ।

बड़े उत्साह के साथ चलनेवाले इस मनोरंजन अभियान में उषा ने शिवजी और पार्वती के दर्शन किये । उसी क्षण उसके मन में अपने विवाह की उत्कट अभिलाषा निर्माण हुई । वास्तव में उषा को किसी बात की कमी न थी । उसके पिता त्रैलोक्य-विजेता हैं । साक्षात् पार्वती देवी की आराधना करने का सौभाग्य उसे प्राप्त है । वह प्रति दिन अपने लिए सुयोग्य पति प्रदान करने की प्रार्थना पार्वती देवी से करती आ रही है । लेकिन अब तक उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो पा रही



है ।

पार्वती देवी ने उषा के मन की इन विचार-तरंगों को अच्छी तरह जान लिया और संकेत करके उसको अपने पास बुला लिया । पार्वती ने उषा से कहा– "हे बाले, तुम्हारे मन की बात मैंने जान ली । युवतियों को पति की प्राप्ति के लिए व्याकुल होना उचित और स्वाभाविक ही है । शीघ्र ही तुम्हें अपने अनुरूप वर की प्राप्ति होगी ।"

"यह कैसे संभव है, देवीजी ?" उषा ने पूछा ।

"सुनाती हूँ, सुनो । आगामी वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात में तुम्हें सपने में एक पुरुष के दर्शन होंगे । वही तुम्हारा भावी पति होगा ।" पार्वती ने आश्वासन दिया ।

उषा को बड़ी प्रसन्नता के साथ लज्जा भी हुई । उसने पार्वती को भक्ति-भाव से प्रणाम किया और वहाँ से चल निकली ।

पार्वती का कथन असत्य कैसे हो सकता है ? द्वादशी की रात को उषा अपनी सखियों के साथ महल में निद्रानंद का अनुभव कर रही थी । उसने एक सपना देखा । सपने में कामदेव से एक सुंदर युवक ने उसको दर्शन देकर पुकारा और उसका हाथ अपने हाथ में थाम लिया ।

उषा चौंक कर नींद से जाग उठी । उसने आँख खोली तो सामने कोई न था । पर जो कुछ हुआ, वह स्वप्नवत् नहीं लगा । ऐसा लगा जैसे कोई घटना घटित हुई हो । उसके मन में एक साथ भय तथा लज्जा ने घर कर लिया । वह पार्वती देवी का कथन पूर्ण रूप से भूल गई थी । इस लिए उसने सोचा कि अपने सपने द्वारा उसे तथा उसके पिता के वंश को विशेष अपयश प्राप्त हो गया है । इसी चिंता में व्याकुल हो वह ज़ोर से रो पड़ी ।

सारी सखियों की नींद टूटी और सब ने उसे घेर लिया । चित्ररेखा उसके पीछे खड़ी हुई और उसका सिर अपने वक्ष से टीका कर सहलाती हुई बोली– "सखी, डरो मत ! आखिर क्यों रो रही हो ? तुम्हारे मन को व्याकुल बनाने का दुःसाहस करनेवाला कौन है? तुम्हारे पिता बाण तो अजेय हैं ।" यों समझाते हुए चित्ररेखा ने उषा के आँसू पोंछ डाले ।

उषा ने अपने सपने का सारा वृत्त सुनाते



हुए कहा— ''मैंने जो कुछ भी देखा वह कदापि सपना नहीं हो सकता । यह मेरे चरित्र पर लगा महा कलंक है ।''

इस पर चित्ररेखा ने उषा को पार्वती के कथन की याद दिलाई । और समझाया— ''आज वैशाख शुक्ला द्वादशी है । देवी पार्वती ने स्वयं तुम्हें बताया था न कि आज रात के सपने में जो युवक तुम्हें दर्शन देगा, वही तुम्हारा भावी पति होगा ! इस समय तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, अजीब बात है कि तुम चिन्ता कर रही हो !''

दूसरे ही क्षण उषा का मुख-कमल यों उल्लसित हुआ मानो बादलों के हट जाने से चन्द्रमा शोभायमान हुआ हो । तब उसने कहा— ''अरी चित्ररेखा, तुमने मेरी सारी चिन्ता दूर कर दी । मेरे प्रारब्ध को सफल करने का उपाय भी तुम्हीं को करना होगा । वैसे मैं उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकती । पर उनका रूप मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष है । उनको ढूँढ़ निकालना तुम्हारा काम है । मेरा सौभाग्य अब तुम्हारे हाथों में है ।''

चित्ररेखा ने कहा— ''सखी, मैं अवश्य तुम्हारी भरसक मदद करूँगी । तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है । उस युवक को ले आना कोई बड़ी समस्या नहीं है । पर पहले हमें इस बात का तो पता चले कि दरअसल वह है कौन ? मैं इसी बात का विचार करती हूँ कि उसका पता कैसे लगाया जाए ? तुम तो कहती हो कि तुम उसका वर्णन नहीं कर सकती, और मैंने तो उसे देखा नहीं ! अब ?'' चित्ररेखा ने अपनी समस्या रखी ।

उषा ने आँखों में आँसू भरकर कहा— ''अपने काम स्वयं करना ही अच्छा होता है । दूसरों का काम करना कठिन ही होता है । सखी चित्ररेखा, तुम तो मुझे प्राणों के समान हो । सच कहती हूँ, अगर तुम मुझ पर दया न दिखाओगी तो मैं मर जाऊँगी ।''

''सखी, तुम चिन्ता मत करो । बस मुझे थोड़ा समय दो । मैं तुम्हारे प्रियतम को किसी प्रकार से ले ही आऊँगी । जब लोकेश्वरी पार्वती देवी की कृपा तुम पर है तो तुम्हारी कामना-पूर्ति होने में संदेह ही क्या है ?'' चित्ररेखा ने सान्त्वना दी ।

इसके बाद चित्ररेखा ने अन्य सखियों को



समझाया– "तुम लोग उषा की देखभाल करती रहो। मुझे एक विशेष काम में दत्तचित्त होना है। उषा ने सपने में जिस युवक को देखा उसे मुझे ढूँढ़ निकालना है! अब कहाँ जाकर ढूँढ़ूँ उसको? मेरे मन में एक कल्पना है। देखूँ उसे कार्यान्वित करके कहाँ तक सफलता मिलती है।"

अब चित्ररेखा एकांत में जा बैठी। उसने सोचा–'क्यों न विश्व भर के प्रमुख युवकों के चित्र अंकित कर दूँ? देव, दानव और मानवों में जो सुंदर और चरित्र संपन्न युवक हैं उनके हूबहू चित्र बना लूँ और सब के साथ उषा के पास जाकर एक एक उसके सामने पेश करूँ! उसके सपने में आये युवक का चित्र उसने पहचान लिया कि हो गया मेरा काम।' यों सोचकर उसने एक तूलिका और विभिन्न रंग लेकर एक सप्ताह भर में चित्र अंकित किये। इन चित्रों में चित्ररेखा ने उन युवकों द्वारा धारण किये वस्त्रों व आभूषणों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। फिर इन सभी चित्र को वह उषा के पास ले आई और बोली–"सखी, विश्व भर के सारे प्रमुख युवकों के ये चित्र मैंने बड़े परिश्रमपूर्वक बनाये हैं। इन चित्रों को देख कर तुम बता दो कि तुम ने सपने में किस को देखा? इन चित्रों में प्रायः सभी देव, दानव और मानव हैं।"

उषा एक एक चित्र को देखती गई। जब उसकी दृष्टि यादव-प्रमुख श्रीकृष्ण पर पड़ी, तो वह आश्चर्यचकित हो गई। इसके बाद प्रद्युम्न का चित्र देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्योंकि इन दोनों चित्रों में अनिरुद्ध की रूपरेखा उसे दिखाई दीं। इसके बाद उषा ने अनिरुद्ध का चित्र अपने हाथों में लिया और अपने आपको भूल गई। उसे अपना सब सपना याद आया। जिसने उसका हाथ अपने हाथ में लिया था, उस युवक की स्मृति तरोताजा हो गई। वह उस चित्र की तरफ़ बस देखती ही रह गई। उस चित्र को देखने के बाद उषा ने उसे अलग नहीं रखा। चित्ररेखा ने जान लिया कि उषा को सपने में दर्शन देनेवाला पुरुष और कोई नहीं, अनिरुद्ध ही है।







कृष्णावतार

उषा अनिरुद्ध के चित्र की ओर एक टक देख रही थी, उसका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा देख सखी चित्ररेखा मुस्कुराती हुई कहने लगी—"उषा, मैं समझ गई, तुमने सपने में किस को देखा है । वह चाहे जहाँ हो, मैं उसे ढूँढ़ लूँगी और तुम्हें सौंप दूँगी । तुम्हें जो करना है, करो । तुम्हें पार्वती देवी का आशीर्वाद प्राप्त है । मुझे ज़रा भी शंका नहीं है कि मैं अपने अंगीकृत कार्य में अवश्य सफल हूँगी ।"

उषा ने बड़े संतोष के साथ चित्ररेखा से कहा—"सखी चित्ररेखा, चित्रकला में तुम्हारा कौशल मैं नहीं जानती थी । तुम यथार्थनाम्नी हो! तुमने यह चित्र यों सजीव अंकित किया है कि इस चित्र को देख कर मेरे मन में वे सारे भाव ज्यों-के-त्यों उद्दीप्त हुए, जैसे मेरे सपने में! ये किस वंश के हैं? इनका नाम क्या हैं? इनका स्वभाव कैसा है? और ये क्या करते हैं? पूरा-पूरा परिचय दो न मुझे! इस परिचय के बिना मैं व्याकुल हुई जा रही हूँ । जब उनका संपूर्ण परिचय प्राप्त होगा, तभी मेरे मन को शांति मिलेगी ।"

उषा की उत्सुकता देख कर चित्ररेखा ने कहा—"द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के बारे में तुमने सुना ही होगा । कहते हैं कि शिवजी के तृतीय नेत्र की अग्निज्वाला में भस्मीभूत हुए कामदेव ही श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न नामक पुत्र के रूप में पैदा हुए हैं । सखी, यह नवयुवक उन्हीं प्रद्युम्न का पुत्र है । इसका नाम है अनिरुद्ध । इस का पराक्रम विश्व-विख्यात है । यह युवक अगर तुम्हारा पति बन गया, तो आदिशेष भी तुम्हारे सौभाग्य की प्रशंसा

२५. उषा और अनिरुद्ध का विवाह



करने में असमर्थ सिद्ध होंगे ।

हमारे इस शोणपुर के समान द्वारका नगर में भी चाहे जो प्रवेश नहीं कर सकता । फिर भी तुम्हारी खुशी की खातिर मैं कोई न कोई उपाय ढूँढ़कर वहाँ पहुँच जाऊँगी और तुम्हारे प्रियतम को यहाँ ले आकर तुम से मिलाऊँगी । चिन्ता मत करना । लो, मैं द्वारका जाने के लिए तैयार हो रही हूँ । शीघ्र ही कार्य सफल करके लौटूँगी ।"

"तुम बड़ी कार्य-कुशल हो और योग-विद्या भी तुम्हें अवगत है । कामरूप तथा कामगमन शक्तियाँ तुम्हारे पास हैं । तुम असंभव कार्य को भी संभव बनाने की क्षमता रखती हो । मैं अनिरुद्ध को प्रत्यक्ष न देखूँगी तो ज़िंदा नहीं रह सकती । तुम शीघ्र जाकर उन्हें ले आओ और मेरे प्राणों की रक्षा करो । अभी सात दिनों तक तो मैं सहन करती रही, आगे एक घड़ी भी सहन न कर सकूँगी । इस लिए तू अपना काम शुरू कर ।" उषा ने अपने अंत:करण की व्यथा प्रकट की ।

चित्ररेखा ने उषा को आलिंगन देकर कहा—"तुम अपनी अन्य सखियों के साथ दिल बहलाती रहो । मैं चली, शीघ्र ही आऊँगी ।" चित्ररेखा आसमान में उड़कर अदृश्य हो गई । फिर मनोवेग के साथ क्षण भर में द्वारका पहुँची और अपने करणीय कार्य के बारे में विचार करने लगी । उसी समय एक सरोवर के पास उसे नारद के दर्शन हुए । चित्ररेखा नारद के पास गई और आदर के साथ प्रणाम किया ।

नारद ने चित्ररेखा को आशीर्वाद देकर मुस्कुराते हुए पूछा—"क्यों? यहाँ पर कैसे आना हुआ?"

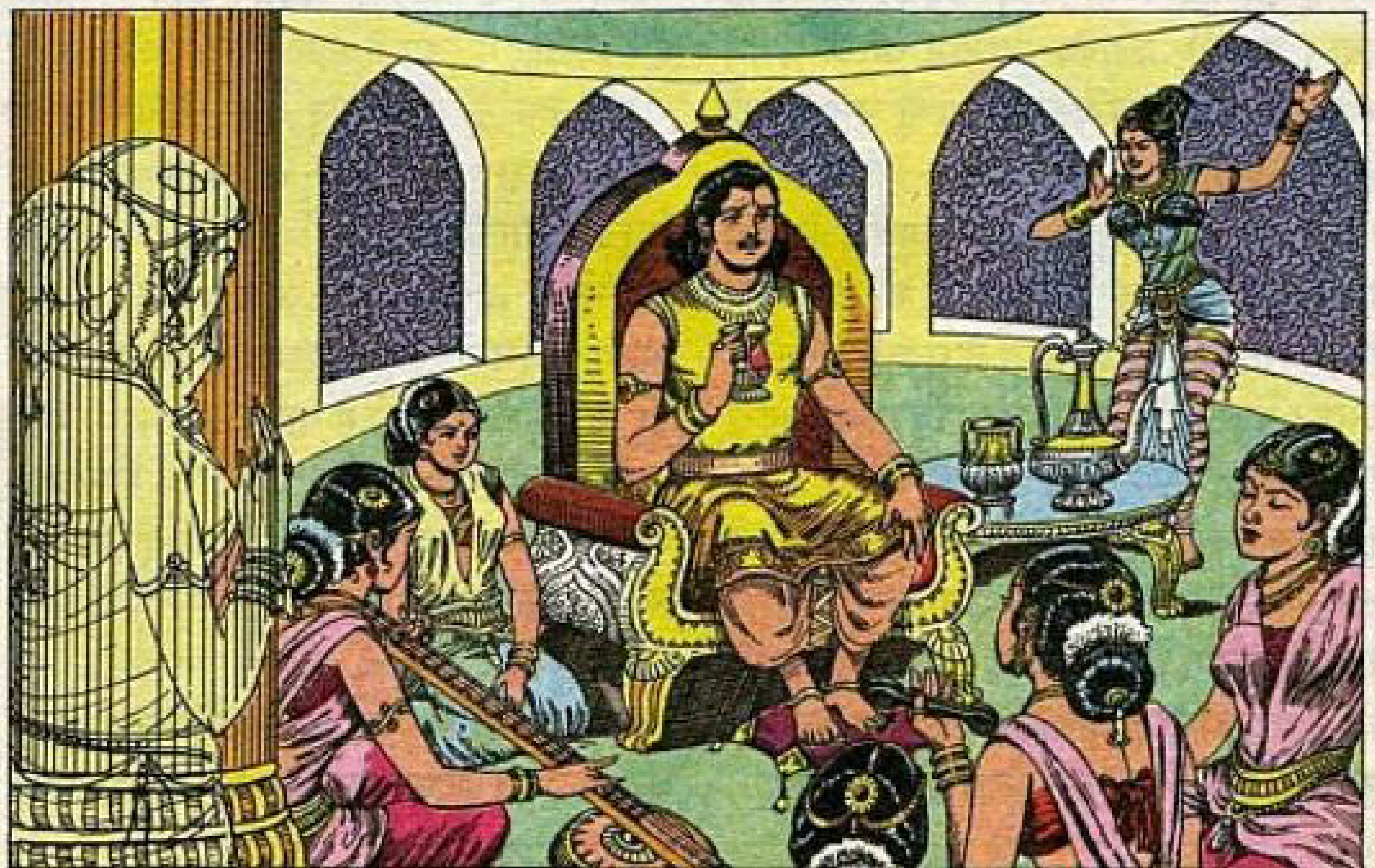
चित्ररेखा ने नारद को बताया कि पार्वती देवी के आशिर्वाद के अनुसार उषा ने सपने में अनिरुद्ध को देखा, और अभी वह अनिरुद्ध को अपने साथ ले जाकर उषा से मिलाना चाहती है । फिर उसने नारद से निवेदन किया—"अगर मैं अनिरुद्ध को अपने साथ ले जाऊँ, तो श्रीकृष्ण क्रोधित तो नहीं हो जाएँगे? आप जाकर श्रीकृष्ण को सारा वृत्त कह दें, तो मेरा काम बहुत आसान होगा । मैं जानती हूँ कि अगर बाणासुर और श्रीकृष्ण के बीच युद्ध होगा तो उसमें श्रीकृष्ण की ही विजय होगी । इस समय मैं श्रीकृष्ण के पोते को

अपने साथ ले जाना चाहती हूँ । मुझे डर है कि कहीं श्रीकृष्ण क्रोधित हो मुझे शाप न दे बैठें । आप कृपया मुझे श्रीकृष्ण के भय से मुक्त कर दीजिए, तो मेरी सखी उषा की कामना-पूर्ति होगी ।"

नारद ने चित्ररेखा को तामसी नामक विद्या का उपदेश देकर समझाया—"इस विद्या के द्वारा तुम्हारा कार्य संपन्न होगा । चिन्ता मत करो । तुम अनिरुद्ध को ले जाओगी, तब बाण के साथ युद्ध होगा । उस समय मैं वहाँ पहुँच कर युद्ध को रोक दूँगा ।" यों समझाते हुए नारद अपने रास्ते चले गये ।

अब चित्ररेखा अदृश्य रूप में श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न के भवनों को पार करती हुई अनिरुद्ध के कक्ष में पहुँच गई । सुवर्ण-पात्रों में मधु भरकर उसका सेवन करते हुए कई स्त्रियों के बीच बैठ हुए अनिरुद्ध को उसने देखा । अनिरुद्ध के मनोविनोद के लिए कई सुंदरियाँ नृत्य-गान कर रहीं थीं । पर अनिरुद्ध कुछ उदास-सा लग रहा था । चतुर चित्ररेखा इसका कारण समझ गई । अगर वह हँस भी देता तो उसमें कृत्रिमता की झलक दिखाई देती थी । अगर वह वार्तालाप करता, तो उसके शब्द गद्गद स्वरों में बाहर पड़ते । उसकी प्रत्येक हलचल में कुछ निराशा नज़र आ रही थी ।

चित्ररेखा सोचने लगी—"कहीं इसने भी उषा के समान सपना तो नहीं देखा है? इसको आकर्षित करनेवाली सुंदरी उषा को छोड़ कर और कौन हो सकती है? यह सब पार्वती देवी के अनुग्रह के कारण ही हो सकता है अवश्य ।"





उसके मन में अनिरुद्ध के साथ बात करने की इच्छा हुई। नारद ने उसको जो विद्या प्रदान की थी, उसका उपयोग करके उसने अनिरुद्ध के आसपास के सभी लोगों को बेहोश बना दिया और फिर अनिरुद्ध के सामने जा खड़ी हुई। नम्रतापूर्वक प्रणाम करके बोली—"बली चक्रवर्ती के पुत्र बाण को पार्वती देवी के अनुग्रह से एक पुत्री हुई। उसका नाम है—उषा। उषा त्रिलोक-सुंदरी है। साक्षात् ब्रह्मा भी उसके सौंदर्य का वर्णन नहीं कर सकते, ऐसी हालत में उस सुंदरता के बारे में मैं भला क्या कहूँ? उस युवती उषा ने एक रात सपने में आपके दर्शन किये। तब से यह आपके साथ विवाह करने के लिए अत्यन्त व्याकुल है। मैं हूँ उसकी सखी चित्ररेखा अगर आप उदारतापूर्वक स्वीकार करें तो मैं आपको अपने साथ ले जाना चाहूँगी। आप दोनों एक दूसरे को पाने के लिए ही मानो पैदा हुए हैं। मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है। अब पता नहीं ईश्वर की क्या इच्छा है। ये होनेवाली सभी घटनाएँ पार्वती ने उषा को पहले ही बता दी हैं। मैंने आपका चित्र बनाकर उषा के सामने धर दिया, तब से उसके मन में आपको पाने की तीव्र इच्छा जागृत हुई है। अन्यथा न मालूम सखी उषा का क्या हाल हो जाता। अनेक सुंदरियों के आसपास रहते आपकी बात और है! आप ही के लिए व्याकुल सखी उषा की रक्षा आप ही कर सकते हैं। मैं आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे साथ चलने का कष्ट करें।"

चित्ररेखा की सभी बातें अनिरुद्ध ने सुन लीं। फिर अपनी बात कही—"बहन चित्ररेखा, मैं अपनी बात तुमसे कैसे कहूँ? सखी उषा ने जो सपना देखा, वही मैंने भी इधर देखा है। तब से मेरा हाल भी विचित्र-सा हो गया है। मुझे दिन और रात का भान नहीं रहता। ज़रा भी नीन्द नहीं आती। तुम मेरे लिए भाग्यदेवी बन कर आई हो, वरना मेरी समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ! तुम्हें मेरी प्रार्थना करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। तुम कृपा करके मुझे सखी उषा के पास ले चलो, मैं चलने के लिए तैयार हूँ।"

अब चित्ररेखा को बहुत प्रसन्नता हुई। अनिरुद्ध का हाथ पकड़ कर वह आसमान में

उड़ी और अपने समान अनिरुद्ध को भी अदृश्य बनाया । कुछ ही क्षणों में दोनों शोणपुर में उषा के महल में पहुँच गये ।

उषा और अनिरुद्ध ने परस्पर एक दूसरे को प्रत्यक्ष देख लिया । दोनों आनंद-सागर में डूबने-उतरने लगे ।

"लो सखी, ये ही तुम्हारे प्रियतम हैं । मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने वचन का पालन कर सकी । अब तुम इनका पाणिग्रहण करो । राज-परिवारों में गांधर्व-विवाह अनुचित नहीं है । तिस पर भी पार्वती देवी का अनुग्रह तुम्हें प्राप्त है । इस क्षण से तुम दोनो पति-पत्नी हो ।" इतना निवेदन कर चित्ररेखा ने उषा को आलिंगन दिया और दोनों को नये वस्त्र, आभूषण तथा पुष्पमालाएँ दीं । आनिरुद्ध ने उषा का हाथ अपने हाथ में लेकर प्राणि-ग्रहण किया ।

कोई एक मानव बाण के महान् पराक्रम की परवाह किए बिना उसके महल में प्रवेश कर गया है और उसके वंश के माणिक के समान पुत्री उषा के साथ प्रणयाराधन कर रहा है, यह जानकर बाण अत्यन्त क्रोधित हो उठा ।

उसने तुरन्त पहरेदारों को आदेश दिया – "अभी जाकर तुम लोग उस दुष्ट को बन्दी बनाओ । वह कहीं भागने न पाए । मेरा अपमान करके देवत्ता भी अपने प्राणों को बचा नहीं सकते ।

उसी समय हज़ारों राक्षस तलवार और भाले लेकर उषा के अंत:पुर के इर्द-गिर्द जमा हो गये । अनिरुद्ध ने महल के ऊपर से यह सारा दृश्य देखा, कोलाहल को सुना । उषा के





महल को घेर कर राक्षस-सेवक ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रहे थे । अनिरुद्ध तुरन्त ही सिंह के समान उनसे लड़ने के लिए तैयार हो गया ।

उषा आँखों में आँसू भरकर अनिरुद्ध के पास जा खड़ी हुई और निवेदन किया—"मैं एक ऐसा कार्य कर बैठी हूँ, जो मुझ जैसी कन्याओं को नहीं करना चाहिए । मैं कुल-कलंकिनी बन गई हूँ । एक अनमोल रत्न के समान राजकुमार को मैंने उलझन में डाल दिया । लगता है, जगदंबा द्वारा प्राप्त वरदान भी व्यर्थ सिद्ध होनेवाला है । समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? हे मेरे भाग्य-देवताओं, इस विपदा से अब मुझे कौन बचाएगा?" उषा ने विलाप करना प्रारंभ किया ।

मुस्कुराते हुए अनिरुद्ध ने उषा को दिलास दिया—"पगली, रो क्यों रही हो? मेरे साहस और पराक्रम को तुम जानती नहीं हो तुम्हारे पिता के सैनिक बल की बात मत करो । शिवजी स्वयं अपने प्रमद बाणों के साथ आवे, तब भी मैं उन पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ ।मैं अपने शत्रुओं को मुठ्ठियो से मारकर उन्हें खून से लथ-पथ बनाकर शोणपुर में खून की नदी बहा सकता हूँ । इस तरह शोणपुर का नाम सार्थक होगा । तुम खिड़की के पास खड़ी हो बस देखती रहो इस तरह व्याकुल होने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है ।"

उषा को यों सान्त्वना देकर अन्तःपुर के द्वार के निकट रखी गदा हाथ में लिये अनिरुद्ध राक्षसों पर टूट पड़ा । उस समय नारद प्रवेश करके आसमान में खड़े हो युद्ध का तमाशा देखने लगे ।

सभी राक्षसों ने अकेले अनिरुद्ध पर बाण गदा तथा अन्य सभी उपलब्ध आयुधों का प्रयोग किया । पर अनिरुद्ध ने उनकी परवाह न की । बल्कि अपनी गदा से अंधाधुंध राक्षसों पर प्रहार करने लगा । जो अधिक निकट आये, उन पर अपने ज़ोरदार मुक्कों का प्रहार किया । राक्षसों में से कई मर गये, कुछ बुरी तरह घायल हो गये । बाकी राक्षस मारे भय के भाग कर बाण के निकट जा खड़े हुए । बाण ने बड़े ग़ुस्से से उनको डाँटना शुरू किया—

"तुम लोग प्राणों के मोह से शत्रु को पीठ



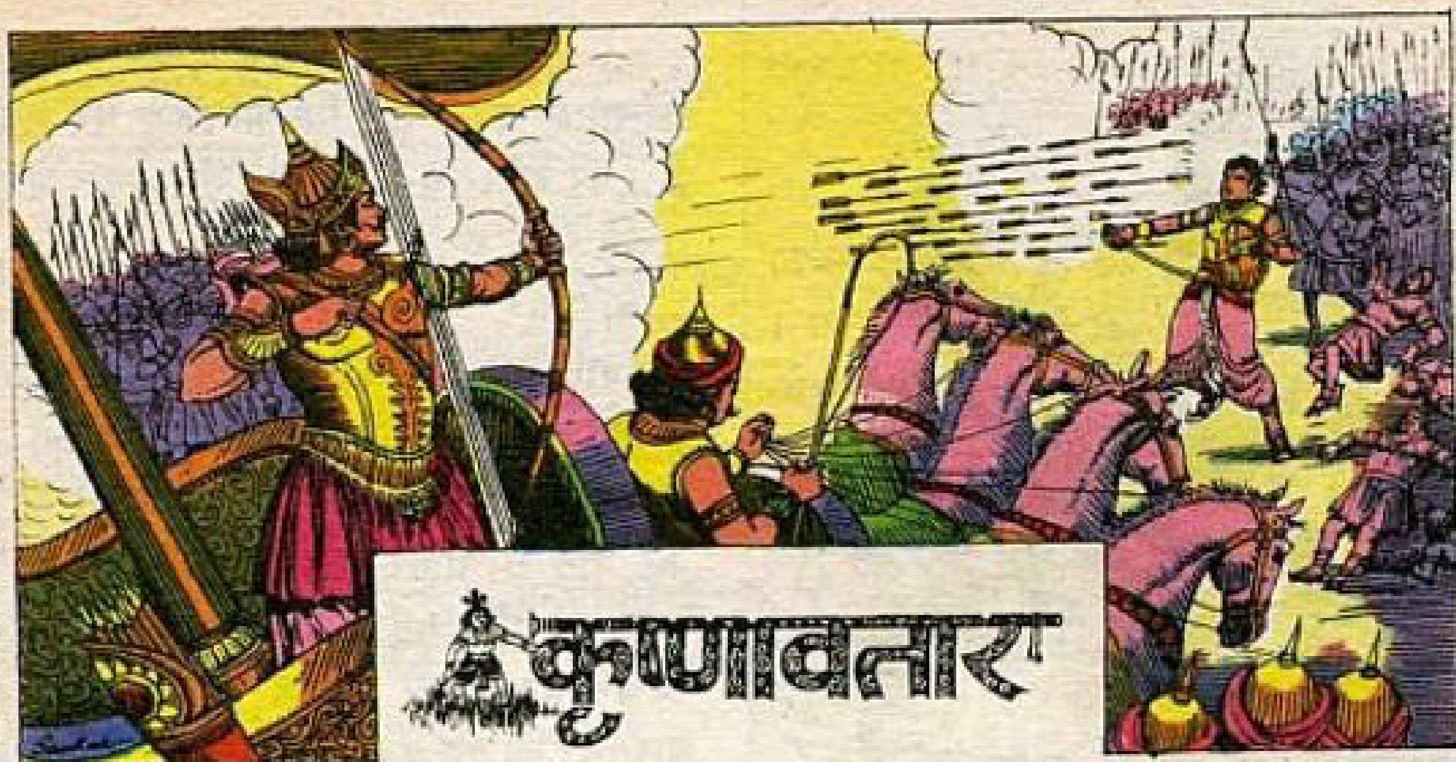
दिखा कर भाग आये हो । तुम्हारा शौर्य और पराक्रम बस भागने के लिए ही है! एक समय तुम लोगों के पराक्रम पर निर्भर हो मैंने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की थी, आज तुम लोगों ने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी । चलो, मैं तुम्हारे पीछे रथ, गज, तुरग व पैदल सेना के योद्धाओं को भेज देता हूँ । खूब लड़ो, शत्रु का अंत हो जाना चाहिए ।" इन शब्दों के साथ बाणासुर ने कालकेय नामक राक्षसों को अनिरुद्ध से लड़ने के लिए भेजा । वे पृथ्वी तथा आकाश तक छाकर अनिरुद्ध से लड़ने के लिए भेजा । वे पृथ्वी तथा आकाश तक छाकर अनिरुद्ध से लड़ने के लिए आ पहुँचे ।

अनिरुद्ध ने राक्षसों को अपने साथ लड़ने के लिए आते देखा, तो उसने तलवार और ढाल हाथ में लिये राक्षसों का संहार करना शुरू किया । अनिरुद्ध हज़ारों राक्षसों के साथ जूझ रहा था । कड़कती बिजली की भाँति वह लड़ रहा था । नारद को यह युद्ध अत्यन्त अद्भुत लगा । अनेक महारथियों को उसने लड़ते हुए देखा था, पर अनिरुद्ध के समान शत्रु को भ्रमित करनेवाला योद्धा आज तक उसने कभी नहीं देखा था ।

बाणासुर के द्वारा भेजे गये राक्षसों में से क मर गये, उस भगधड़ में कुछ एक दूसरे टकराकर रौंधे गये । आनिरुद्ध का लड़ने क कौशल देख कर सभी राक्षस दंग रह गये अब कोई लड़ने के लिए आगे आने को तैया नहीं हुआ । सब को अपने प्राणों की पड़ी थी । कुछ ने भागना उचित समझा अनिरुद्ध ने गर्जन करते हुए बचे राक्षसों क भगा दिया ।

अनिरुद्ध के हाथों बुरी तरह मार खाक लौटे हुए अपने राक्षस-योद्धाओं को दे बाणासुर के मन में कोई और आशंका पै हुई । उसके हाथों मार खाकर प्राणों से मुक हुए इन्द्र आदि देव आज भी उसका नाम सु कर काँप उठते हैं! इस अवस्था में इस न नौजवान ने आकर अपने सैनिक बल व सामना कर उसे हराया, क्या ही आश्चर्य है अब बाण स्वयं इस योद्धा से लड़ने निक पड़ा ।





बाणासुर का रथ एक हज़ार हाथ लंबा था । उसमें एक हज़ार घोड़े जुते हुए थे । रथ पर भालू का चमड़ा बिछा हुआ था । एक लाल झंडा और मयूर पताका रथ को सुशोभित बना रहे थे । रथ में गदा, धनुष-बाण, तलवारें आदि अनेक अस्त्र-शस्त्र भरे थे । कुंभाण्ड को अपना सारथी बनाकर बाणासुर अनिरुद्ध से लड़ने के लिए निकल पड़ा । यह सब देख सभी सेनापतियों में अपूर्व उत्साह भर गया और वे अपनी सेनाओं के साथ रथ के आगे-पीछे चल निकले । अपराधी अनिरुद्ध को उसके अपराध के योग्य कड़ी से कड़ी सज़ा देने का बाणासुर का विचार था ।

अनिरुद्ध ने दूर ही से उस पर आक्रमण करने निकले बाणासुर, उसके विविध आयुध और चारों तरफ फैली सेना को देखा । पर ज़रा भी न डरते हुए वह सीधे बाणासुर के रथ की ओर अग्रसर हुआ । एक तरफ़ बाणासुर जैसा महान योद्धा और उसकी प्रचंड सेना, व दूसरी तरफ एक अकेला यह युवक लड़ने के लिए आगे बढ़ रहा है! अद्‌भुत दृश्य था वह!

एक साधारण मनुष्य को किसी विशेष प्रकार के आयुधों के बिना साहसपूर्वक अपनी ओर बढ़ते देख बाणासुर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उसने गरजकर अपने राक्षस सैनिकों को आदेश दिया – "तुम लोग देख क्या रहे हो? इस दुष्ट को बंदी बनाकर मार डालो ।" इसने हमारी अनुमति के बिना हमारी नगरी में प्रवेश कर उत्पात मचाया है । इस अपराध का उचित दंड है मैत! मार डालो इसको । और फिर उसने अनिरुद्ध की



कोलाहल करने लगे कि अनिरुद्ध मर गया है। पर अनिरुद्ध मरा न था, वह केवल आगे न बढ़ पाया था।

बाणासुर ने इतने में अनिरुद्ध पर महाशक्ति का प्रयोग किया। पर अनिरुद्ध ने उसको अपने हाथ में कस कर पकड़ लिया। वह महाशक्ति बाणासुर के छाती को चीर कर पीठ से होकर बाहर निकल गई और पृथ्वी में धँस गई। बेहोश हो बाणासुर ध्वज-स्वम्भ को पकड़ लुढ़क पड़ा। बाणासुर की यह अवस्था देख कर सभी प्रमुख योद्धा विस्मय में आ गये। अनिरुद्ध के प्रति सब के मन में एक विचित्र भय पैदा हुआ। यह कोई असाधारण शक्तिशाली मानव दिखाई देता है!

सारथी कुंभाण्ड बाणासुर को होश में लाया और उसने उसे समझाया—"लगता है, हमारा शत्रु असामान्य पराक्रमी है। सारी दुनिया उस पर चढ़ आये, तो भी वह उसकी परवाह नहीं करेगा। उसका साहस और पराक्रम आपने प्रत्यक्ष देख लिया न? उसको पराभूत करना सहज संभव नहीं है। आपके और मेरे प्राणों को बचाने की बात पहले सोचने होगी। वरना यह हमारे राक्षस-वंश का सर्वनाश कर बैठेगा। आज तक आपने अनेक महान पराक्रमी योद्धाओं का सामना किया और उनको युद्ध में हराया। पर अब आपको पराभूत होता पड़ रहा है!"

बाणासुर ने कहा—"अब देखते रहो, मैं इस मूर्ख को किस प्रकार बन्दी बनाता हूँ, जैसे

ओर बाणों की वर्षा की।

अनिरुद्ध के हाथ में एक तलवार मात्र थी। फिर भी शत्रु के बाणों की परवाह किए बिना उसने आक्रमणकारी राक्षसों को इधर-उधर ढकेल दिया और वह बाणासुर के रथ के सामने पहुँच गया। बाणासुर के पराक्रम को जाननेवाले योद्धा उसके सामने आते हुए भयभीत होते थे। यह युवक निडर होकर आगे बढ़ रहा था। अनिरुद्ध का यह साहस देख कर सभी योद्धा चकित हो गये।

रथ के पास पहुँचकर अनिरुद्ध उसमें जुते घोड़ों का वध करने लगा। खून की नदियाँ बह निकलीं। इस बीच बाणासुर ने अनिरुद्ध पर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया। अब राक्षस-गण यह सोच कर

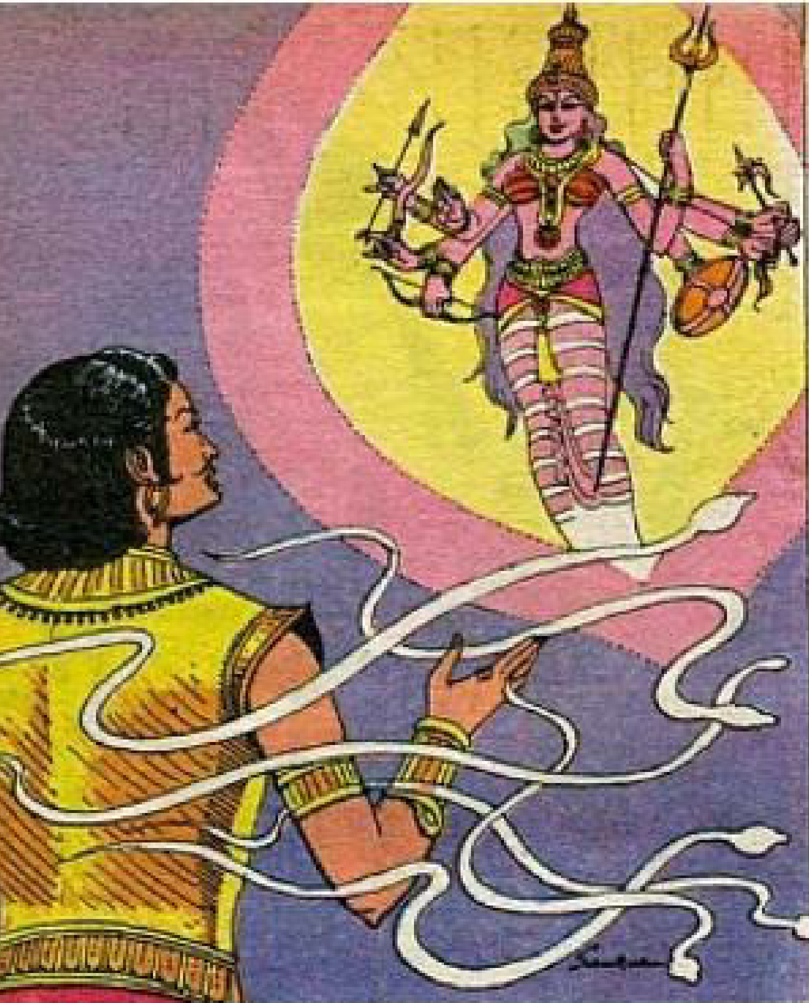
गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है।" फिर बाणासुर अदृश्य हो गया और उसने अनिरुद्ध पर कृष्ण-सर्प के मुखवाले बाणों से प्रहार करना शुरू किया। उसके सारे अवयवों को बाँध कर उसे अविचल बना दिया। उसने कुंभाण्ड से कहा–"यौवन के मद में मस्त यह दुष्ट युवक हमारे हाथों में अब अच्छी तरह फँस गया है। तत्काल इसका सिर उड़ा देंगे। नहीं, उसको इसी अवस्था में कुछ समय रखकर तमाशा देखेंगे। अब उसको मालूम होगा कि बाणासुर के साथ युद्ध करके उसे पराभूत करना कितना कठिन कार्य है!"



इस पर कुंभाण्ड ने समझाया–"आपकी बात तो ठीक ही है, पर एक और बात का भी ख्याल कीजिएगा। इस युवक ने पहले ही आपकी पुत्री उषा से गांधर्व विवाह कर लिया है। अगर इसके साथ कुछ दुर्घटना हुई तो उषा को कैसा अपार दुख होगा यह भी ज़रा सोच लीजिए। इसके साथ हमें यह बात भी मालूम करनी है कि यह युवक आखिर है कौन? कहाँ से यहाँ आन टपका? यह निश्चय ही कोई साधारण मनुष्य नहीं है। सौंदर्य और पराक्रम में देवता भी इसकी बराबरी नहीं कर सकते! यह अवश्य ही कोई महान व्यक्ति होगा। आप जैसे महावीर के साथ इसने जिस निर्भयता से युद्ध किया, उसे देखते ही बना। असहाय्य होने हुए भी उसके मुख पर जो क्रोध उबल रहा है, देखिए तो! क्या आपको इससे बढ़कर श्रेष्ठ दामाद और उषा बेटी को इससे सुयोग्य पति मिल सकता है? आपके लिए इससे बढ़कर तेजस्वी प्रतिद्वंद्वी विश्व भर में मिलेगा? इन सब बातों को समझ लेंगे? आवेश के अभिभूत होकर तुरन्त कोई निर्णय लेना इस समय उचित न होगा। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उस पर ग़ौर से सोचिए। वरना बाद में पछताना पड़ेगा। और तब पछताने से भला फायदा ही क्या?

इस लिए क्रोध के वशीभूत होकर झट कुछ न कर बैठिए।"

कुंभाण्ड की इन सब बातों में बाणासुर को तथ्य नज़र आया। अपनी स्वीकृति दिखाते हुए बाण ने सिर हिलाया और अपने कुछ चुनिन्दा योद्धाओं को अनिरुद्ध के पहरे पर नियुक्त करके अपने महल की ओर प्रस्थान किया।

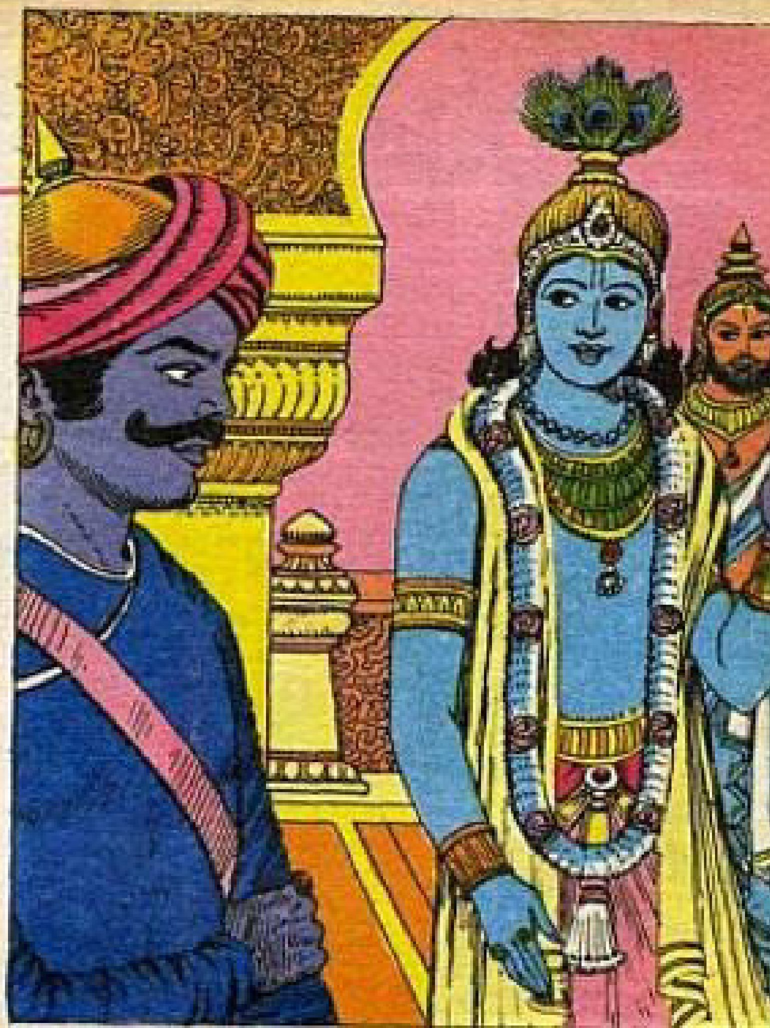


अब नारद अनिरुद्ध के पास आये और उसे सान्त्वना देते हुए बोले—"मैं अभी जाकर श्रीकृष्ण को लिवा लाता हूँ। उनके आने पर तुम्हारे सारे कष्ट सहज दूर हो जाएँगे। तब तक तुम धैर्यपूर्वक जो बीती है, उसे सहन कर लो। तुमने जो कुछ किया, मैंने अपनी आँखों से देख लिया। तुम महान् पराक्रमी हो। पर अब तुम्हारी परीक्षा का समय है। हिम्मत से काम लो। श्रीकृष्ण को यहाँ पहुँचने में बहुत विलंब न होगा।" इतना कहकर नारद वहाँ से चले गये।

इसके बाद अनिरुद्ध ने सिर उठाकर ऊपर देखा। आँसू बहाती हुई उषा खिड़की के पास दिखाई दी। उसने उषा से कहा—"तुम्हारे पिताजी आमने-सामने मुझ से युद्ध नहीं कर पाये, इसी लिए मायाजाल से मुझे यों बन्दी बनाकर चले गए। फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं है। महान् पराक्रमी श्रीकृष्ण मेरे कष्टों को दूर करनेवाले हैं। उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से अब तक कई राक्षसों का संहार कर दिया है। मेरे इस पराभव को वे ज़रा भी सहन नहीं कर सकेंगे। तुम ज़रा भी चिन्ता मत करना। तुम्हारे पिता के अंतिम दिन निकट आये हैं। श्रीकृष्ण के पास सब समाचार पहुँच रहा है। वे तुरन्त ही यहाँ पधारकर बाणासुर को उसके अपराध का उचित दण्ड देंगे।"

फिर अनिरुद्ध ने दुर्गा के स्तोत्र का पाठ किया और ध्यान किया। कुछ ही समय में लोकेश्वरी दुर्गा उसके सामने प्रत्यक्ष हुई। बाणों के जिस पिंजड़े ने अनिरुद्ध को बन्दी बनाया था, उसे स्पर्श करके तोड़ दिया। बंधन-मुक्त हुए अनिरुद्ध से उसने कहा—"शीघ्र ही श्रीकृष्ण स्वयं यहाँ आकर बाणासुर से युद्ध करेंगे और उसे पराभूत करके तुम्हें अपने साथ ले जाएँगे। तुम्हारा कल्याण होगा।" फिर दुर्गा अंतर्धान हो गई।

इधर द्वारका में बहुत हलचल मची। चित्ररेखा के अनिरुद्ध को ले जानेके बाद अनिरुद्ध की सभी पत्नियाँ होश में आ गईं और अपने पति को न देख कर ज़ोर-शोर से विलाप करने लगीं। उनको बड़ी चिन्ता हुई कि जो अनिरुद्ध अभी अभी यहाँ थे, वे अचानक उन्हें छोड़ कहाँ चले गये? अगर जाते तो कह कर न जाते!



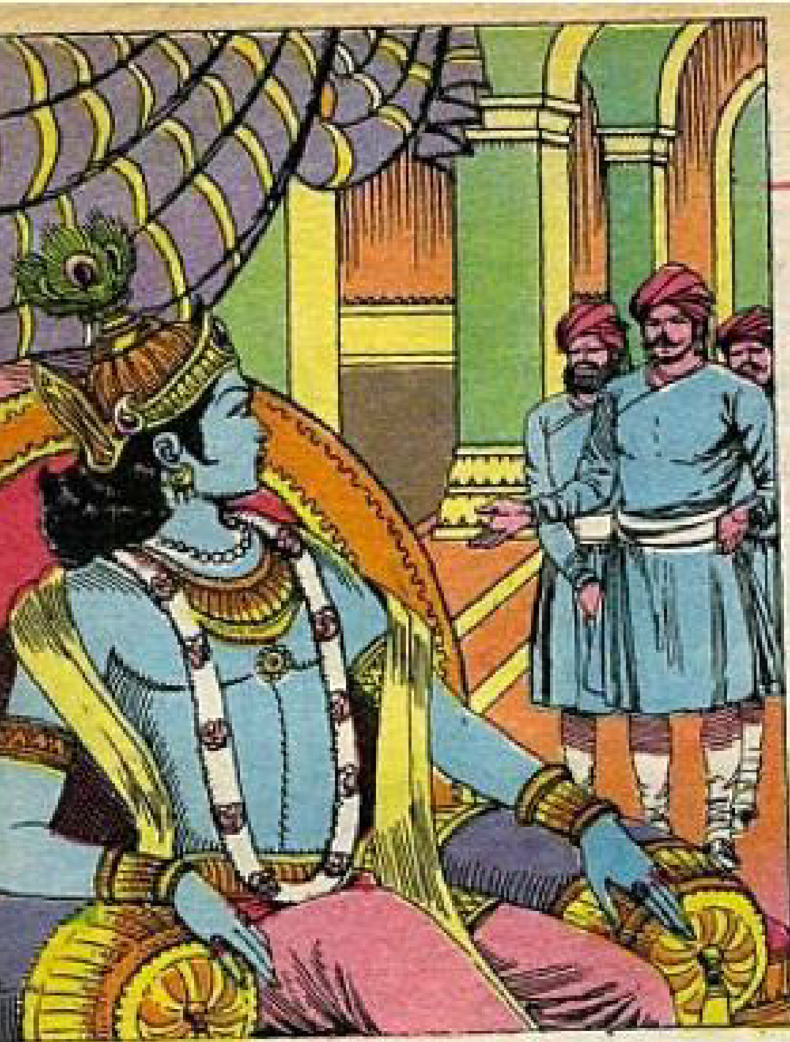
अनिरुद्ध के महल में स्त्रियों का विलाप सुन कर नगर के सभी यादव-प्रमुख अपने निवास-स्थानों को छोड़ बाहर निकल आए। सभा-भवन में भेरी बज उठी। श्रीकृष्ण, बलराम इत्यादि सभी तुरन्त सभा-भवन में पहुँच गये। अनिरुद्ध का पता न पाकर सब को बड़ी चिन्ता हुई। श्रीकृष्ण के नेत्रों से आँसू बह निकले।

यह देख श्रीकृष्ण को सान्त्वना देते हुए विकद्रु ने कहा–"महानुभाव, आपकी छत्र-छाया में समस्त यादव-वंश यहाँ सुरक्षित है। यहाँ तक कि देवेन्द्र इन्द्र भी अपनी सुरक्षा के लिए आप पर अवलंबित हैं। इस स्थिति में अगर आप व्याकुल होते हैं, तो अनिरुद्ध के अदृश्य होने का समाचार पाकर हम पर क्या गुज़रेगी? आपका यह कर्तव्य है कि आप हमें धीरज बँधाइए।"

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा–"बंधु, मेरी चिंता केवल इस बात के लिए है कि अनिरुद्ध का पता न लगने पर सारे लोग मुझे क्या कहेंगे? प्रद्युम्न जब बालक था, तभी एक राक्षस उसे उठा ले गया था। प्रद्युम्न ने स्वयं उस राक्षस का वध किया था। इससे कुछ हद तक मेरी प्रतिष्ठा बच गई। लगता है, अब की बार भी कुछ ऐसा ही हो गया है। मेरे शत्रु ने प्रतिकार की भावना से यह काम किया है। यह कोई मामूली घटना नहीं है। तुम कुछ उपाय बता सकोगे? उसके आधार पर मैं अपना निश्चय लेकर करणीय करूँगा। अनिरुद्ध बिना किसी से कहे यहाँ से चला गया यह बड़े ही आश्चर्य की बात है! वह चला गया या हमारा कोई शत्रु उसे ले गया? वह जहाँ कहीं हो, सुरक्षित होगा न?"

सात्यकि ने सुझाया कि अनिरुद्ध को ढूँढ़ने के लिए चारों तरफ अपने लोगों को भेज दिया जाए। उग्रसेन ने सात्यकि के सुझाव का समर्थन किया और फिर अनिरुद्ध की खोज में कुछ लोग रथों पर सवार हो, कुछ घोड़ों पर और कुछ पैदल रवाना किये गये।

एक सेनापति अनादृष्टि ने संकोच के साथ श्रीकृष्ण से निवेदन किया–"क्षमा कीजिए, मेरे मन में एक संदेह हो रहा है। अनेक बार आपने देवताओं की सहायता अवश्य की है। लेकिन आप जब पारिजात वृक्ष को ले आए थे, तब इन्द्र ने आपसे युद्ध किया था और उसमें वे



हार गये थे । तो मुझे शक है कि कहीं इन्द्र ने ही तो अनिरुद्ध का अपहरण नहीं कर लिया न?"

यह बात सुन कर श्रीकृष्ण हँस पड़े । उन्होंने कहा—"देवता ऐसा काम कभी नहीं करेंगे । यह काम अवश्य राक्षसों का है । मैं नित्य देवताओं का उपकार ही करना आया हूँ । अतः ऐसा नीच कर्म देवता कभी नहीं कर सकते ।"

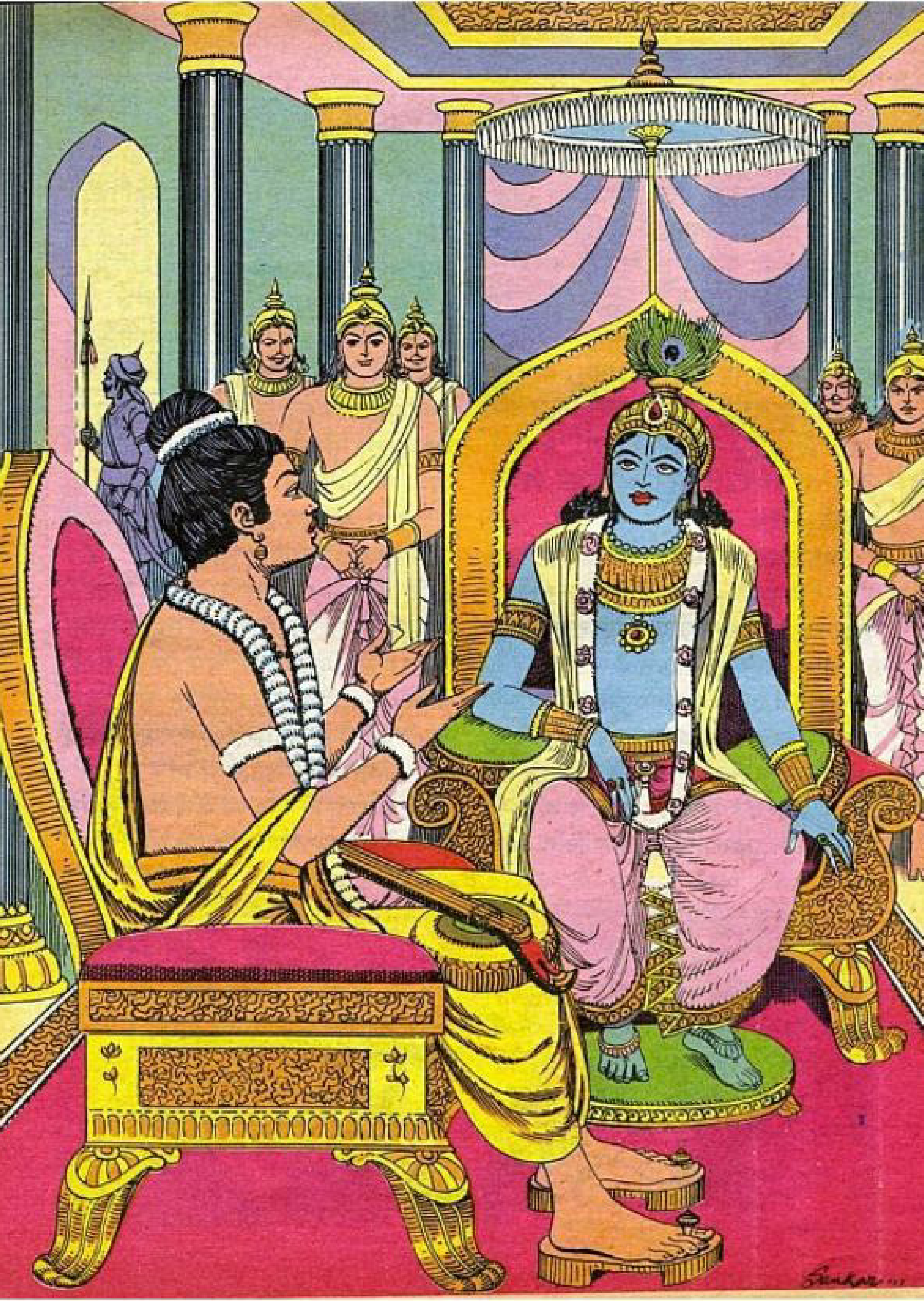
अक्रूर ने श्रीकृष्ण के कथन का समर्थन किया । श्रीकृष्ण ने और कहा—"अनिरुद्ध का अपहरण कोई पुरुष नहीं कर सकता । किसी पापात्मा नारी का ही यह कार्य है । दैत्य, दानव और देवता स्त्रियाँ ही अनेक माया-विद्याएँ जानती हैं । वे संकल्प मात्र से कहीं भी जा सकती हैं । किसी को भी डरा सकती हैं । यह सब ध्यान में रख कर हमें अनिरुद्ध को ढूँढ़ निकालना होगा ।"

यों कुछ दिन गुज़र गये । अनिरुद्ध को ढूँढ़ने गये यादव वीर अपने प्रयास में असफल हो लौट आए और वैसी श्रीकृष्ण को सूचना दी ।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण सभा-भवन में पहुँचे । उग्रसेन, सात्यकि आदि सभी प्रमुख यादव भी वहाँ उपस्थित थे । इसी समय नारद आ पहुँचे । सब ने नारद का यथोचित आतिथ्य किया । सब की तरफ बारीकी से देखते हुए नारद ने पूछा—"यह क्या है! लगता है, आप सब लोग किसी गहरी चिंता में डूब गये हैं!"

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"क्या कहें? अनिरुद्ध का कहीं पता नहीं । हम ने सर्वत्र उसकी खोज की । पर सब बेकार!"

नारद ने समाचार देते हुए कहा—"तो अब सुनिये, आज तक मैंने अनेक युद्ध देखे हैं । पर आपके अनिरुद्ध ने बाणासुर के साथ युद्ध किया, वह अद्भुत और अपूर्व है । बात यह हुई कि बाणासुर की पुत्री उषा ने आपके अनिरुद्ध से प्रेम किया । उसने अपनी सखी चित्ररेखा को अनिरुद्ध के पास भेजा । उसने अनिरुद्ध को उषा के पास पहुँच दिया । यह समाचार पाते ही बाणासुर अनिरुद्ध से युद्ध करने आया, अनिरुद्ध ने उसे हराया, फिर भी अंत में माया-युद्ध करके बाणासुर ने अपने सर्प-बाणों से उसे बंदी बनाया है । अत शीघ्र ही आप स्वयं जाकर बाणासुर को अच्छ



सबक सिखाइए । बाणासुर की राजधानी शोणपुर यहाँ से बहुत दूर है । इस लिए आप गरुड़ पर आरूढ़ होकर जाइए । यही समाचार आपको सुनाने मैं आया था । अब आप मुझे आज्ञा दीजिए ।" फिर नारद वहाँ से रवाना हो गये ।

अब श्रीकृष्ण ने गरुड़ का स्मरण किया । शीघ्र ही गरुड़ वहाँ पर पहुँच गया । तत्काल श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न गरुड़ पर सवार हो गये । वे जब शोणपुर के पास पहुँचे, तो उनको सामने एक अद्भुत प्रकाश दिखाई दिया ।

"हम इस समय बाणासुर की राजधानी के पास पहुँच रहे हैं । शिवजी ने इस नगरी की सुरक्षा के लिए अग्नियों को नियुक्त कर रखा है । अब जो हमारे सामने है उसे अहवनी अग्नि कहते हैं । इसके साथ जो करणीय है, गरुड़जी कर लेंगे ।" श्रीकृष्ण ने समझाया ।

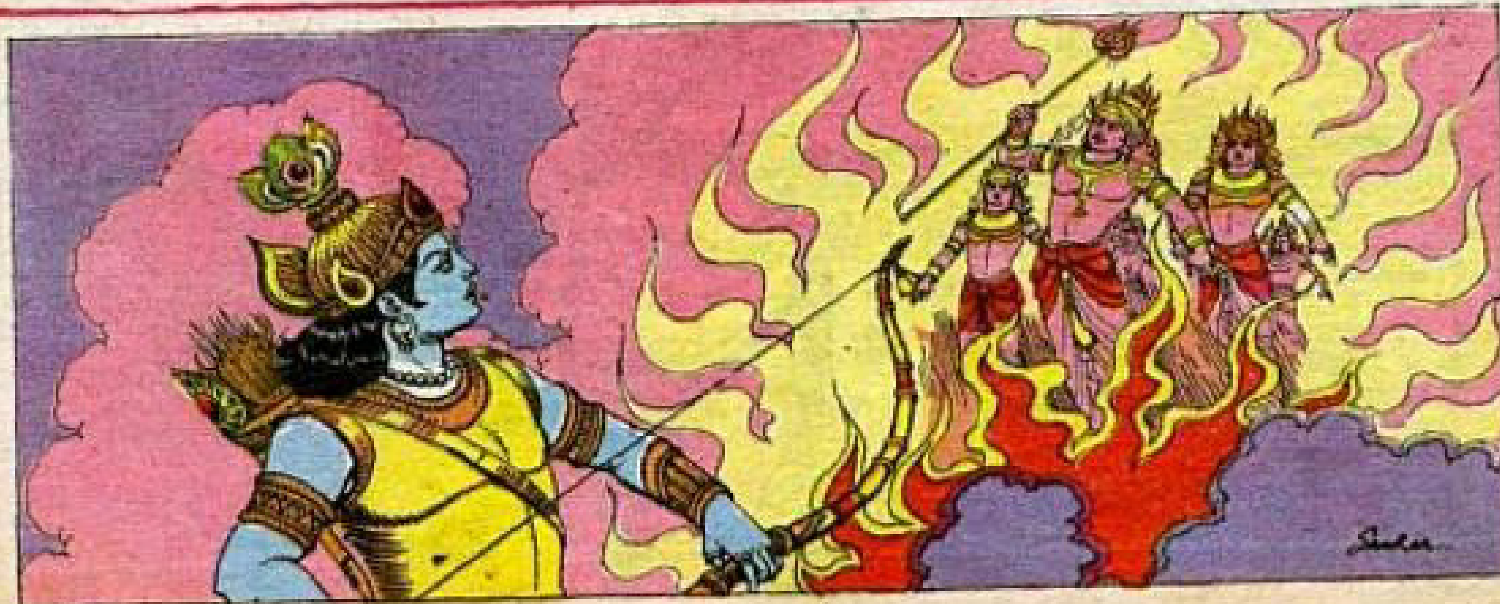
श्रीकृष्ण के मुँह से यह बात निकलने की देरी थी, कि बस गरुड़ ने आकाश-गंगा से जल लेकर अग्नि पर छिड़क दिया और निमिषार्थ में उसे बुझा दिया । इस पर श्रीकृष्ण ने गरुड़ की भूरि भूरि प्रशंसा की ।

इधर अंगीरस नामक अग्नि ने ज्योतिष्टोम तथा विभांग नामक अग्नियों को अपने दाएँ-बाएँ रखकर अन्य अग्नियों की सहायता से श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा ।

श्रीकृष्ण ने अंगीरस को धमकाया—"हे अंगीरस, ऋषि-मुनियों द्वारा समर्पित आहुतियों को भक्षण कर हृष्ट-पुष्ट हो मद में आकर तुम मुझ से युद्ध करने आये हो? हट जाओ मेरे सामने से!"

इस पर अंगीरस क्रुद्ध होकर बोला—"मैं इस अस्त्र से तुम्हारे प्राण हर लेता हूँ ।" और उसने श्रीकृष्ण पर एक शूल फेंक दिया । श्रीकृष्ण ने अपने बाण से उसका ध्वंस किया । और दूसरा बाण अंगीरस की छाती पर फेंका । अंगीरस रक्तरंजित होकर रथ पर ही बेहोश हो गया । यह दृश्य देख बाकी सभी अग्नि चारों दिशाओं में भाग गये ।

उनके हटते ही श्रीकृष्ण के नेत्रों के सामने सारा शोणपुर स्पष्ट दिखाई देने लगा ।





श्रीकृष्ण बाणासुरकी नगरीका अवलोकन करने लगे । इसी समय नारद ने वहाँ प्रवेश किया और कहा—"श्रीकृष्ण, आप देख रहे हैं न? पार्वती के साथ शिवजी इस नगरी की स्वयं रक्षा कर रहे हैं । इस लिए अपने कार्य को सफल बनाने में आम को सावधानी बरतनी चाहिए । शिवजी का सामना करना कोई साधारण बात नहीं । यह भी सोचो कि शिवजी का विरोध हो तो इस समय हमें क्या करना चाहिए । कहीं बाद में पछताना न पड़े ।"

इस पर श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा—"हमारे अंगीकृत कार्य में बाधा डालनेवाला स्वयं परमेश्वर भी क्यों न हो, हम यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे अवश्य, पर वापस जाकर अपने कार्य को असफल नहीं होने देंगे ।"

यह कहते हुए श्रीकृष्ण ने नगर के द्वार पर जाकर अपना पांचजन्य फूँका । उस गंभीर ध्वनि को सुन कर महासागर की तरह बाणासुर की सेनाएँ उमड़ कर वहाँ आ पहुँचीं । श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और गरुड़ ने जोश में आकर राक्षस-सेनाओं का संहार करना प्रारंभ किया । बाणासुर के अधिकांश सैनिक मर गये और बाक़ी सैनिक युद्ध-भूमि से भाग खड़े हुए ।

बाणासुर ने अपने योद्धाओं को ताने देते हुए कहा—"तुम वीरों ने राक्षस-कुल में जन्म लेकर युद्ध-विद्या का अध्ययन किया है । तिस पर भी तुम लोग यों रण-भूमि से भाग चले आए हो? युद्ध-भूमि से भाग जाना कायरों का काम है । तुम्हारे इस काम से सारे राक्षसों को अपमानित होता पड़ेगा ।



युद्ध-भूमि छोड़ते हुए तुम को ज़रा भी लज्जा नहीं महसूस हुई?

मैं हूँ, मेरे मंत्री कुंभांड है,प्रथम श्रेणी के अन्य वीर योद्धा भी हमारे साथ हैं । हम सब के सामने ये शत्रु किस खेत की मूली हैं? ठहरो ।"

इसके बाद भाग आये राक्षसों को कुंभांड ने भी समझाया । पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ । राक्षस सेना बिना रुके भाग खड़ी हुई । पराक्रमी शत्रुओं को देखकर उन्हें विश्वास हो गया था कि उनकी मौत सुनिश्चित है । ऐसी हालत में युद्ध-भूमि को छोड़ देना ही ठीक होगा ।

यों अपने भक्त बाणासुर का अपमान होते देख शिवजी क्रोधित हो उठे । वे स्वयं युद्ध के लिए तैयार हो सिंहों से जुते रथ पर सवार हो निकल पड़े । उनके रथ पर वृषभध्वज फहरा रहा था । नंदिनी को सारथी बना कर कुमार स्वामी और प्रथम श्रेणी के वीरों के साथ शिवजी ठाठ से चल निकले ।

अब शिवजी और श्रीकृष्ण के बीच युद्ध शुरू हुआ । प्रारंभ में ही शिवजी ने श्रीकृष्ण पर सौ बाणों से प्रहार किया । इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने शिवजी पर इंद्रास्त्र फेंका । उसके भीतर से हजारों बाण निकल आये और उन्होंने शिवजी के रथ को घेर लिया । तब शिवजी ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, जिसके प्रभाव से चारों तरफ अग्नि-ज्वालाएँ उठीं और उन्होंने सारे बाणों को भस्म कर दिया । इसके बाद वे ज्वालाएँ श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और गरुड़ को भी घेरने लगीं । श्रीकृष्ण ने गुस्से में आकर वारुणास्त्र का प्रयोग करके उन ज्वालाओं को बुझा दिया ।

शिवजी ने अब पाँच-छे भयंकर अस्त्रों का प्रयोग किया । उन अस्त्रों को व्यर्थ बना सकनेवाले अन्य अस्त्रों का प्रयोग कर अंत में श्रीकृष्ण ने मंत्र फूँक कर वैष्णवास्त्र को फेंका । शिवजी की समझ में नहीं आया कि उस महा अस्त्र को कैसे रोका जाए? तब अत्यन्त क्रोध में आकर शिवजी ने युगांत कर सकनेवाले भयंकर पाशुपतास्त्र को निकाला ।

शिवजी के उद्रेक को जान कर अब श्रीकृष्ण ने अपना जृंभकास्त्र निकाल कर उसे

शिवजी की ओर फेंक दिया । दूसरे ही क्षण शिवजी निर्बल हो जंभाइयाँ लेने लगे । उनके हाथ से धनुष और बाण नीचे गिर पड़े । शिवजी का यों निर्बल हो युद्ध-भूमि में गिर पड़ना बड़ा अनपेक्षित था । सब लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था ।

इसी समय बाणासुर भी युद्ध-भूमि में प्रवेश कर चुका था । शिवजी की यह अवस्था देख कर उसे भी बड़ा अचंभा हुआ । अपने अभिभावक का यों पराभूत होना उससे सहा नहीं गया । उसने शिवजी में चेतना लाने का असफल प्रयास किया । श्रीकृष्ण ने दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करनेवाले पांचजन्य को फूँका ।



यह देख प्रथम श्रेणी के वीर बहुत ही गुस्से में आ गये । उन्होंने प्रद्युम्न को घेर कर उसे विविध आयुधों से मानो ढक दिया । साथ ही राक्षसों ने भी उसके साथ युद्ध शुरू किया । अब प्रद्युम्न की अवस्था बहुत दयनीय हुई । उसकी समझ में नहीं आया कि अब इस बाँके समय पर क्या किया जाय । फिर भी डगमगाया नहीं । अपने पास के एक विशेष अस्त्र की उसे याद आई । प्रद्युम्न ने अपने सम्मोहनास्त्र द्वारा उन सब को निद्रावस्था में डाल दिया और फिर अनेक राक्षसों का संहार किया ।

इस बीच कुमार स्वामी ने अपने पिता को युद्ध से विमुख होते देख स्वयं उनके स्थान पर लड़ना शुरू किया । श्रीकृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न के साथ लड़ते हुए उसने उनको घायल कर दिया और खुद भी घायल हो गया । अब कुमारस्वामी श्रीकृष्ण पर क्रोधित हो गया और उसने उन पर ब्रह्मशिरोनामास्त्र फेंका । श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उसको काट डाला । फिर उन्होंने कुमारस्वामी पर अपने चक्रका प्रयोग किया । वह कुमार स्वामी पर लगने ही वाला था, कि लंबादेवी नामक एक देवता-नारी ने प्रवेश किया और वह उसे युद्ध-भूमि से दूर ले गई ।

अपने प्रमुख योध्दाओं को इस प्रकार रण-भूमि से हटते देख बाण ने सोचा कि अब उसे स्वयं संग्राम करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है । बड़ी खुशी से वह स्वयं युद्ध-भूमि में आ पहुँचा । दोनों के बीच जो



कुछ भी करें तो मैं आपको रोक नहीं सकती । मैंने इस बाण को अपने पुत्र के समान पाल रखा है । आपके लिए उचित है कि आप मुझे पुत्र-शोक में न डुबा दें । इस लिए इसकी रक्षा न करेंगे?"

श्रीकृष्ण ने पार्वती को समझाया–"देवी, अपने हज़ार हाथों के बल पर यह बहुत उन्मत्त बन गया है । इसके केवल दो हाथ रखकर शेष हाथों को काट देने पर ही इसका घमण्ड नष्ट हो सकता है । उस हालत में यह अपना राक्षसत्व छोड़ कर आपके आश्रय में पलनेवाले सुयोग्य पुत्र के रूप में रह जाएगा । आप कृपया मेरे सामने से हट जाइए ।"

श्रीकृष्ण के वचन सुन कर पार्वती ने लंबा देवी को बाणासुर के सामने से हट जानेको कहा । पार्वती के साथ लंबा देवी के अदृश्य होते ही श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन-चक्र का प्रयोग कर के बाणासुर के दो हाथों को छोड़ बाकी सारे हाथों को काट डाला और वह पुनः श्रीकृष्ण के हाथ में लौट आया ।

भयंकर युद्ध हुआ, उसमें बाण के रथ तथा आयुध चूर चूर हो गये । उसकी ध्वजा टूट कर गिर पड़ी । इसके बाद श्रीकृष्ण का बाण बाणासुर के वक्ष को भेद कर चला गया और बाणासुर एकदम बेहोश हो गया । बाणासुर की यह अवस्था देख कर उसकी सेना का सारा हौसला पस्त हो गया । रहे-सहे योद्धा भी रण-भूमि को त्यागने के लिए तैयार हो गए ।

बाणासुर को श्रीकृष्ण के हाथों पराजित होते देख शिवपार्वती ने पुनः एक बार लंबा देवी को ही भेजा । वह बाणासुर के आगे आकर खड़ी हो गई । स्वयं पार्वती भी अदृश्य रूप में वहीं आकर खड़ी हो गई ।

इस पर श्रीकृष्ण की बातें सुन कर पार्वती ने कहा–"आप तो स्वयं सर्व-समर्थ हैं । आप

इतना होने पर भी बाणासुर का पौरुष बना रहा।उसने अपने शेष दो हाथों में धनुष-बाण लेकर श्रीकृष्ण पर बाणों की वर्षा की । इस पर गुस्से में आकर श्रीकृष्ण ने पुनः उस पर अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग करना चाहा, पर इतने में स्वयं शिवजी अपने परिवार समेत वहाँ उपस्थित होकर बोले–"हे श्रीकृष्ण, यह मेरे संरक्षण में है । इस का वध करके मेरे दिये अभय-दान को व्यर्थ मत करना । आप

अपने चक्र का प्रयोग न कीजिए ।"

शिवजी का अनुरोध श्रीकृष्ण टाल न सके । बाणासुर का वध करने का अपना विचार उन्होंने छोड़ दिया । अब श्रीकृष्ण शिवजी की स्तुति करके गरुड़ पर सवार हो अनिरुद्ध को देखने चले । बाणासुर को नन्दिकेश्वर ने शिवजी के पास पहुँचा दिया । बाणासुर के हाथों के कटने के कारण उसे जो पीड़ा हो रही थी उसे शिवजी ने दूर कियाऔर अपने प्रथम वीरों के बीच अत्यन्त ऊँचा स्थान देकर नन्दी के बराबर का पद प्रदान कर उसे संमानित किया । इसके बाद बाणासुर महाकाल नाम से संबोधित होने लगा । और फिर शिवजी अंतर्धान हो गये ।

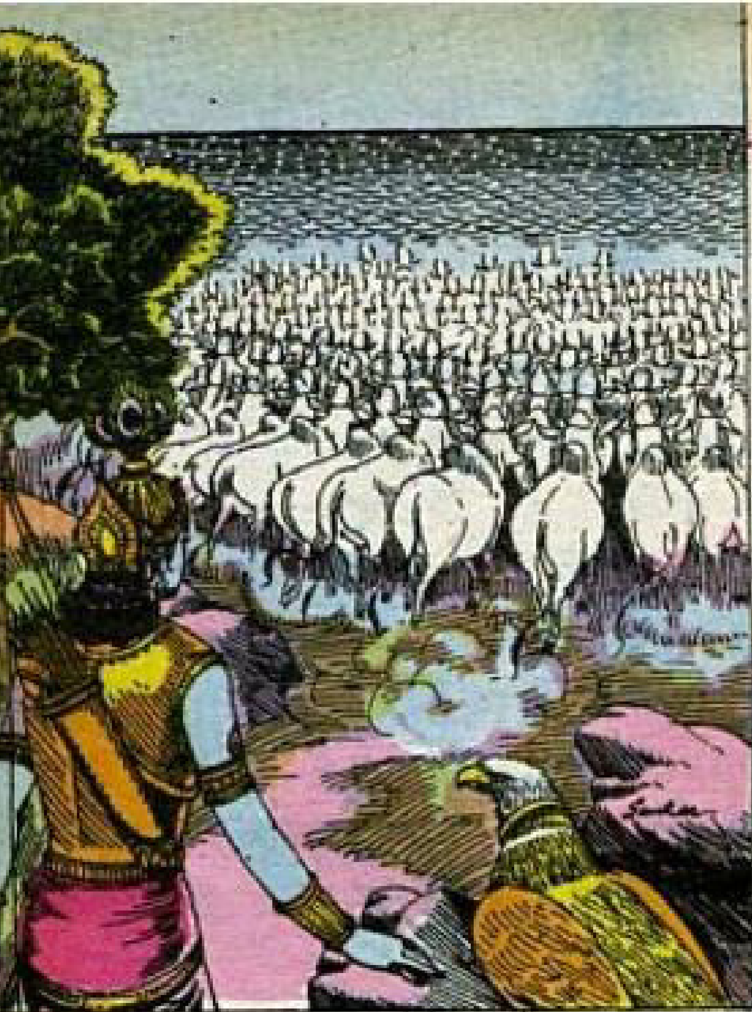
इधर गरुड को देखते ही सर्पों के रूप में अनिरुद्ध को बन्दी बनाये हुए सभी सर्प पुनः बाणों का रूप धारण कर नीचे गिर पड़े । इसी समय नारद वहाँ पर आ पहुँचे । चित्ररेखा भी आ गई । श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न ने अनिरुद्ध को आलिंगन दिया । उसने भक्तिपूर्वक सब को प्रणाम किया ।

नारद ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया – "श्रीकृष्ण, अब विलंब ही क्यों? अनिरुद्ध का विवाह संपन्न किया जाए ।"

मुहूर्त का समय निकट ही था । इस लिए कुंभांड ने विवाह की सारी तैयारियाँ कीं और श्रीकृष्ण को प्रणाम करके निवेदन किया – "आप मुझ पर अनुग्रह करके मेरी रक्षा कीजिए ।"

श्रीकृष्ण ने कुंभांड से कहा – "मैंने सुना है कि तुम अत्यन्त योग्य व्यक्ति हो । बाणासुर की यह नगरी तुम्हीं ले लो । और निश्चिन्त





होकर यहाँ का शासन चलाओ ।"

अब उषा और अनिरुद्ध का विवाह वैभवपूर्वक संपन्न हुआ। श्रीकृष्ण नव-दंपति को शिव-पार्वती के पास ले गये । उषा और अनिरुद्ध ने शिव-पार्वती को नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और नव वर-वधू ने उनसे आशीर्वाद प्राप्त किये । पार्वती ने अनिरुद्ध को वाहन के रूप में बाणासुर के मयूर को भेंट किया ।

विजयी श्रीकृष्ण वहाँ से अब निकलने को हुए तब कुंभांड ने प्रार्थना की — "बाणासुर की गायें वरुण के पास हैं । उन गायों का दूध पीने से बल और वीर्य प्राप्त होते हैं । आप से निवेदन है कि आप उन्हें अपने अधीन कर लीजिए ।"

यह समाचार पाकर श्रीकृष्ण दाऊ बलराम और अपने पुत्र प्रद्युम्न को गरुड़ पर चढ़ा कर शीघ्र गति से पश्चिमी समुद्र के तट की ओर रवाना हुए । वहाँ के वनों में लाखों की संख्या में विचरनेवाली गायों को देखा । गायों को वश में करने की कला श्रीकृष्ण बचपन से ही जानते थे, इस लिए वे झट गायों के पास पहुँच गये । उन्हें देखने ही गायें जल्दी से दौड़ कर समुद्र में अदृश्य हो गईं ।

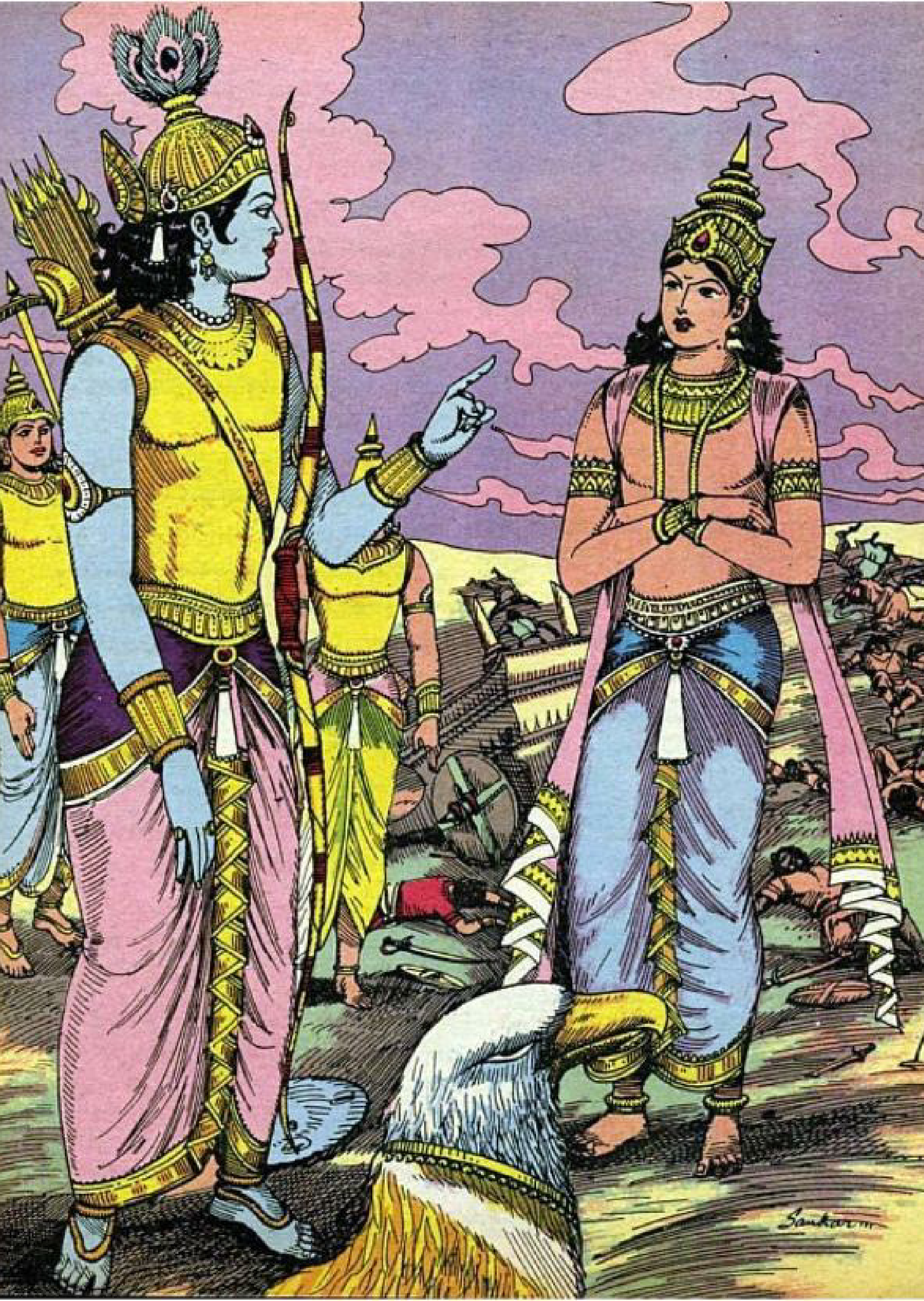
श्रीकृष्ण ने निराश हो गरुड़ से पूछा — "यह क्या चमत्कार हैं? क्या मेरा प्रयत्न यहाँ निष्फल हो जाएगा?"

गरुड़ ने सुझाया — "अब तो वरुण से युद्ध करना अनिवार्य लगता है!"

इसके बाद गरुड ने जोरों से अपने पंख फड़फड़ाये । समुद्र का सारा जल हट गया और उसके तल में सारा नाग लोक स्पष्ट दिखाई देने लगा। श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य फूँक कर वरुण के महल पर धावा बोल दिया ।

दूसरे ही क्षण सड़सठ रथों पर सवार हो शंखनाद करते हुए वरुण के सैनिक श्रीकृष्ण पर चढ़ आये । श्रीकृष्ण ने उनके साथ दारुण युद्ध किया । उनके साथ बलराम व प्रद्युम्न ने भी वीरतापूर्वक युद्ध किया । गरुड ने भी उनकी मदद की । इन चारों का पराक्रम देख वरुण के अनुचर भाग खड़े हुए ।

अब श्रीकृष्ण के आक्रमण पर कुपित हो वरुण स्वयं उनसे लड़ने के लिए आन पहुँचा । इस महासंग्राम में श्रीकृष्ण ने



वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया । वरुण भयभीत हो समझौता करने को राजी हो गया ।

श्रीकृष्ण ने अपनी शर्त रखी –"मुझे इतने से संतोष नहीं है कि तुम मेरी शरण में आ गये । बाणासुर की सभी गायें पहले मेरे अधीन कर दो ।"

वरुण ने निवेदन किया –"आप कृपया गायों की माँग मत कीजिएगा । क्यों कि बाणासुर ने इन गायों को जब मेरे हाथ सौंप दिया था, तब मैंने उसको वचन दिया था कि मेरे प्राण रहने तक मैं युद्ध करने के लिए तैयार रहूँगा, पर इन गायों को किसी और हाथों में नहीं सौंपूँगा । मैंने सत्य बात आपको बता दी । अब आगे आप जो उचित समझें कीजिए ।"

इस पर श्रीकृष्ण ने गायों की आशा छोड़ दी और अपने दिव्य अस्त्र को वापस ले लिया । अब वरुण ने श्रीकृष्ण का यथोचित आदर-सत्कार किया और उनको अपने लोक से बिदा किया ।

वरुण से बिदा लेकर श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न अनिरुद्ध सभी गरुड पर सवार हो अपनी नगरी में पहुँचे । वहाँ उन्होंने विजयसूचक अपने पांचजन्य की ध्वनि की । यह ध्वनि सुन कर समस्त प्रमुख यादव अपने विशाल दल-बल के साथ श्रीकृष्ण का स्वागत करने पहुँच गये । तब तक श्रीकृष्ण नगर के बाहर के उद्यान में उतर कर विहार कर रहे थे । उनके साथ इन्द्र आदि देवता भी थे । यादव श्रीकृष्ण से मिले और उन सब को रथों में बैठाकर वैभवपूर्वक नगर के अंदर ले गये । श्रीकृष्ण के विजय प्राप्त कर लौटने का समाचार पाकर नगर के सारे नागरिक पथों पर अनुशासन के साथ खड़े रहे । श्रीकृष्ण का शोणपुर में अग्नियों पर विजय पाना, शिवजी को निर्बल बनाना, पार्वती को पुत्र-भिक्षा प्रदान करना, बाणासुर के हाथ काट कर प्राणों के साथ उसे छोड़ देना इत्यादि की वे आपस में चर्चा कर रहे थे । उनकी बातें सुनकर श्रीकृष्ण को परमानन्द हुआ ।

नगर अच्छे ढंग से अलंकृत किया गया था । नगर में प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण अपने महल में चले गये । उषा और अनिरुद्ध भी अपने भवन में पहुँचे ।





एक दिन प्रभात-वेला में श्रीकृष्ण सात्यकी और उध्दव के साथ सभा-भवन की ओर जाने के लिए निकले । उस समय उनसे मिलने के लिए एक अतिथि आ पहुँचा । उसने द्वारपालों के साथ प्रवेश करते हुए श्रीकृष्ण से निवेदन किया-"महात्मन्, मगध देश के राजा जरासंध ने बीस हज़ार राजाओं को पराजित कर उन्हें कारागार में बन्दी बना दिया है और वह उन्हें अनेक प्रकार से त्रस्त कर रहा है । वह उन्हें लगातार कई दिन भूखा रखता है । जब कुछ खाने को देता है तो ऐसा कदान्न देता है जो शायद जानवर भी न खा सकें । फिर वह उन्हें तरह तरह की शारीरिक पीडाओं से बुरी तरह त्रस्त करता है । उनकी बड़ी दुर्दशा कर रखी है उसने! वे सभी राजा आपकी शरण में आना चाहते हैं । उन्होंने अपने प्रतिनिधि के रूप में मुझे आपकी सेवा में भेजा है । हम सब आप ही की प्रजा है, इस लिए हम सब की रक्षा करने का उत्तरदायित्व आप ही का तो है ।"

इसी समय अचानक नारद वहाँ पर उपस्थित हुए । श्रीकृष्ण ने नारद का यथोचित स्वागत किया और कुशल-प्रश्न पूछे । नारद ने समाचार दिया-"ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर राज्य-संपादन की इच्छा से राजसूय यज्ञ संपन्न कराना चाहते हैं । उनकी इच्छा है कि इस यज्ञ की अध्यक्षता आप करें । सभी नृपगण आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।"

एक ओर जरासंध के द्वारा बन्दी बनाये



सारे राजाओं ने अपने दूत को भेज कर श्रीकृष्ण की सहायता की याचना की है, और दूसरी ओर युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ की अध्यक्षता करने का संदेश नारदजी लाये हैं ।

श्रीकृष्ण ने उद्धव से सलाह माँगी—"दोनों कार्य महत्त्वपूर्ण हैं । वास्तव में दोनों को करना चाहता हूँ । मगर एक ही समय दोनों काम नहीं किये जा सकते ।. हम किसको प्रथम संपन्न करें?"

उद्धव ने सलाह दी—"जरासंध का संहार करने के लिए कोई विशेष अवसर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है । क्यों कि राजसूय यज्ञ संपन्न करते समय युधिष्ठिर को अनेक राजाओं को पराजित करना ही पड़ेगा । उसी समय जरासंध के मामले को निपटाया जा सकता है । मेरे विचार में इस समय राजसूय यज्ञ में संमिलित होने के लिए जाना ही अधिक उचित है । फिर युधिष्ठिर ने जिस आत्मीयता से आपको निमंत्रित किया है, उसकी अवहेलना भी नहीं करनी चाहिए । राजसूय सज्ञ में शामिल होने के लिए जाना आपका प्रथम कर्तव्य है । आप यही काम पहले अंगीकृत कीजिए । मैंने अपनी बात कही, अब आपकी जो इच्छा हो वही कीजिए ।"

इसी समय उद्धव ने एक और बात का भी स्मरण दिलाया । "सैनिक बल के प्रयोग से जरासंध पर विजय पाना सरल नहीं है । बल व पराक्रम में उसके सानी केवल भीमसेन ही हैं, जो द्वंद्व-युद्ध में उसे पराजित कर सकते है । इसके सिवा कोई और उपाय मेरी नज़र में नहीं आ रहा है । भीमसेन और जरासंध के द्वंद्व-युद्ध में आखिर भीमसेन ही जीत जाएँगे । जरासंध का सारा गर्व चूर चूर हो जाएगा ।"

उद्धव की सलाह श्रीकृष्ण को पसंद आई । उन्होंने बलराम की भी अनुमति प्राप्त कर ली, और फिर दारुक आदि को आदेश दिया कि इन्द्रप्रस्थ की यात्रा की तैयारियाँ शीघ्रतापूर्वक कर लीं जाएँ । पालकियों में रुक्मिणी, सत्यभामा आदि नारियाँ बैठ गयीं, और श्रीकृष्ण अपनी चतुरंग सेना के साथ वैभवपूर्वक निकल पड़े । नारद पहले ही प्रस्थान कर चुके थे । जरासंध के यहाँ बंदी

बने राजाओं के प्रतिनिधि से कहा—"तुम सभी राजाओं से कह दो कि वे डरे नहीं। मैं अवश्य जरासंध का संहार कर सभी राजाओं को बन्दीशाला से मुक्त कराऊँगा। अभी कुछ दिन उनकी सहन-शक्ति की परीक्षा का समय हैं। उनको धीरज खोना नहीं चाहिए। इस वक्त बड़ी शान्ति से काम लेना आवश्यक है। सभी निश्चिन्त रहें!"

श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुन कर युधिष्ठिर उनके स्वागतार्थ आगे आया। आनन्दाश्रु के साथ उसने श्रीकृष्ण को आलिंगन दिया।

श्रीकृष्ण ने पांडवों से कुशल-प्रश्न किये। फिर तोरणों, पताकाओं तथा केले के पौधों से अलंकृत मार्ग से होकर इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण के दर्शन करने के लिए नगर के समस्त नागरिक पुरुष तथा नारियाँ मार्ग के दोनों तरफ तथा मकानों की छतों पर जमा हो गये।

युधिष्ठिर के भवन में श्रीकृष्ण ने कुंती तथा उसकी बहुओं के दर्शन किये।

श्रीकृष्ण पांडवों के अत्यन्त प्रिय पात्र हैं, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन की मित्रता लोकोत्तर है। अर्जुन ने जब खांडववन को जलाया, तब स्वयं श्रीकृष्ण उसके रथ के सारथि बने थे। उन्होंने अर्जुन को दिव्य रथ, घोड़े तथा अक्षय तूणीर दिलाये थे। मय के द्वारा मय-सभा का निर्माण कराया। अतः युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को अनेक दिन सपरिवार अपने यहाँ रखा और अंत में एक दिन भरी सभा में अपने मनोनीत



राजसूय यज्ञ के बारे में उनको परिचित कराया।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर का अभिनन्दन करते हुए कहा—"आपके राजसूय यज्ञ के संकल्प का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। दिग्विजय करने के लिए दिक्पालों के समान आपके भाई हैं ही। वे चारों दिशाओं के राज्यों को जीत कर आपको सौंप सकते हैं। इस सदनुष्ठान में मेरे आशीर्वाद आप के साथ हैं। आपका संकल्पित यज्ञ अवश्य सफलता के साथ संपन्न होगा। किसी बात की चिन्ता मत कीजिए।"

श्रीकृष्ण का अभिप्राय सुन कर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने चारों छोटे भाइयों को चारों दिशाओं में दिग्विजय कर



लेकर जरासंध की राजधानी गिरिव्रजपुर
पहुँचे । इन तीनों ने वहाँ जाकर ब्राह्मणों
वेष धारण कर लिया । जरासंध प्रति दि
ब्राह्मणों की पूजा करता था । जब वह अप
इस कार्य में व्यस्त था, तब ये तीनों वहाँ पहुँ
और निवेदन किया—"हम लोग दूर देश
आए अतिथि हैं । हम आप से जो माँग लें
दीजिएगा?"

जरासंध ने तीनों को बारीकी से देखा
उन तीनों की आकृतियाँ तथा कंठ-स्व
परिचित-सा लगा । उनके हाथ धनुष-बा
का प्रयोग करनेवाले राजाओं के हाथों
समान लगे । उसने पहचान लिया कि
ब्राह्मण वेषधारी क्षत्रिय हैं ।

फिर भी जरासंध ने अतिथियों की इच्छ
की पूर्ति करने का निश्चय कर
पूछा—"कहिए, आप लोग मुझ से क्या चाह
हैं भला?"

"हम तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध खेलना चाह
हैं । ये हैं भीमसेन और यह रहा इसका छो
भाई अर्जुन! मैं हूँ तुम्हारा शत्रु कृष्ण!
श्रीकृष्ण ने उत्तर में कहा ।

ये बातें सुन कर जरासंध हँस क
बोला—"ओह, तो यह बात है! मैं द्वन्द्वयुद्ध
लिए तैयार हूँ । पर तुम से मैं युद्ध नहीं कर
चाहूँगा । तुम मुझ को देख मथुरा से भा
गये, समुद्र में जाकर छिपनेवाले कायर
तुम! मैं अर्जुन के साथ भी युद्ध नहीं करूँग
क्यों कि वह मुझ से छोटा है । बल-पराक्र
में यह मेरी बराबरी क्या करेगा? मेरा सानी

राज्य जीतने के लिए भेज दिया । सहदेव दक्षिण दिशा में, नकुल पश्चिम में, अर्जुन उत्तर में और भीमसेन पूर्व में चले और उन दिशाओं के राज्यों को जीत लिया । राजसूय यज्ञ संपन्न करने के लिए आवश्यक अपार धन लाकर युधिष्ठिर को सौंप दिया ।

युद्धों में कई राजा पराजित हुए, पर जरासंध नहीं । इस पर युधिष्ठिर को चिन्ता हुई । श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के अंतःकरण की व्यथा जानकर उन्हें समझाया—"आप जरासंध के बारे में ज़रा भी चिन्ता न करें । उसको पराजित करने का उपाय उद्धव ने मुझे घर से निकलने के पहले ही बता दिया है । यह कार्य मैं संभाल लूँगा ।"

इसके बाद श्रीकृष्ण भीम तथा अर्जुन को

केवल यह भीमसेन! मैं इससे अवश्य द्वंद्व-युद्ध करूँगा ।"

यह कहकर जरासंध ने एक भारी गदा भीमसेन के हाथ में दी और एक गदा स्वयं अपने हाथ में सम्हाली । श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ वे दोनों नगर की सीमा पर युद्ध-भूमि में पहुँचे । वहाँ जरासंध और भीमसेन का गदा-युद्ध शुरू हुआ । दोनों मत्त हाथियों की भाँति लड़ने लगे । एक दूसरे के प्रहारों को वे बचाते रहे । कभी मौक़ा मिलने पर एक दूसरे पर प्रहार भी करते रहे । यहाँ तक कि अंत में दोनों की गदाएँ टूट गईं। तब उन्होंने मुष्टि-युद्ध करना शुरू किया ।

जरासंध का जन्म हुआ था, तब उसका शरीर दो टुकड़ों में विभाजित था । जरा नाम की एक पिशाचिनी ने उन दो टुकड़ों को जोड़ दिया था । इस कारण उसका नाम जरासंध हुआ । श्रीकृष्ण इस बात को जानते थे । उसका वध करने के लिए उसको दो टुकड़ों में काटना ही एकमात्र उपाय था । उसका वध करने के लिए श्रीकृष्ण ने एक तिनका अपने हाथ में लेकर उसे सीध में दो टुकड़ों में चीर डाला । भीमसेन यह संकेत समझ गया । उसने तुरन्त जरासंध को नीचे गिरा दिया, अपने एक पैर से उसके एक पैर को दबा कर रखा और दूसरी टाँग पकड़ कर जरासंध को सीध में चीर डाला ।

जरासंध का यह हाल देख वहाँ उस युद्ध को देखने के लिए जमा हुए लोग हाहाकार कर उठे । श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भीमसेन को

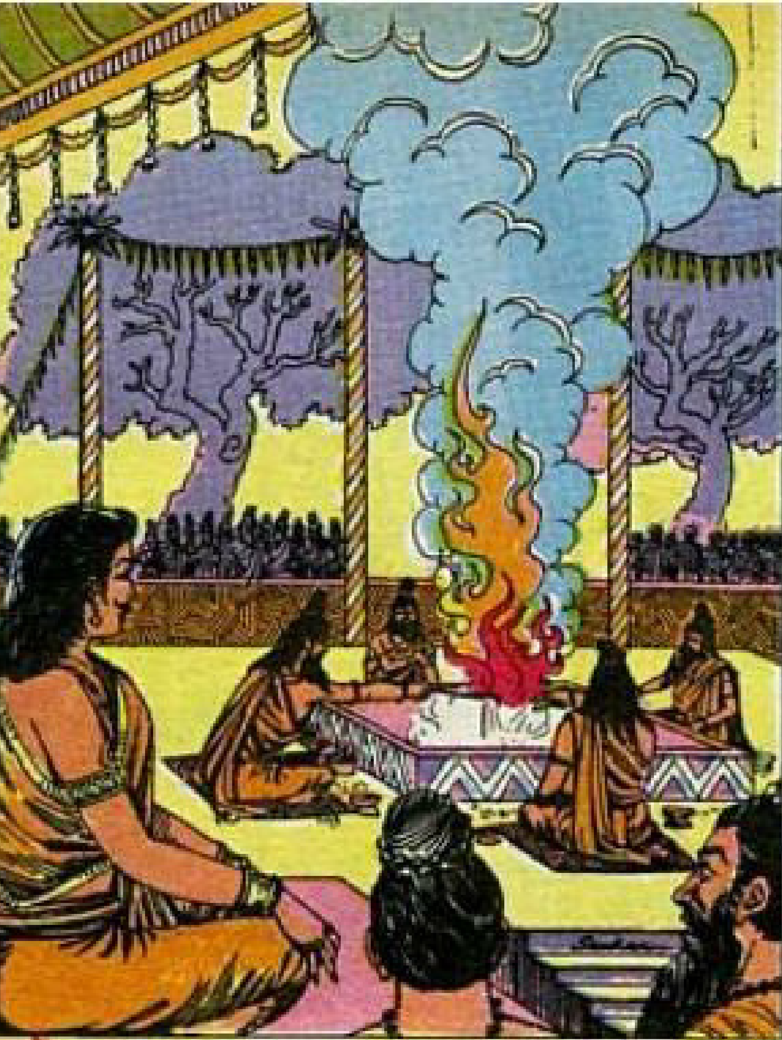


आलिंगन दिया और उसका अभिनंदन किया ।

जरासंध की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण ने उसके पुत्र सहदेव का मगध राज्य के राजा के रूप में अभिषेक किया और जरासंध के द्वारा कैद किये गये सारे राजाओं को कारागृह से मुक्त कर डाला ।

श्रीकृष्ण का आदेश पाकर सहदेव ने बन्दीशाला से मुक्त हुए सभी राजाओं के स्नान-पान आदि का प्रबंध किया, फिर उत्तमोत्तम उपहारों से उनका सत्कार किया । फिर उन राजाओं को अपने अपने देशों को वापस भेज दिया ।

श्रीकृष्ण भीम और अर्जुन को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आये और जरासंध के वध



का समाचार युधिष्ठिर को सुनाया। । अपनी इच्छा की पूर्ति हो गई यह देख युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्ण को शतशः धन्यवाद दिए।

अब युधिष्ठिर ने अपना संकल्पित राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया। कृष्ण द्वैपायन, भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम आदि अनेक ऋषि-मुनि इस यज्ञ के ऋत्विक् बने।

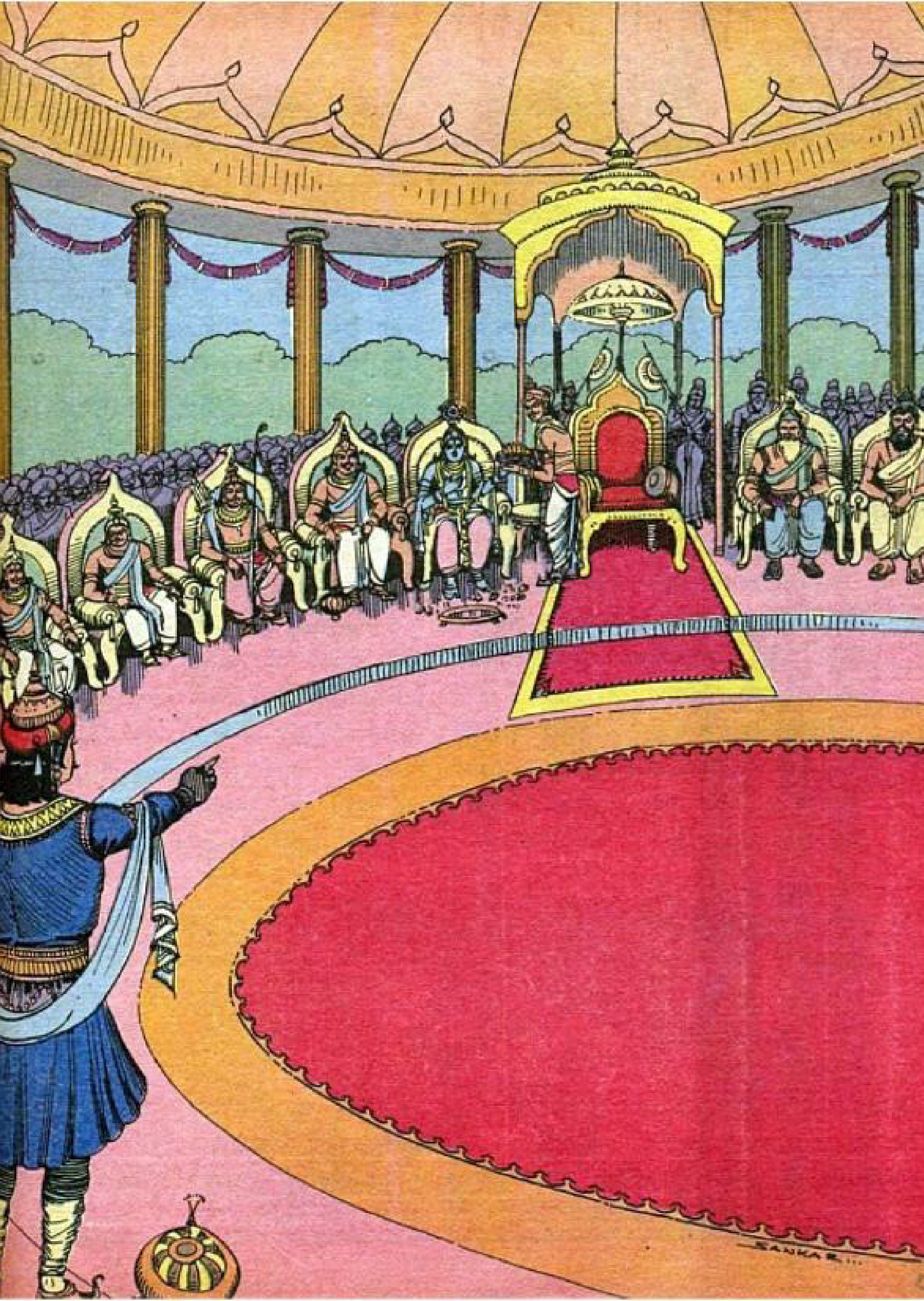
युधिष्ठिर ने यज्ञ के लिए भीष्म, धृतराष्ट्र, उनके सभी पुत्र तथा द्रोण, कृपाचार्य, विदुर इत्यादि को निमंत्रण दिया। इस यज्ञ में अनेक राजा तथा चतुर्वर्ण के विशिष्ठ लोग आ उपस्थित हुए।

सुवर्ण-हलों से यज्ञ-भूमि को जोत कर यज्ञ-वेदी का निर्माण किया गया और फिर ऋत्विकों ने युधिष्ठिर के द्वारा यज्ञ की दीक्षा दिलवाई। राजसूय यज्ञ बड़े वैभव से संपन्न हुआ। अंत में वह दिन आया जब यज्ञ-कर्ता के द्वारा याजकों तथा अतिथियों का सत्कार आयोजित था। उस दिन युधिष्ठिर ने सभी उपस्थित लोगों को उद्धेश्य कर पूछा- "कृपया आप लोग ही मुझे सुझाएँ कि सर्वप्रथम मैं आप में से किसकी पूजा करूँ?"

पर इस प्रश्न का उत्तर कोई न दे पाया। क्यों कि सभा में एक से एक महान पुरुष उपस्थित थे। सब को मौन देखते हुए सहदेव ने कहा-"इसमें सोचने-विचारने की बात ही क्या है? भगवान श्रीकृष्ण ही सर्वप्रथम पूजा पाने के अधिकारी हैं। उनकी पूजा की गई, तो इसका अर्थ है समस्त भूतों की पूजा हो गई!"

सहदेव के इस सुझाव का सभी उपस्थितों ने स्वागत किया। युधिष्ठिर ने तत्काल श्रीकृष्ण के चरण धोये और उनको पीतांबर तथा आभूषण सौंप दिये। समस्त राजाओं ने श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

परंतु दमघोष के पुत्र शिशुपाल को यह पूजा बिलकुल पसन्द न आई। वह उठ खड़ा हुआ और हाथ उठाकर गरज पड़ा-"इसे काल की महिमा न कहें तो क्या कहें? सहदेव ने सर्वप्रथम पूजनीय व्यक्ति का नाम सुझाया और आप सब लोगों ने उसे स्वीकृति दी-यह कैसे मज़ाक की बात है! इस सभा में अनेक उच्च कोटि के तपस्वी विराजमान हैं, उनके होते हुए इस नीच कुल के गोपालक की


SANKAR

सर्वप्रथम पूजा कैसे संभव है? ययाति के द्वारा शापग्रस्त यादव पूजा के योग्य कैसे हो सकते हैं?"

शिशुपाल की बातें सुन कर श्रीकृष्ण ज़रा भी विचालित नहीं हुए, पर बाकी सदस्यों में से बहुतेरे कान बंद कर सभा-भवन छोड़ कर चले गये। कुछ लोग शिशुपाल के साथ युद्ध तक करने को तैयार हो गये। श्रीकृष्ण ने उन सब को रोका और अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर शिशुपाल का सिर काट दिया। सभा-भवन में कोलाहल मच गया। यह हंगामा देख शिशुपाल के सभी समर्थक भय के मारे भाग खड़े हुए।

इस के बाद युधिष्ठिर ने सभी उपस्थितों को समुचित उपहार प्रदान किये। अवभृत स्नान के उपरान्त राजसूय यज्ञ सफलता-पूर्वक समाप्त हुआ।

राजसूय यज्ञ में पधारे सभी मेहमानों के चले जाने के बाद युधिष्ठिर के अनुरोध पर श्रीकृष्ण कुछ दिनों तक इन्द्रप्रस्थ में ही रह गये।

इस बीच दुर्योधन के मन में अतीव ईर्ष्या पैदा हुई। क्यों कि उसने युधिष्ठिर के वैभव को अपनी आँखों से देख लिया था। राजसूय यज्ञ बड़े वैभव के साथ संपन्न हुआ था। युधिष्ठिर के लिए मय ने एक अद्भुत सभा-भवन का निर्माण किया था। उस सभा-भवन में सभी राजाओं ने पांडवों के प्रति अपना स्नेह प्रकट किया था।

उस भवन में श्रीकृष्ण की पत्नियों ने मनचाहा विहार किया। वह वहाँ भ्रम में पड़ गया, उसे पता न चला कि कहाँ पानी है और कहाँ नहीं है। जहाँ पानी न था, वहाँ दुर्योधन ने अपने वस्त्र घुटनों तक ऊपर खींच लिये। जहाँ पानी था, वहाँ पर वह इस तरह धँस गया कि उसके वस्त्र गीले हो गये। इस पर द्रौपदी के साथ सारी महिलाएँ खिलखिलाकर परिहास के साथ हँस पड़ीं। उनको यों हँसते देख युधिष्ठिर ने उनको मना किया, पर किसी ने उस ओर ध्यान न दिया। इस पर अत्यन्त अपमानित होकर दुर्योधन अपनी राजधानी हस्तिनापुर को लौटा।





शिशुपाल का एक मित्र था, जिसका नाम था साल्व । जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी को उठा ले गये थे, उस समय अन्य योद्धाओं के साथ साल्व भी श्रीकृष्ण के हाथों पराजित हुआ था । इस कारण गुस्से में आकर उसने प्रतिज्ञा की थी – "मैं इस संसार के समस्त यादवों का सर्वनाश कर डालूँगा ।" अपनी इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए साल्व ने शिवजी के प्रति घोर तपस्या की और उनके प्रत्यक्ष होने पर उनसे एक अपूर्व विमान की माँग की । शिवजी ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि वह एक विमान का निर्माण कर उसे साल्व को सौंप दे । विश्वकर्मा ने सौभ नामका एक लोहे का काला विमान बनाया और उसे साल्व को दे दिया । उस विमान की क्षमताएँ अद्‌भुत थीं । बड़े बड़े पेड़ वह उठाकर ले जा सकता था । उसमें कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे । किसी समृद्ध नगरी का नाश करने की सामग्री उसमें विद्यमान थी । ऐसा अद्‌भुत विमान पाकर साल्व बहुत प्रसन्न हुआ । साल्व उस पर सवार हो द्वारका पर हमला कर बैठा । उसकी सेनाओं ने द्वारका को घेर लिया ।

साल्व ने अपने विमान से द्वारका पर पत्थर, पेड़, अस्त्र-शस्त्र आदि बरसा कर हाहाकार कर दिया । उसकी सेनाएँ नगर के महलों व उद्यानों का ध्वंस करने लगीं ।द्वारका ने नगरवासी भयभीत होकर इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस स्थिति में अब क्या करें? स्त्रियाँ और बालकों की स्थिति तो बड़ी दयनीय हो गई । यह सारा कांड देख

२९. सुदामा की कहानी .



प्रद्युम्न ने सारी यादव-सेनाओं के साथ साल्व पर आक्रमण किया । उसके साथ सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब, अक्रूर, कृतवर्मा जैसे वीर योद्धा थे । उस समय श्रीकृष्ण पांडवों के यहाँ थे ।

साल्व तथा यादवों की सेनाओं के बीच सत्ताईस दिनों तक भयानक युद्ध चला । तब तक श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये । रास्ते में ही उन्होंने उस युद्ध की तीव्रता को जान लिया और अपने रथ को सीधे साल्व की ओर बढ़ाया । दोनों के बीच तुमुल युद्ध हुआ । श्रीकृष्ण ने सौभ विमान का ध्वंस किया और उसे समुद्र में गिरा दिया । शिवजी से पाये अपने विमान का यों नाश होते देख साल्व बहुत दुखी हुआ । वह बड़ी हिम्मत से श्रीकृष्ण के साथ युद्ध के लिए संन्नद्ध हो गया । फिर श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से साल्व का संहार किया ।

साल्व की मृत्यु देख उसका मित्र दंतवक्तृ एक गदा लेकर अकेला ही श्रीकृष्ण से लड़नेके लिए आ गया । वैसे श्रीकृष्ण दंतवक्तृ के ममेरे भाई थे । उन्होंने भी अपने हाथ में गदा ली और दंतवक्तृ के साथ घनघोर युद्ध किया । श्रीकृष्ण ने अपनी गदा से उसके वक्ष पर प्रहार करके उसको मार डाला । इस प्रकार साल्व का शुरू किया युद्ध-कांड समाप्त हुआ ।

श्रीकृष्ण के एक बालसखा थे सुदामा । बचपन में दोनों ने एक ही गुरु के पास शिक्षा पाई थी । गुरु-गृह में रहते हुए दोनों एक साथ अध्ययन करते थे । गुरु-पत्नि ने कुछ काम करने के लिए कहा तो दोनों के मन में एक-सी श्रद्धा और भक्ति थी । सुदामा ने विवाह करके गृहस्थाश्रम स्वीकार किया था, लेकिन वह दरिद्र्य से पीडित था । सुदामा की अपेक्षा उसकी पत्नी दरिद्रता की पीड़ा का अधिक अनुभव करती थी । कभी घर में भोजन के लिए कुछ न होता तो भूखे पेट सोना पड़ता था । फटे-पुराने वस्त्र ही पहन लेते थे । बच्चों की बड़ी दुर्दशा थी । दरिद्रता के मारे परिवार को जीना मुश्किल हो रहा था । सुदामा की पत्नि जीवन से ऊब गई थी । इस लिए एक दिन उसने अपने पति से कहा-"श्रीकृष्ण तो आपके बाल-मित्र हैं न? सुना है कि वे ब्राह्मणों को अपार दान देते हैं ।

वे उन सब की सहायता करते हैं, जो उनकी शरण में जाते हैं । आप तो उनके मित्र हैं, तिस पर भी गृहस्थी के भार से दबे हैं, क्या वे आपकी सहायता न करेंगे? मेरी मानिए तो, एक बार अपने बचपन के साथी के दर्शनके लिए द्वारका जाइए और अपनी दरिद्रता की कहानी उनको सुनाइए । वे आपकी अवश्य मदद करेंगे । श्रीकृष्ण की कृपा हुई तो अपने दुर्दिन यों समाप्त हो जाएँगे ।"

सहायता माँगने के बहाने श्रीकृष्ण के दर्शन करने की इच्छा सुदामा के मन में भी थी । उसे विश्वास था कि श्रीकृष्ण के दर्शन से अवश्य लाभ ही होगा । यों सोचकर उसने पत्नी से कहा—"मैं श्रीकृष्ण के दर्शन करने अवश्य जाऊँगा । लेकिन खाली हाथ कैसे जाऊँ? उनके लिए उपहार ले जाना उचित होगा । क्या इसके योग्य कोई उपयुक्त वस्तु अपने घर में है?"

सुदामा की पत्नी अड़ोस-पड़ोस के घरों में जाकर चार मुठ्ठियाँ चिउड़े माँग लाई । उसे एक छोटे कपड़े में बाँध कर वह पोटली सुदामा के हाथ धर दी । सुदामा चिउड़े की पोटली के साथ घर से निकल पड़ा और द्वारका पहुँच कर श्रीकृष्ण की खोज में भटकने लगा ।

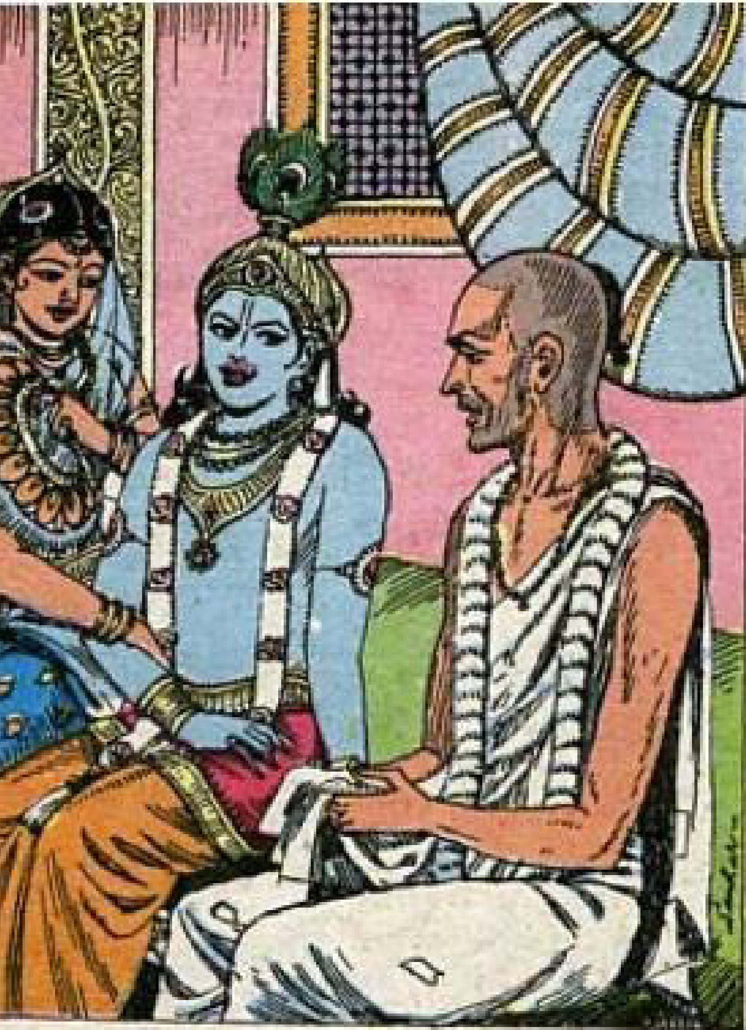
पलंग पर विश्राम करनेवाले श्रीकृष्ण ने दूर से ही सुदामा को देखा और उठ कर समीप आये । प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और पलंग पर अपने पास बैठा लिया । उन्होंने स्वयं सुदामा के पैर धोये । उस जल को अपने सिर



पर छिड़क कर फिर सुदामा के शरीर पर चंदन मल दिया । उसके गले में पुष्पमाला पहना दी । सुदामा के शरीर पर धूल जमी थी, उसके वस्त्र फटे-पुराने थे । ऐसे व्यक्ति का अपने पति के द्वारा हुआ आदर-सत्कार देख कर रुक्मिणी भी चँवर झलने लगी । सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण का प्रेम देख सभी उपस्थित लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ ।

सुदामा का समुचित आदरातिथ्य करने के बाद श्रीकृष्ण और सुदामा दोनों अपने बचपन के गुरुकुल के दिन याद करने लगे ।

एक दिन गुरु-पत्नी ने उन्हें समिधाएँ जुटाने के लिए भेजा था । इस काम के लिए वे



एक विशाल वन में पहुँचे । इतने में जोरदार आँधी आई और मूसलाधार वर्षा प्रारंभ हुई । आसमान में बिजलियाँ कड़कने लगीं । बादल गरजने लगे । इतने में सूर्यास्त हुआ । बारिश में दोनों पूरी तरह भीग गये । ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में रास्ता कुछ नज़र नहीं आ रहा था । दोनों एक-दूसरे के हाथ पकड़ कर रात भर जंगल में भटकते रहे । दूसरे दिन की सुबह हुई । गुरु सांदीपनी को जब मालूम हुआ कि उनके शिष्य जंगल में भटक गये हैं, तो वे उनकी खोज में चल पड़े । मिलने पर उनकी अवस्था देख बहुत दुखी हुए । उन्होंने कहा—"तुम दोनों ने हमारे लिए कितने परिश्रम उठाये! तुम्हारा प्रेम और भक्ति देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई । तुम्हारे सभी मनोरथ निश्चय ही पूरे होंगे । आदर्श शिष्य अपने गुरु के लिए इस से बढ़ कर और क्या कर सकते हैं?" फिर सांदीपनी ने दोनों को बड़े प्यार से आशीर्वाद दिये । इस घटना को याद कर श्रीकृष्ण ने सुदामा से पूछा—"क्या तुम्हें यह सब याद है?"

"गुरुकुल के अपने मित्र की शुभेच्छाएँ हों, तो मेरे समान साधारण व्यक्ति की कौन इच्छा पूरी न होगी?" सुदामा ने कहा ।

इस पर श्रीकृष्ण ने हँस कर पूछा—"ज़रा यह तो बताइए कि आप अपने घर से मेरे लिए क्या लाये हैं?"

सुदामा कुछ झिझक गये । श्रीकृष्ण को अपने साथ लाये चिउड़े देने में कुछ लज्जा महसूस हुई । इस पर श्रीकृष्ण ने ज़बर्दस्ती सुदामा के हाथ की पोटली अपने हाथ में लेकर पूछा—"इसके अंदर भला क्या है?" इसके साथ उन्होंने पोटली खोल दी और प्रेम से कहा—"वाह, चिउड़े हैं? मुझे चिउड़े बहुत प्रिय हैं ।" श्रीकृष्ण ने बड़े चाव से एक मुठ्ठी भर चिउड़े खा लिये और दूसरी मुठ्ठी भर हाथ में ले लिये ।

रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण का हाथ थमानते हुए कहा—"बस, अब तक आपने जितना खाया पर्याप्त है!"

उस दिन सुदामा ने श्रीकृष्ण के घर में ही स्नान-भोजन करके विश्राम किया । उसे लगा, सचमुच वह स्वर्गलोक में पहुँच गया है ।

दूसरे दिन जब सुदामा अपने गाँव जाने

निकला, तब श्रीकृष्ण थोड़ी दूर तक उसके साथ हो लिये और फिर उसे विदा किया। श्रीकृष्ण ने सुदामा को धन, अलंकार आदि कुछ नहीं दिया। सुदामा मन-ही-मन सोचने लगा—"श्रीकृष्ण तो महाराजा ठहरे, मैं एक ग़रीब कंगाल! ब्राह्मण मान कर उन्होंने आदर के साथ मुझे आलिंगन दिया। अपने छोटे भाई के समान मेरे साथ व्यवहार किया। अपनी शय्या पर पास में मुझे बिठाया। अपनी पत्नी के हाथों चँवर झलवाया। उन्होंने शायद यह सोचकर मुझे धन नहीं दिया कि धन प्राप्त होने से मेरे मन में गर्व पैदा होगा।"

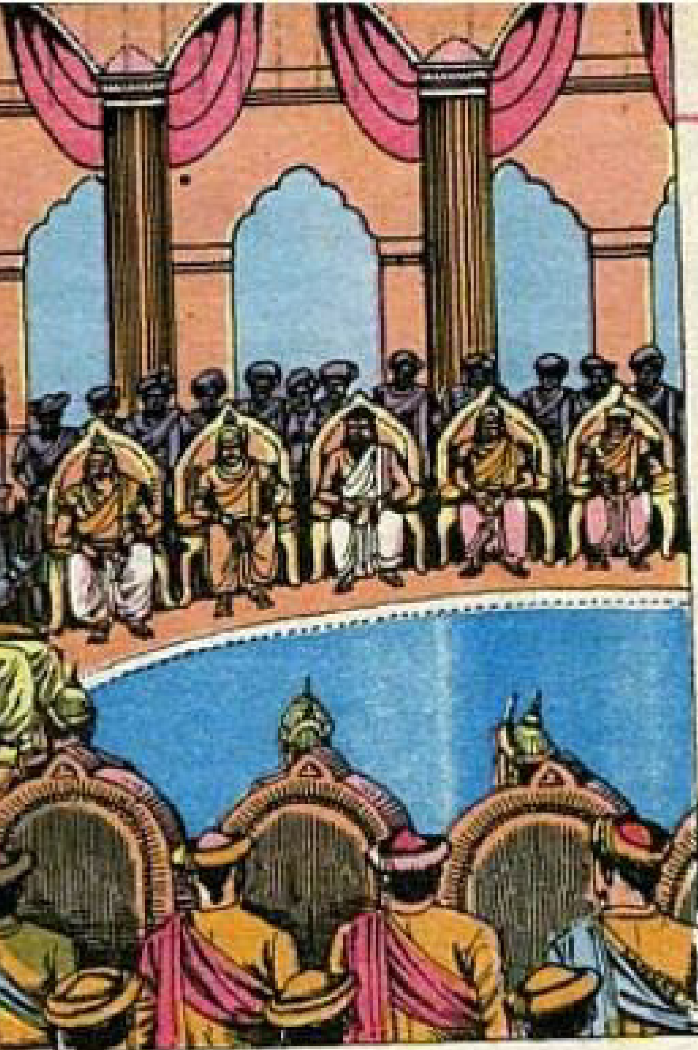
पर सुदामा जब अपने गाँव पहुँचा—तो क्या देखता है! आँखों को चौंधियानेवाले महल उसने अपने सामने देखे। उद्यान, वन और सरोवर उसने देखे। उनमें तरह तरह के पक्षी, कमल आदि फूल दिखाई दिये। भवन में दास-दासियों की चहल-पहल थी।

वह विस्मय के साथ सोचने लगा—"यह किसका घर होगा? यह मेरा घर तो है नहीं! यह सब कैसा परिवर्तन है?" इतने में देवताओं के समान नर-नारियाँ विविध वाद्यों को बजाती उपस्थित हुईं और बड़े आदर-सत्कार के साथ उसे भवन में ले गईं।

सुदामा की पत्नी लक्ष्मी ने प्रवेश करके अपने पति-देव का दर्शन किया, आनन्दाश्रु भरे नयनों को बंद कर प्रणाम किया और मन-ही-मन उनको आलिंगन दिया।

यह सब कुछ देख सुदामा अपने मन में सोचने लगा—यह सारा ऐश्वर्य मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन के कारण ही प्राप्त हुआ है। और





पत्नियाँ आदि लोग बहुत समय के बाद मिले । सब ने परस्पर वार्तालाप किया ।

उस समय पांडवों की पत्नी द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की आठ पत्नियों से पूछा—"मुझे बताएँगी श्रीकृष्ण के साथ तुम्हारा विवाह कैसे हुआ?"

रुक्मिणी ने अपने विवाह का वृत्तांत बताया—"जरासंध आदि ने निर्णय किया था कि मेरा विवाह शिशुपाल के साथ हो । पर श्रीकृष्ण ने आकर सब को पराजित किया और मुझे उठा ले आए । फिर मुझसे विवाह किया ।"

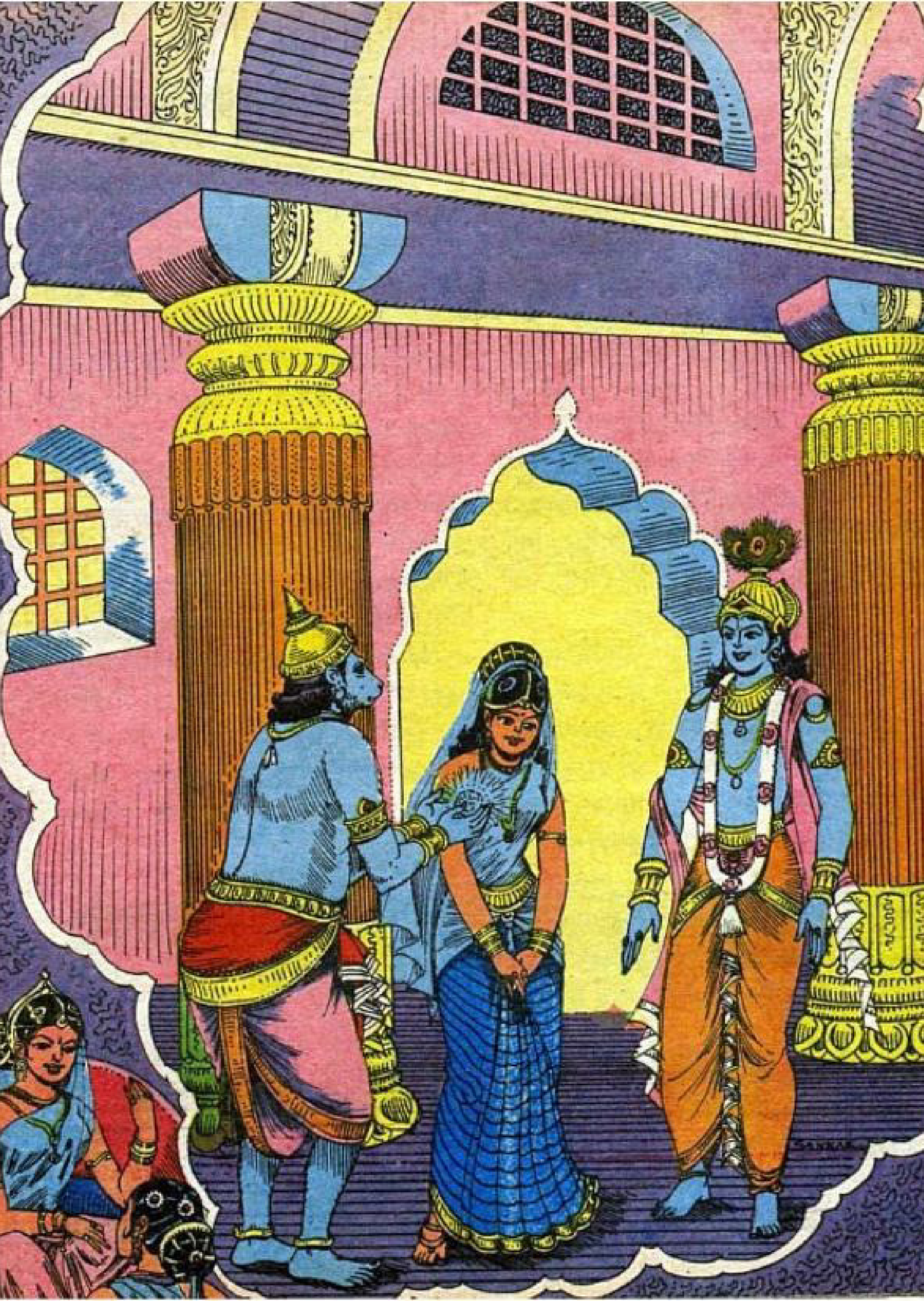
"मेरे पिता सत्रजित ने मेरा विवाह किसी और के साथ करने का संकल्प किया था । लेकिन इस बीच मेरे चाचा का देहान्त हुआ । मेरे पिताजी ने अफ़वाह उड़ाई कि यह काम श्रीकृष्ण का है । इस पर श्रीकृष्ण उस अफ़वाह को झूठ साबित करने के लिए निकल पड़े और मेरे चाचा का संहार करनेवाले सिंह का वध करके स्यमंतक मणि को प्राप्त किया और जांबवान को पराजित किया । फिर उन्होंने उस मणि को मेरे पिताजी को सौंप दिया और मेरे साथ विवाह किया ।" सत्यभामा ने अपनी कहानी सुनाई ।

जांबवती ने कहा—"मेरे पिता है जांबवान । पच्चीस दिन तक श्रीकृष्ण के साथ लड़ने के बाद वे समझ गये कि उस युग के रामचन्द्र ने ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया है । फिर उन्होंने श्रीकृष्ण के चरण धोये । तब सिंह का संहार करके लाये गये

दूसरा क्या कारण हो सकता है? मित्र हो तो ऐसा हो! मुझ से एक नगण्य वस्तु प्राप्त कर उसको बहुत महत्त्वपूर्ण माना । और उन्होंने जो अपार उपकार किया, उसे वे अल्प मानते हैं ।"

अब सुदामा अपनी पत्नी व बच्चों के साथ बड़े वैभवपूर्वक जीवन-यापन करने लगा ।

एक बार संपूर्ण सूर्यग्रहण का दिन आया । सारे यादवों ने द्वारका की रक्षा का ज़िम्मेदारी अनिरुद्ध पर सौंपी और कुरुक्षेत्र के लिए चल पड़े । वहाँ पर श्रीकृष्ण के सभी पुराने रिश्तेदारों से मुलाक़ात हुई । नंद और यशोदा आए, कुंती भी आ गईं । भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, संजय, विदुर, कृपाचार्य, दुर्योधन इत्यादि के साथ गांधारी, पांडव, उनकी



मणि के साथ मुझे भी श्रीकृष्ण को सौंप दिया ।"

"श्रीकृष्ण को जब मालूम हुआ कि मैंने उनको पाने के लिए तपस्या की है, तो वे अर्जुन को साथ लेकर आए और उन्होंने मेरे साथ विवाह कर लिया ।" कालिन्दी ने अपनी विवाह-कथा सुना दी ।

भद्रा ने कहा—"मेरे स्वयंवर के समय अनेक राजा आये थे । श्रीकृष्ण ने सब को पराजित कर मेरे साथ विवाह कर लिया ।"

"मेरे पिता ने शर्त रखी थी कि जो सात साँड़ों को हराएगा, उसी के साथ मेरा विवाह करेंगे । श्रीकृष्ण ने मेमनों भाँति सारे साँड़ों को हराया और मेरे हृदय को जीत लिया ।" नीला ने अपनी कथा सुनायी ।

मित्रविंदाने अपनी विवाह-कथा सुनाई—"श्रीकृष्ण मेरे मामा के पुत्र हैं, मेरे पिता को जब मालूम हुआ कि मैं श्रीकृष्ण को मन से चाहती हूँ, तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से मेरा विवाह उनके साथ करा दिया ।"

अंत में लक्षणा ने अपने विवाह का वृत्तान्त सुनाया—"आपके पिता के समान मेरे पिता ने भी एक मत्स्य-यंत्र का प्रबंध किया था । उन्होंने घोषणा की थी जो व्यक्ति इस यंत्र को छेद देगा, उसके साथ मेरा विवाह किया जाएगा । मेरे पिता का यंत्र अंदर से दिखाई न देता था । केवल जल में उसका प्रति बिम्ब दीखता था, और वह भी कुछ अस्पष्ट रूप में! उसको गिराने के लिए मेरे पिता ने जिस धनुष्य का उपयोग किया था, उसको बहुतेरे राजा चढ़ा न सके । जरासंध, शिशुपाल, भीम, दुर्योधन, कर्ण ने धनुष्य पर बाण तो चढ़ाया, लेकिन उनको जल में प्रतिबिंब दिखाई नहीं दिया । अर्जुन ने प्रतिबिंब को देखा, परंतु यंत्र को भेद न पाये । अंत में केवल श्रीकृष्ण ने धनुष्य चढ़ाकर मत्स्य-यंत्र को भेद डाला और मुझसे विवाह किया ।"

द्रौपदी और वहाँ पर उपस्थित सभी नारियाँ इन कथाओं को सुन कर अत्यन्त आनंदित हुईं ।





एक ओर द्रौपदी, श्रीकृष्ण की पत्नियाँ तथा अन्य नारियाँ वार्तालाप में निमग्न थीं तो दूसरी ओर सभी पुरुष एकत्रित हो बातचीत में व्यस्त थे । इस वार्तालाप में सब को बड़ा आनन्द आ रहा था । ऐसा अवसर अब तक कभी नहीं आया था । सभी अपनी तरफ के समाचार दूसरों को सुनाने को उत्सुक थे । उसी समय अनेक मुनि बलराम और श्रीकृष्ण को देखने के लिए आ पहुँचे । पांडवों तथा अन्य राजाओं ने उठ कर मुनियों को आदरपूर्वक प्रणाम किया । सब के साथ श्रीकृष्ण और बलराम ने भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मुनियों की पूजा की । सब के मन में जिज्ञासा थी, कि यकायक सारा मुनि-वृंद यहाँ कैसे उपस्थित हुआ! ऐसा कौन महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न करने के लिए ये सारे मुनि-गण यहाँ पधारे हैं?

मुनियों ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा—"आप तो मानव रूपधारी आदि देव हैं । हम लोग भले ही महान् तत्त्ववेत्ता हों, आपकी माया के अधीन हैं ।"

मुनियों की सलाह पर वसुदेव ने यज्ञ करके देवताओं का ऋण चुकाने का संकल्प किया । यादवों ने यज्ञ के लिए आवश्यक सारी सामग्री जुटाई । वसुदेव तथा उनकी अठारह पत्नियों ने स्नान कर नये वस्त्र तथा आभूषण धारण किये और यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की । इसके बाद मुनियों की सहायता से प्रकृति तथा विकृति संबंधी यज्ञ करके यज्ञ-पुरुष की आराधना की और ऋत्विकों को गायें, ज़मीन तथा कन्याएँ दक्षिणा के रूप में प्रदान कर उनको संतुष्ट किया । यज्ञ की समाप्ति पर



वसुदेव ने अवभृत स्नान किया और अपने बंधु-जनों को प्रीतिभोज दिया। यज्ञ सफलतापूर्वक संपन्न हुआ इसका सबको बड़ा ही संतोष रहा। जिन जिन महानुभावों ने इस कार्य में सहायता की उनको हार्दिक धन्यवाद दिए गये।

एक दिन देवकी के मन में एक विचार आया–उसके पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, बड़े शक्तिसंपन्न हैं। उन्होंने अपने गुरु के मृत पुत्र को जीवित करके उनके हाथ सौंपा था। कंस ने उसके सभी पुत्रों को मार डाला है। क्या श्रीकृष्ण उन सभी मृत पुत्रों को पुनः ले आकर मुझे दिखा नहीं सकते?

बलराम तथा श्रीकृष्ण से देवकी ने यही बात पूछी। देवकी की इच्छा को स्वीकार कर वे दोनों योगमाया धारण कर सुतल में पहुँचे। बलि चक्रवर्ती ने वहाँ उनका अपूर्व स्वागत किया और उनके आगमन का कारण पूछा। "आज आप कैसे अनपेक्षित रूप से इस लोक में पधारे? ज़रूर, ऐसा ही कोई महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न करने की योजना होगी। बताइए, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?"

श्रीकृष्ण ने बलि चक्रवर्ती से निवेदन किया–"महाराज, प्राचीन काल में स्वयंभु मन्वन्तर के समय में मीरीचि के छह पुत्र ब्रह्मा के द्वारा सरस्वती से प्रेम करते देख हँस पड़े थे। इस पर ब्रह्मा ने उनको राक्षसों के रूप में जन्म धारण करने का अभिशाप दिया था। इस पर वे स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभ और घृणि नाम से सर्वप्रथम हिरण्य कश्यप के पुत्रों के रूप में पैदा हुए, उसके बाद हमारी माता देवी देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए और इसके बाद कंस के द्वारा मारे जाकर अब आपके राज्य में हैं। अगर आप उनको मेरे साथ भेज दें, तो मैं उनको माता देवकी को दिखाकर उनकी चिंता को दूर करूँगा। माता देवकी बहुत दिनों से अपने पुत्रों के दर्शन करना चाहती है। आज तक उन्होंने अपनी यह इच्छा कभी प्रकट नहीं की। अब जब उन्होंने कह ही दिया तो उनकी इच्छापूर्ति करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

पहले मैं उन सब को माता देवकी के पास ले जाऊँगा। उनको पूरा संतोष देने के अनन्तर उनको उत्तम लोकों में भेज दूँगा।"



लोग तो सर्वज्ञ हैं। कृपया बताइए इसकी कोख से कौन शिशु जन्म लेगा?"

इस पर मुनि-गण अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने शाप दिया–"अरे मूर्खों, इसके गर्भ से कुलनाशक मूसल पैदा होगा।" मुनियों का शाप व्यर्थ थोड़े ही हो सकता है? खेल खेल में कुमारों ने यों ही कुछ किया। अब उन्हें शाप के फल को तैयार होना था!

यादव-कुमार अत्यन्त भयभीत हो भाग गये। सांबु के वस्त्र उतार कर देखा तो उन्हें उसके पेट से सचमुच एक मूसल बाहर निकलते दिखाई दिया। उन लोगों ने उसे बाहर निकाला और पछताने लगे–"उफ्! हमने कैसा जघन्य पाप किया? सब कुछ मालूम होने पर यादव-प्रमुख जाने क्या कहेंगे? अगर श्रीकृष्ण क्रोधित हुए तो जाने क्या करेंगे? उनका प्रेम तो बहुत देखा है, आज कोप को भी देखना पड़ेगा!" डरते हुए वे सब राजा उग्रसेन के पास पहुँचे और उनको सारा वृतान्त कह सुनाया।

मूसल तथा मुनियों के शाप का समाचार शीघ्र ही सभी यादवों तक पहुँच गया। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ, सभी भयभीत भी हो गये। उग्रसेन ने यादवों को सलाह दी कि वे मूसल को घिसाकर उसके चूर्ण को समुद्री जल में मिला दें। यादवों ने वैसा ही किया। वह चूर्ण समुद्र की तरंगों के धक्कों से किनारे की तरफ बह आया और वहाँ मोथे के रूप में उग आया। मूसल को घिसाने पर अंत में लोहे का जो एक टुकड़ा बचा रहा, उसको एक मछली ने निगल डाला। अन्य मछलियों के साथ यह मछली जाले में फँस कर एक मछुए के हाथ आ गई।

मछुए ने मछली के पेट से लोहे का टुकड़ा निकाला और बाण की कील के रूप में इस्तेमाल करने के लिए एक शिकारी के हाथ सौंप दिया।

इस प्रकार यादव वंश के सर्वनाश की सारी तैयारियाँ पूरी हो गईं।

इसके थोड़े समय बाद द्वारका में भयंकर उत्पात हुए। लोगों ने वे चमत्कार देखे जिनकी उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी। मारे डर के सब काँपने लगे। सब की आँखें श्रीकृष्ण की ओर देखने लगी। अब वे ही सब के त्राता दिखाई दिये। इस पर श्रीकृष्ण ने



लोग तो सर्वज्ञ हैं। कृपया बताइए इसकी कोख से कौन शिशु जन्म लेगा?"

इस पर मुनि-गण अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने शाप दिया–"अरे मूर्खों, इसके गर्भ से कुलनाशक मूसल पैदा होगा।" मुनियों का शाप व्यर्थ थोड़े ही हो सकता है? खेल खेल में कुमारों ने यों ही कुछ किया। अब उन्हें शाप के फल को तैयार होना था!

यादव-कुमार अत्यन्त भयभीत हो भाग गये। सांबु के वस्त्र उतार कर देखा तो उन्हें उसके पेट से सचमुच एक मूसल बाहर निकलते दिखाई दिया। उन लोगों ने उसे बाहर निकाला और पछताने लगे–"उफ्! हमने कैसा जघन्य पाप किया? सब कुछ मालूम होने पर यादव-प्रमुख जाने क्या कहेंगे? अगर श्रीकृष्ण क्रोधित हुए तो जाने क्या करेंगे? उनका प्रेम तो बहुत देखा है, आज कोप को भी देखना पड़ेगा!" डरते हुए वे सब राजा उग्रसेन के पास पहुँचे और उनको सारा वृतान्त कह सुनाया।

मूसल तथा मुनियों के शाप का समाचार शीघ्र ही सभी यादवों तक पहुँच गया। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ, सभी भयभीत भी हो गये। उग्रसेन ने यादवों को सलाह दी कि वे मूसल को घिसाकर उसके चूर्ण को समुद्री जल में मिला दें। यादवों ने वैसा ही किया। वह चूर्ण समुद्र की तरंगों के धक्कों से किनारे की तरफ बह आया और वहाँ मोथे के रूप में उग आया। मूसल को घिसाने पर अंत में लोहे का जो एक टुकड़ा बचा रहा, उसको एक मछली ने निगल डाला। अन्य मछलियों के साथ यह मछली जाले में फँस कर एक मछुए के हाथ आ गई।

मछुए ने मछली के पेट से लोहे का टुकड़ा निकाला और बाण की कील के रूप में इस्तेमाल करने के लिए एक शिकारी के हाथ सौंप दिया।

इस प्रकार यादव वंश के सर्वनाश की सारी तैयारियाँ पूरी हो गईं।

इसके थोड़े समय बाद द्वारका में भयंकर उत्पात हुए। लोगों ने वे चमत्कार देखे जिनकी उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी। मारे डर के सब काँपने लगे। सब की आँखें श्रीकृष्ण की ओर देखने लगी। अब वे ही सब के त्राता दिखाई दिये। इस पर श्रीकृष्ण ने

सारे यादवों को सुधर्म-भवन में आमंत्रित किया और उनको समझाया –

"बंधुगण, द्वारका में जो भयंकर उत्पात नज़र आ रहे हैं, ये सब हानि-सूचक हैं । आप सब लोगों को मालूम ही है कि मुनियों ने यादव-वंश' को आभिशाप दिया है । इस लिए हम सब लोगों को अब एक पल भर के लिए भी इस द्वारका में रहना उचित नहीं है । स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को हम शंखद्वार भेज देंगे । बाकी हम सब सरस्वती नदी के तट पर स्थित प्रभास तीर्थ जाएँगे । वहाँ जाकर स्नान, उपवास तथा देवताओं की पूजा करेंगे । ब्राह्मणों को गायें, स्वर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़े व घर दान करेंगे । उनके हाथों शांति-कर्म करवाएँगे । इस प्रकार हमारे अरिष्ट टल जाएँगे और हमारा शुभ होगा ।"

श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को सभी यादवों ने मान लिया । स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को शंखद्व रवाना किया गया और बाकी यादवों ने ना में बैठकर समुद्र पार किया और प्रभास ती पहुँचे । लेकिन वहाँ उनको देव-माया ने घे लिया । सब ने मद्य प्राशन किया और नशे एक दूसरे से लड़ने लगे । आखिर ए घमासान लड़ाई शुरू हुई । उस लड़ाई अनेक हाथी और घोड़े मर गये । रथ ट गये । प्रमुख यादव एक दूसरे से द्वंद्व युद्ध कर लगे । प्रद्युम्न ने सांब के साथ युद्ध किया इसी प्रकार अक्रूर ने भोज के साथ, अनिरुद्ध सात्यकि से, सुभद्र ने संग्रामजित के सा सुमित्र ने सुरथ से युद्ध किये । अन्य लोग आपस में युद्ध करने लगे । आपस में बंधु मित्र-भाव तक न रहा । पागलों की भाँ एक दूसरे का संहार करने लगे ।

फिर उनके सारे बाण खतम हो चुके । सा





धनुष टूट गए । उनके हाथ में एक भी आयुध न बचा । समुद्र तट पर ऊँचे उगे मोथे थे । उनको उखाड़ कर एक दूसरे का वध करने लगे । श्रीकृष्ण ने उनको रोकना चाहा । इस पर वे क्रोधित हो बलराम और श्रीकृष्ण पर टूट पड़े । श्रीकृष्ण का क्रोध खौल उठा । उन्हों ने उस मोथे को उखाड़ कर अंधाधुंध यादवों को मार डाला । इस प्रकार मुनियों के शाप के कारण दावानल की भाँति यादवों का वंश निर्मूल हो गया ।

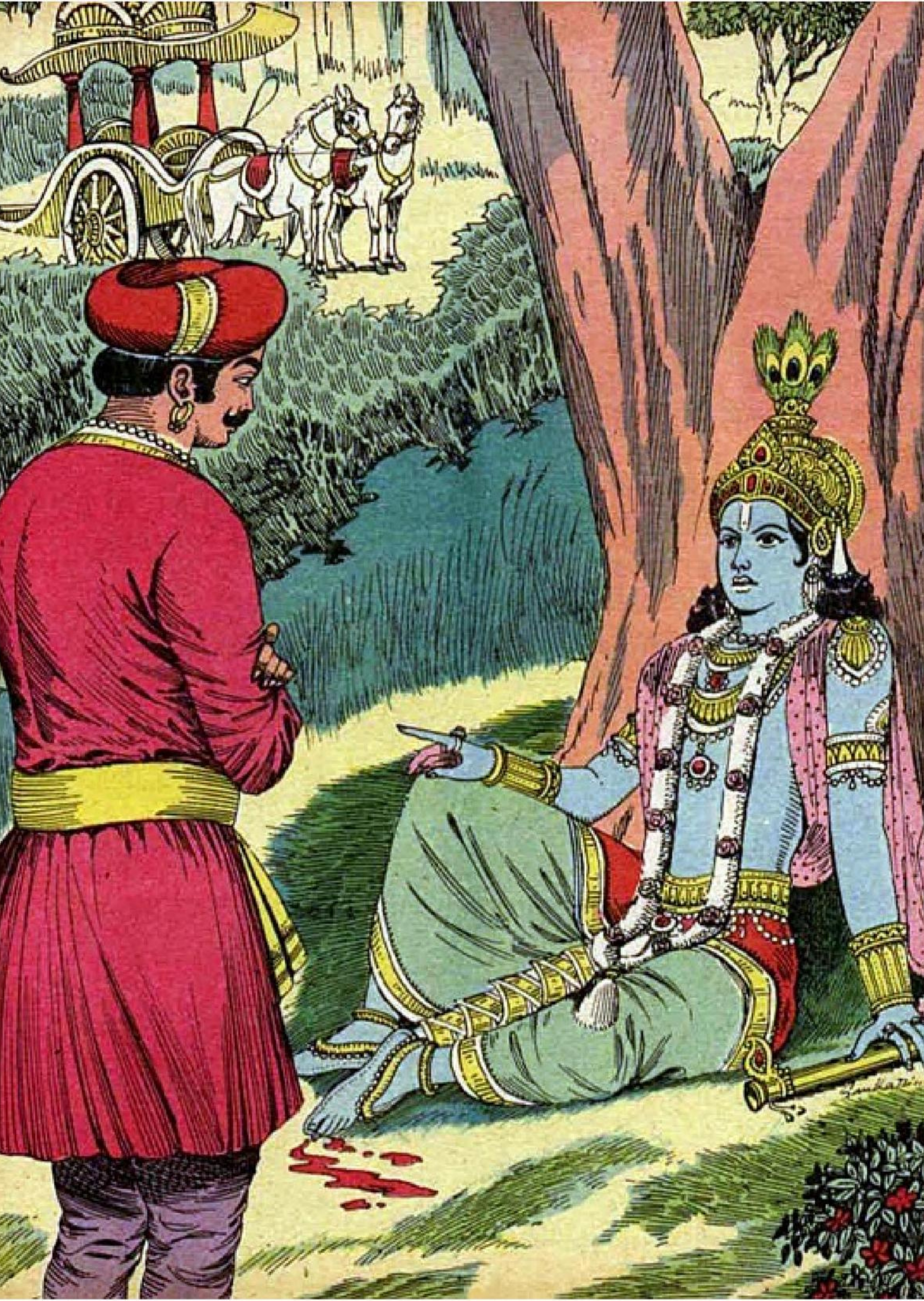
अब सब लोग मर चुके थे । चारों तरफ देखते हुए श्रीकृष्ण ने मन-ही-मन कहा–"पृथ्वी का भार हल्का हो गया!"

समुद्र-तट पर योग-समाधि में बैठकर बलराम ने अपने प्राण त्याग दिये । इस दृश्य को स्वयं श्रीकृष्ण ने देख लिया । तब वे एक पीपल के वृक्ष के तने पर दाईं जाँघ पर बायाँ पैर रख कर बैठ गये । जर नाम के एक शिकारी ने श्रीकृष्ण के बाएँ लाल पैर को कोई जानवर समझा और उस पर बाण चलाया । यादवों के मूसल को घिसाकर बचे लोहे के टुकड़े से उस बाण की कील बनी थी ।

बाण चलाकर वह शिकारी दौड़ता हुआ उस स्थान पर पहुँच गया । उसने देखा कि वह जिसको जानवर समझा था, वह एक मनुष्य का पाँव है । उसने श्रीकृष्ण के प्रति निवेदन किया–"महाशय, मुझे बहुत खेद है । मुझसे हिमालय जैसी भूल हुई । मुझे क्षमा कर दीजिएगा?"

श्रीकृष्ण ने जर को समझाया–"तुम चिंता मत करो । वही हुआ, जो मैं चाहता था!" फिर श्रीकृष्ण ने उसे रवाना कर दिया ।

इस बीच दारुक रथ पर सवार हो श्रीकृष्ण की खोज में वहाँ आ पहुँचा । श्रीकृष्ण को देख रथ से उतर पड़ा और उनके पास गया । श्रीकृष्ण ने दारुक से कहा–"तुम जाकर सब लोगों को समाचार दो–हमारे वंश के सब लोग पर चुके हैं । बलराम ने भी देहत्याग किया है और मैं यहाँ इस स्थिति में हूँ । आप सब लोग द्वारका को छोड़ दीजिए । मेरे शरीर-त्याग के पश्चात् समुद्र द्वारका को डुबा देगा । मेरे माता-पिता तथा अन्य लोग इन्द्रप्रस्थ जाकर अर्जुन के आश्रय में रहें । इस घटना को भूल कर अब तुम ज्ञान-निष्ठा में अपना शेष जीवन बिताओ ।"



दारुक ने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की और यथित हृदय से द्वारका लौट गया । वहाँ पर ोते हुए उग्रसेन तथा वसुदेव के चरणों में गिर कर यादवों की मृत्यु का समाचार सब को नाया । तब सभी लोग छाती पीटते हुए ादवों की मृत्यु के स्थान पर पहुँचे । वसुदेव, वकी तथा रोहिणी ने अपने पुत्र बलराम तथा ीकृष्ण की खोज की । लेकिन उनके शरीर कहीं उनको दिखाई न दिये । इस पर उनके क्ष फट गये और वहीं पर उन्होंने प्राण त्याग दये ।

यादवों की पत्नियों ने अपने पतियों के ारीरों के साथ सहगमन किया । बलराम की त्नियाँ भी उसकी चिता पर भस्म हो गईं । सुदेव और श्रीकृष्ण की पत्नियों ने भी अन्य ादव स्त्रियों का अनुकरण किया ।

इसके बाद अर्जुन वहाँ पहुँचा और उसने पने रिश्तेदारों की अन्त्येष्ठि-क्रिया संपन्न की । उसी समय द्वारका नगरी समुद्र में डूब ाई । केवल एक मंदिर जल पर स्पष्ट दीखता ुआ खड़ा रहा ।

जीवित बची स्त्रियों, बच्चों तथा वृद्धों के साथ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ पहुँचा । उसने वज्र का राज्याभिषेक किया । अर्जुन ने वज्रको श्रीकृष्ण का संदेश सुनाया—"अब तुम ज्ञान-निष्ठा में अपना समय बिता दो ।" फिर कहा—"महाभारत के युद्ध से अब जो सबक़ मिला है, उसको हमेशा मन में रखना । न्याय-अन्याय की लड़ाई में न्याय ही की हमेशा जीत होती है । न्याय का पक्ष कभी न छोड़ना ।" फिर पांडव द्रौपदी के साथ महाप्रस्थान के लिए चल पड़े ।

श्रीकृष्ण के निर्वाण के समय वहाँ पर ब्रह्मा, इन्द्र, अन्य देवता, प्रजापति सिद्ध, अप्सराएँ तथा विद्याधर आ पहुँचे । उनके विमानों से सारा आकाश भर गया । विमानों से पुष्प-वृष्टि हुई । श्रीकृष्ण ने दिव्य विष्णुरूप धारण किया । अपने दर्शन के लिए आए सभी लोगों की ओर श्रीकृष्ण ने एक बार देखा और सत्य, धर्म, धृति, श्री तथा कीर्ति के साथ वैकुण्ठ की ओर प्रयाण किया ।

(समाप्त)

